राजस्थान का पिंगल साहित्य



पं० मोतीलाल मेनारिया, एम. ए.

प्रकाशक

हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर

प्रकाशक—
वृद्धिशंकर शर्मा "हितैषी"
हितैषी पुस्तक भण्डार
उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम संस्करण १९५२ ई०
मूल्य ५)

मुद्रक—
जे. एन. भिडे,
राजस्थान टाइम्स लिमिटेड, अजमेर.

निवेदन

राजस्थान के कवियो ने अपनी काव्य-रचनाओ का निर्माण मुख्यत' दो भाषाओ मे किया है, डिंगल और पिंगल। डिंगल मारवाडी का पर्य्यायवाची शब्द है और पिंगल ब्रजभाषा का। अपने इस ग्रथ में मैंने राजस्थान के पिंगल साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया है।

इसमे पिंगल भाषा के ४६४ कवियो का विवरण दिया गया है जिनमे ६२ कवि ऐसे है जो अभी तक अज्ञात थे और जिनका पता सर्वप्रथम मैंने अपनी खोज से लगाया है। शेष कवियो मे से लगभग आधे कवियो का वर्णन शिव-सिह-सरोज, दि मॉर्डन वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान, मिश्रबधु-विनोद इत्यादि ग्रथो में मिलता है और बाकी के नाम राजस्थान के इतिहासकारो, साहित्यान्वेषको, सग्राहको आदि की पुस्तको मे इधर-उधर बिखरे पाये जाते है। परन्तु इन कवियो के परिचय आदि जो इन ग्रंथो मे मिलते है वे प्राय अपूर्ण अथवा इतिहास की दृष्टि से भ्रान्तिदायक है। विशेषकर मिश्रबधु-विनोद तो भूलो से भरा हुआ है। उसमें शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ मिले जिस में कोई न कोई अशुद्धि न हो। कही कवि का निर्माण-काल ठीक नही है, कही उसके पिता अथवा आश्रयदाता का नाम अशुद्ध दिया हुआ है, कही एक ही ग्रथ को तीन-चार कवियो के नाम पर लिख दिया गया है, तथा इसी प्रकार की और भी कई भूलें उसमे दृष्टिगोचर होती है। इस ग्रथ में मैंने इन भूलो को ठीक किया है और साथ ही इन ग्रथो में जिन कवियो के विवरण अधूरे रह गये है उनको पूरा भी किया है। इसके लिये मैंने राजस्थान के प्राय सभी हस्तलिखित पुस्तको के भाडारो को टटोला है और अपनी एकत्र की हुई इतिहास-सामग्री का उपयोग किया है जिसका निर्देश स्थान-स्थान पर इस पुस्तक की पाद-टिप्पणियो में किया गया है।

यह एक साहित्यिक शोध का ग्रथ है। अतएव इसके लिखने मे मैंने किसी कवि अथवा ग्रथ की आलोचना करने की अपेक्षा उसके ऐतिहासिक पहलू पर विशेष जोर दिया है। कविताओ के नमूने भी केवल उन्ही कवियो के दिये है जो बिलकुल नये है अथवा हिंदी-साहित्य के इतिहास सबधी प्रकाशित ग्रथो मे नही मिलते है।

राजस्थान के पिंगल साहित्य के निर्माण मे जैन कवियों का भी पूरा सहयोग रहा है। परतु इनके ग्रथ धार्मिक विषयो पर अधिक है और 'साहित्य' शब्द का जो अर्थ आजकल लिया जाता है उसके अतर्गत उनकी समाई नही होती। अतएव मैंने अधिकाश जैन कवियो को छोड दिया है और केवल उन्ही को लिया है जिनकी रचनाओ मे साहित्यिक गुण पाये जाते है।

जिन कवियो की रचनाओ को मैने साहित्य, इतिहास, भाषाशास्त्र इत्यादि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा उन कवियो का वर्णन मैने विस्तार-पूर्वक इस पुस्तक के मूल भाग मे किया है और शेष का परिशिष्टो में। परिशिष्टो मे आये हुए कुछ कवियो के काल आदि का ब्योरा उन्ही के ग्रथो के आधार पर दिया गया है, और वह ठीक है। परन्तु कुछ के काल आदि का निर्णय उनके आश्रयदाता राजा-महाराजाओ के शासन-समय, उनके समकालीन कवियो की रचनाओ, उनके ग्रथो की कुछ पीछे की लिखी हुई हस्त-लिखित प्रतियो आदि के आधार पर किया गया है और इसलिये उनके जो सवत दिये गये है वे लगभग ठीक है, निश्चयात्मक नही है। यह एक प्रकार की कच्ची सामग्री (Raw Material) है जिसको यह सोचकर इस पुस्तक मे सम्मिलित किया गया है कि भविष्य मे यदि कोई विद्वान पिगल साहित्य सबधी इस शोध-कार्य को आगे बढाने के लिए हाथ में लेगे तो उनको कुछ सहारा मिलेगा।

हिंदी भाषा मे कुछ शब्द ऐसे है जिनके दो रूप प्रचलित है। जैसे मीराँ—मीरा, राठौड—राठौर, वाणी—बानी, चौहाण—चौहान, महाराणा—महाराना, चित्तौड—चित्तौर आदि। राजस्थान मे इनका पहला रूप प्रचलित है। परन्तु हिंदी के विद्वानो मे दूसरे रूप का चलन अधिक देखने मे आता है। मैंने प्रथम रूप को अपनाया है और मीराँ, राठौड आदि लिखा है। यह ठीक भी है। क्योकि ये शब्द राजस्थान मे इसी तरह लिखे और बोले जाते है। डा० ओझा आदि विद्वानो ने भी इनको इसी तरह लिखा है।

मै भी हिंदी का एक तुच्छ सेवक हूँ और मुख्यत हिंदी-सेवा के उद्देश्य से ही मैने यह ग्रथ तैयार किया है। यदि इससे हिंदी की कुछ गौरव-वृद्धि हुई तो मै अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

अत मे यहाँ मै श्रीमान् मोहनवल्लभजी पत एम० ए०, प्रोफेसर, महाराणा भूपाल कॉलेज, उदयपुर, को धन्यवाद देना भी अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ जिन्होने इस पुस्तक की पाडुलिपि को आद्योपान्त पढने का कष्ट उठाया और उसमे अनेक सुधार-सशोधन किये। श्रद्धेय पंतजी हिंदी के एक अधिकारी विद्वान एव मर्मज्ञ समालोचक है और उनके पथ-प्रदर्शन से मुझे बहुत लाभ हुआ है। वस्तुत: यदि इस पुस्तक में कोई अच्छाई है तो उसका श्रेय श्री पतजी ही को है।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० २०—७—१९५२

मोतीलाल मेनारिया

विषय-सूची



संकेत-चिह्न

अ० म० पु० = अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर

ग्र० = ग्रथ

ज० = जन्म-काल

ना० प्र० स० = नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

नि० का० = निर्माण-काल

पु० = पुल्लिग

बे० प्रे० = बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

म० = महाराजा

मृ० = मृत्यु-काल

र० = रचना

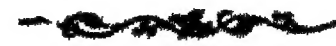
वि० = विवरण

वें० प्रे० = श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बबई

स० भ० उ० = सरस्वती भडार, उदयपुर

स्त्री० = स्त्रीलिंग

हि० सा० स० = हिदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग



पहला अध्याय
पृष्ठभूमि

राजस्थान भारत का एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक प्रदेश है। इसे भारत की वीरभूमि कहा गया है। यहाँ का इतिहास भारत की वीरता का इतिहास है। इसके सिवा यह साहित्य और कला का भी केन्द्र रहा है। महाकवि माघ और प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त यहीं के निवासी थे[1]। भक्त मीराँबाई और नागरीदास ने यहीं जन्म लिया था। कविकुल चूडामणि बिहारी और पद्माकर यहीं के आश्रित थे।

प्राचीन नाम—प्राचीन समय में इस प्रान्त के लिए किसी एक नाम का प्रयोग नहीं होता था। इसके भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध थे। पुराणों के अनुसार वर्तमान अलवर-जयपुर राज्य के कुछ अंशों को मत्स्य देश कहते थे।[2] मत्स्य के दक्षिण में धुँधुमार (ढूँढाड) देश का उल्लेख आता है। अजमेर के निकट का प्रदेश पुष्करारण्य और आबू के आसपास का शाल्वदेश कहलाता था। बीकानेर के प्रदेश का नाम जाँगल प्रसिद्ध था।[3] पश्चिमी राजस्थान प्रायः समूचा भूतत्व की दृष्टि से मरुकान्तार कहलाता था। मेवाड का नाम शिविदेश था जिसकी राजधानी मध्यमिका थी।[4] डूंगरपुर-बाँसवाडा के सम्मिलित राज्यों के लिये (वार्गट) वागड नाम प्रयुक्त होता था और अब भी वे उसी नाम से प्रसिद्ध हैं[5]।

राजस्थान—इस समय यह प्रान्त राजपूताना और राजस्थान दोनों नामों से प्रसिद्ध है। जिस समय अंग्रेजों का संबंध इस प्रान्त के साथ हुआ उस समय इसके अधिक भाग पर राजपूत राजाओं का अधिकार था। इसलिए उड़ियाना, तिलंगाना आदि के अनुकरण पर उन्होंने इसका नाम भी राजपूताना, अर्थात् राजपूतों

---

1. ओझा; राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० १३२ और १४६। एम० कृष्णमाचार्य; हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृष्ठ १५४।
2. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३३३।
3. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० १०२।
4. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग २, पृ० ३३५।
5. ओझा; डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० १

का देश रख दिया । इसका राजस्थान नाम भी बहुत प्राचीन नहीं है। सर्वप्रथम जार्ज टॉमस ने अपने "मिलिटरी मैमोयर्स" (सं० १८५७) में और उनके पश्चात् कर्नल टॉड ने अपने 'एनल्स ऐंड एटिक्विटीज आव राजस्थान' (सं० १८८६) में इसके लिए इस शब्द का प्रयोग किया था जो राजाओ तथा उनके स्थान का सूचक है और लोक-प्रचलित 'रायथान' शब्द का रूपान्तर है। वैसे 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग उल्लिखित 'मैमोयर्स' से पूर्व के लिखे राजस्थानी भाषा के 'नैणसी की ख्यात' (सं० १६८७–१७२७) और 'राजरूपक' (स० १७८८) ग्रथो में भी देखने में आता है। परन्तु वहाँ यह शब्द राजस्थान प्रान्त के अर्थ में नही, प्रत्युत 'राजधानी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है:—

"समत १६७२।। राणौ अमरसिघ साहजादै खुरम सूँ मिलियो ।। तठा पछै राणौ अमरसिघ उदैपुर आयौ ।। तठा पछै राजस्थान उदैपुर हुवौ" ।।

—नैणसी की ख्यात[6]

"सप्तपुरी सिरताज, ऋत अपवर्ग हूँत समकारण ।
उत्तम धाम अजोध्या, ओपै नाम ग्राम पुर ऊपर ।। २५ ।।
थिर ते राजसथान, महि इक छत्र भोम सामर्थ ।
एके आण अखंड, खडण माण प्राण नवखंड" ।। २६ ।।

—राजरूपक[7]

राजनीतिक विभाग—भारत की स्वतत्रता के पूर्व राजस्थान छोटे-बड़े २१ राज्यों में बँटा हुआ था[8] और अजमेर-मेरवाड़े का प्रदेश और अलग था। इन सब राज्यो को मिलाकर अब राजस्थान को भी एक प्रशासनीय इकाई अथवा संघ का रूप दे दिया गया है। कुछ राजनीतिक कठिनाइयो के कारण अजमेर-मेरवाड़ा अभी इसमें नही मिल पाया है। परन्तु भाषा, संस्कृति, रहन-सहन, जनतत्त्व इत्यादि की दृष्टि से वह राजस्थान का एक अविभाज्य अंग है और उसकी आर्थिक तथा भौगोलिक स्थिति कुछ ऐसी है

6. सरस्वती-भडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति पृ० २७

7. राजरूपक (ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित); पृ० १०–११

8. उदयपुर, डूँगरपुर, बाँसवाडा, प्रतापगढ, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ, जयपुर, अलवर, बूँदी, कोटा, सिरोही, जैसलमेर, करौली, झालावाड़, भरतपुर, धौलपुर, टोंक, शाहपुरा, लावा, और कुशलगढ़,

कि वह पृथक नहीं रह सकता। अतः कभी न कभी उसका भी इसमें सम्मिलित हो जाना निश्चित है।

प्राकृतिक विभाग—अर्वली[9] पर्वत श्रेणी ने इस प्रान्त को दो भागो में विभक्त कर दिया है, उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी। उत्तर-पश्चिमी भाग में बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, और जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रदेश का अंश है। यह भाग मारवाड या मरूदेश कहलाता है। इसमें समस्त प्रान्त का $\frac{3}{5}$ भाग आ गया है। यह भाग रेतीला एवं अनउपजाऊ है और यहाँ वर्षा बहुत कम होती है। जोधपुर में वर्षा का औसत १३ इच, बीकानेर में १२ इच तथा जैसलमेर में ७ इच के लगभग है। इस तरफ थार का एक बहुत बडा रेगिस्तान है और भारत के अन्य प्रान्तो की अपेक्षा इधर अकाल भी अधिक पड़ते हैं। शीतकाल में इधर बहुत अधिक सर्दी तथा उष्णकाल में बहुत अधिक गर्मी पडती है और लू-आँधियाँ बहुत चलती है। यहाँ विशेषकर एक ही फसल सियालू की होती है, उनालू की बहुत कम। जलवायु शुष्क किन्तु स्वास्थ्यप्रद हैं। यहाँ घोडे, ऊँट, बैल आदि जानवर बहुत अच्छे होते है।

दक्षिण-पूर्वी भाग में जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, किशनगढ, टोक, कोटा, बूँदी, झालावाड, मेवाड़, डूँगरपुर, प्रतापगढ, बाँसवाड़ा, सिरोही, शाहपुरा, कुशलगढ़, लावा और अजमेर-मेरवाड़े का इलाका है। इस विभाग में वर्षा अपेक्षाकृत कुछ अच्छी होती है और भूमि भी अधिक उपजाऊ है।

---

9 'अर्वली' शब्द डिंगल भाषा के 'आडावळा' शब्द का विकृत रूप है। अंग्रेजी भाषा के उच्चारण की अपूर्णता के कारण 'आडावळा' का 'अर्वली' हो गया है। डिंगल भाषा के प्राचीन ग्रथो मे 'आडावळा' ही लिखा मिलता है —

अति आणद ऊमाहियौ, वहइ ज पूगळ वट्ट।
त्रीजइ पुहरि उलाँघियौ, आडवळा रौ घट्ट ।।
आडवळे आधौ फरइ, एवड माँहि असन्न।
तिण अजाँण ढोलइ तणै, मूरख भागइ मन्न ।।

—ढोला मारू रा दूहा (स० १५३०)

दुवै फौज फब्बै गिरगज्ज डाणे
उभै जाणि आड़ावळा खेत आणे

—रतन रासौ (स० १७७२)

मेवाड में वर्षा का औसत २४ इच, झालावाड में ३७ इंच और बाँसवाडे में ३८ इच के लगभग है। अधिक ऊचाई के कारण आबू पर वर्ष में ५७-५८ इच के लगभग वर्षा होती है। जल की अधिकता से इस तरफ कई घने जगल है जिनमें इमारती काम के लिये उपयोगी लकड़ी के अतिरिक्त तरह-तरह के फल-फूल भी होते हैं। इस भाग में फसलें साधारणतया दो होती है—उनालू और सियालू। परन्तु जलवायु की आर्द्रता के कारण लोगो को प्राय· मलेरिया और मदाग्नि की शिकायत रहती है।

भौगोलिक स्थिति का प्रभाव—राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति और जलवायु का प्रभाव इसके इतिहास, इसकी सस्कृति और इसके निवासियो की रहन-सहन एव आचार-विचार पर बहुत पडा है। यहाँ के लोग बडे परिश्रमी, बड़े साहसी एव बड़े कष्ट-सहिष्णु होते हैं। चित्रकला, संगीत और कविता के ये बडे प्रेमी होते है और अपने पूर्वजो की गौरव-गाथाओ के सुनने-सुनाने में में बड़ा रस लेते हैं। इनमें धर्म-भीरुता, रुढिवादिता और यशःप्रियता कुछ विशेष देखने में आती है। यहाँ की राजपूत जाति की वीरता और वैश्य जाति की व्यापारिक बुद्धि एव दानशीलता विश्व-विख्यात है। इसके सिवा यहाँ की भील जाति भी अपने पुरुषार्थ, अपनी स्वामिभक्ति और अपने अतिथि-सत्कार के लिए बहुत प्रसिद्ध है। बहुत दीर्घ काल तक इस जाति ने राजपूतो को उनके स्वाधीनता-सग्राम मे सहायता दी है। महाराणा प्रताप के मुख्य साथी भील ही थे। जिस समय औरंगजेब ने उदयपुर पर आक्रमण किया उस समय महाराणा राजसिंह की सेना में ५०००० भील थे[10]। आजकल भील एक जंगली जाति मानी जाती है। परन्तु एकता और स्वावलंबन ये इस जाति के दो ऐसे गुण है जो भारत की अन्य किसी जाति में इतनी अधिक मात्रा में नहीं पाये जाते।

संगीत—केवल वीरता के क्षेत्र में ही नहीं, सगीतकला, चित्रकला, शिल्पकला और साहित्य के क्षेत्र में भी राजस्थान ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। संगीत का आदर यहाँ के राजदरबारों एवं देव-मंदिरो में निरंतर रहा। यहाँ के रागो में 'मीराँबाई का मलार' बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त राग माँड़ और राग सिंधू ये दो राग राजस्थान के खास अपने है। राग माँड़ शृंगार रस के लिये बहुत उपयुक्त है। इसका उत्पत्ति-स्थान जैसलमेर माना गया है[11]। राग सिंधू वीर रस का राग है। प्राचीन काल में रण-

10. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५५८
11. ओझा, राजपूताने का इतिहास पहली जिल्द, पृ० ३१



राग सिंधू

प्रयाण के समय ढोली और ढाढ़ी लोग इसे सेना के आगे गाते हुएं चलते थे। डिंगल भाषा के कवियो ने इसका वर्णन किया है[12]। युद्ध का अवसर न होने से यह राग अब शनै शनै· विस्मृत होता चला जा रहा है। सगीत-शास्त्र सबधी प्राचीन सस्कृत ग्रथो में इस राग का नामोल्लेख नही मिलता। परन्तु अठारवी शताब्दी और उसके बाद के कुछ ग्रथो में इसका नाम देखने में आता है। उदयपुर के सरस्वती-भडार में 'रागमाला' की एक चित्रित प्रति सुरक्षित है। यह कदाचित महाराणा जयसिंह के राजत्व-काल (स० १७३७–५५) में तैयार की गई थी। इसमें राग सिधू को राग दीपक का पुत्र बतलाया गया है। इसमे राग सिंधू का एक भव्य चित्र भी है।

सगीत कला के साथ-साथ सगीत-साहित्य को भी राजस्थान से बहुत प्रोत्साहन मिला है। सगीत शास्त्र सबधी कई उत्कृष्ट ग्रथ यहाँ लिखे गये है जिनमें सगीत-कला के विविध अगो का बडा सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। इनमें मेवाड के महाराणा कुंभाजी (स० १४९०–१५२५) के रचे तीन ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है–सगीत-मीमासा, सगीतराज और सूडप्रबध[13]। इनमें सगीतराज सब से बडा है। कहा जाता है कि इसमें १६००० श्लोक थे[14]। परतु आजकल यह ग्रथ पूरा नही मिलता। जयपुर के कछवाहा राजा भगवंनदास (सं० १६३०–४६) के पुत्र माधवसिंह बडे सगीत-प्रेमी थे। इन्होने खानदेश के पुंडरीक विट्ठल से 'राग-मजरी' नाम का एक ग्रंथ लिखवाया था[15] जो प्रकाशित भी हो चुका है। भगवतदास से कोई दो सौ वर्ष

---

12. (क) हुवो अति सीधवौ राग वागी हका।
थाट आया पिसण घाट लागै थकाँ।।
–ईसरदास (स० १५९५–१६७५)

(ख) सखी अमीणी साहिबो, निरभै काळौ नाग।
सिर राखै मिण सामध्रम, रीझै सिंधू राग।।
–बाँकीदास (स० १८२८–९०)

(ग) आळस जाणं ऐस मे, बपु ढीलै विकसंत।
सीधू सुणियाँ सौ गुणौ, कवच न मावै कत।।
–सूरजमल (स० १८७२–१९२५)

13. हरबिलास सारडा; महाराणा कुभा, पृ० १६६

14. एम० कृष्णमाचार्य, हिस्ट्री आव क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, पृ० ८६२

15. ओझा; राजपूताने का इतिहास, पहली जिल्द, पृ० ३२

पश्चात् महाराजा प्रतापसिंह (सं० १८३५–६०) जयपुर के राजसिंहासन पर आसीन हुए। इनके समय में 'राधा-गोविंद-संगीत-सार', 'राग-रत्नाकर' और 'स्वर-सागर' तीन बहुत उत्तम कोटि के ग्रंथ इस विषय पर लिखे गये[16]। इसी प्रकार बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (सं० १७२६–५५) ने भी अपने राजाश्रित पंडित भाव भट्ट से 'संगीत-अनूपांकुश', 'अनूप-संगीत-विलास' और अनूप-संगीत-रत्नाकर' नामक तीन ग्रंथ बनवाये थे[17]।

चित्रकला—राजस्थान चित्रकला के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। यहाँ के राजकीय चित्रालयो तथा राजपूत सरदारो के घरो में प्राचीन चित्र बहु-संख्या में पाये जाते हैं जिनमें कोई-कोई चार सौ वर्ष तक के पुराने हैं। ये चित्र एक विशेष शैली में अंकित किये गये हैं जिसे कला विशेषज्ञो ने 'राजस्थानी शैली' नाम दिया है। इन चित्रो में देवी-देवताओ, राग-रागिनियो, पौराणिक कथाओ, सामंतो, युद्ध-घटनाओ आदि के चित्र अधिक देखने मे आते हैं। ये चित्र बहुधा मोटे बाँसी कागज पर मिलते हैं। रंगो की उज्ज्वलता, कल्पना की सुघडता और वातावरण की तीव्रता इन चित्रो की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनमें आलंकारिकता कुछ अधिक पाई जाती है पर भाव-कोमलता का भी सर्वथा-अभाव नहीं है। इनके द्वारा गुप्तकालीन तथा उससे पूर्व की भारतीय चित्रकला का भी अच्छा आभास मिलता है। इन चित्रो में अनेक ऐसे हैं जिन पर मुगल-शैली का यथेष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ये चित्र अकबर-जहाँगीर के समय या उसके बाद के हैं। इनमें मानव आकृति के यथार्थ चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। सौन्दर्य्य और अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये चित्र अनुपम हैं।

फुटकर चित्रों के अतिरिक्त संस्कृत, राजस्थानी, फारसी आदि भाषाओ के चित्रित ग्रंथ भी राजस्थान में बहुत मिलते हैं। ये ग्रंथ खुले पत्रो के रूप में भी मिलते हैं और सजिल्द पुस्तकाकार में भी। खुले पत्रोंवाले चित्रित ग्रंथों को राजस्थान में 'जोतदान' कहते हैं। इन ग्रंथो के चित्रों के चारो ओर सादी कोर होती हैं और प्रत्येक चित्र के ऊपर उससे संबंधित पूरा छंद अथवा उस छंद का संक्षिप्त गद्यात्मक विवरण लिखा रहता है। रामायण, महाभारत पृथ्वीराज रासौ आदि बड़े आकार के ग्रंथो की केवल मुख्य-मुख्य घटनाओं के चित्र बनाये गये हैं पर 'बिहारी-सतसई' जैसे छोटे ग्रंथो के प्रत्येक पद्य का

16. ब्रजनिधि-ग्रंथावली (ना०प्र० सभा द्वारा प्रकाशित); पृ० ४८ (भूमिका)।
17. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० २८६

चित्रांकन किया गया है। जयपुर के पोथीखाने में रज्मनामा (महाभारत का फारसी मे सारांश) की एक सचित्र प्रति सुरक्षित है जो मुगल सम्राट अकबर की आज्ञा से तैयार की गई थी [18]। इसमें १६९ चित्र है। इस पर चार लाख रुपया खर्च हुआ था और अकबरी दरबार के चौदह चित्रकारो ने इस पर काम किया था[19]। यह ग्रथ भारतीय चित्रकला के भडार का अनमोल रत्न है और मुद्रित भी हो चुका है। इस प्रकार की चित्रित पोथियो का सब से बड़ा सग्रह उदयपुर के 'सरस्वती-भडार' में पाया जाता है जहाँ लगभग ५० ग्रंथ विद्यमान है।

शिल्प—सगीतकला और चित्रकला के समान प्राचीन काल में राजस्थान की शिल्पकला भी बहुत बढी-चढ़ी थी। आबू, चितौड़, नागदा, चद्रावती, झालरापाटन आदि स्थानो के कुछ प्राचीन देवालयो में खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसे देखकर मनुष्य चकित रह जाता है। इसी तरह बहुत से अन्य स्थानो में भी शिल्प-चातुर्य्य के उत्कृष्ट नमूने पाये जाते है। उदयपुर से कोई सवा सौ मील पूरब दिशा में बाड़ोली नामक एक छोटा-सा प्राचीन गाँव है जो नवीं-दशवी शताब्दियों में बहुत समृद्ध था और भद्रावती नाम से विख्यात था। यहाँ शिव, विष्णु, गणेश, त्रिमूर्ति आदि के कई जीर्ण-शीर्ण मंदिर है जिनकी कारीगरी की भारतीय शिल्प के विशेषज्ञ फर्ग्यूसन ने भूरि-भूरि प्रशसा की है, और शेषशायी नारायण की मूर्त्ति के संबध में तो यहाँ तक कह दिया है कि मेरी देखी हुई हिंदू मूर्त्तियो में यह सर्वोत्तम है[20]। प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टाड ने भी यहाँ की तक्षण-कला को अद्भुत और वर्णनातीत बतलाया है[21]।

भाषा—प्राचीन काल में राजस्थान की राजकीय भाषा सस्कृत थी। विद्वान लोग अपने ग्रंथो की रचना इसी भाषा में करते थे और यहाँ के दानपत्र तथा शिलालेख आदि भी इसी भाषा में लिखे जाते थे। लेकिन जनसाधारण की भाषा प्राकृत थी। अशोक के समय का एक स्तंभ-लेख जयपुर राज्यान्तर्गत

---

18 टी० एच० हैंडले, मैमोरियल्स ऑव् दि जयपुर एग्जिबिशन, भाग चतुर्थ, भूमिका, पृ० १

19. वही; पृ० २

20 दि हिस्ट्री आव इडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, पृ० १३४।

21 दि एनल्स ऐड एटिक्विटीज़ आव राजस्थान (क्रुक्स का सस्करण), पृ० १७५२–१७६४।

बैराट गाँव से मिला है जो उस समय की प्राकृत में है। प्राकृत के बाद यहाँ अपभ्रंश का प्रचार हुआ। इसमें भी प्रचुर साहित्य रचा गया जिसका अधिकांश श्रेय जैन विद्वानो को है।

डिंगल—लगभग छठी से लेकर १३ वीं शती तक अपभ्रंश यहाँ की साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ रही। तदतर इसका प्रभाव क्षीण होने लगा और इसीके लोकप्रचलित रूप राजस्थानी ने इसका पद ग्रहण करना प्रारभ किया जिसका एक रूप (मारवाडी) डिंगल नाम से विख्यात हुआ।

डिंगल भाषा में चारण लोगो ने अधिक लिखा है। इसलिए कोई-कोई डिंगल साहित्य को चारण साहित्य भी कहते है। राजस्थान में इस जाति के लोग पहले पहल मारवाड में आकर बसे थे। वहाँ से धीरे-धीरे राजस्थान की दूसरी रियासतो में फैले और अपने साथ अपनी भाषा को भी ले गये। इस प्रकार इसका प्रवेश राजस्थान की अन्य रियासतो में हुआ। राजपूतो और चारणों का पारस्परिक सबध बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। उन्होने डिंगल भाषा-साहित्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। मध्यकालीन हिंदू-मुस्लिम सघर्ष के वातावरण और राजनीतिक घटना चक्रो से भी बहुत मदद मिली। राजा-महाराजाओ द्वारा सम्मानित होते देख अन्य जातियो के लोगो ने भी इसे अपनाया और इसमें साहित्य-निर्माण करना प्रारंभ किया। डिंगल साहित्य के दो सर्वश्रेष्ठ काव्य 'ढोला मारूरा दूहा' और 'वेलिक्रिसन रुकमणी री' चारणेतर कवियों ही के रचे हुए है। डिंगल का सर्वोत्तम गद्य-ग्रंथ 'नैणसी री ख्यात' भी एक वैश्य लेखक की रचना है।

डिंगल साहित्य प्रधानतया वीर रसात्मक है। इसमें राजपूत जाति के इतिहास, उसकी सस्कृति एवं उसकी भाव-भावनाओं की बड़ी सुन्दर व्यजना हुई है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसकी प्रशंसा में लिखा है कि "भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने मंद या उच्च कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसके जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता। और उसका कारण है। राजस्थानी कवियो ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगारो के बीच अपनी कविताएँ बनाई थीं। प्रकृति का तांडव रूप उनके सामने था। क्या आज कोई केवल अपनी भावुकता के बल पर फिर वही काव्य-निर्माण कर सकता है ?

"इस साहित्य में जो भाव है, जो उद्वेग है वह राजस्थान का खास अपना है। वह केवल राजस्थान के लिये ही नही, सारे भारतवर्ष के लिये गौरव की वस्तु है"।[22]

रवि बाबू का यह कथन अक्षरश. सत्य है। वास्तव में यह साहित्य है ही ऐसा। युद्ध का, रणभूमि का, वीरोल्लास का, जैसा सजीव, ओजपूर्ण और मार्मिक चित्रण डिगल साहित्य मे मिलता है वैसा भारत की अन्य किसी प्रातीय भाषा में नही मिलता। विशेषकर वीर महिलाओ के हृदयस्थ भावो का वर्णन तो डिगल के कवियो का ऐसा सुन्दर और स्वाभाविक बन पडा है कि देखकर मन मुग्ध हो जाता है —

सहणी सबरी हू सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, वळय लजाणै नाह॥ १॥
नायण आज न मॉड पग, काल सुणीजै जग।
धारा लागीजै धणी, तो दीजै घण रग॥ २॥
विण मरियाँ विण जीतियाँ, जो धव आवै धाम।
पग पग चूडी पाछटू, हू गवत री जाम॥ ३॥
खग वाहूँ उळझै घणी, मैगळ रहिया घूम।
नणदल ऊँची बाँध द्यो, बाजूबंद री लूम[23] ॥ ४॥

---

22. गजस्थान वर्ष २, अक ४, पृ० ७२। माडर्न रिव्यू, दिसबर सन् १९३८, पृ० ७१०।

23 हे सखी! और सब बाते मुझे सहन हो सकती है किंतु यदि पति मेरी चूडियो को लजा दे और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दो बाते मेरे लिये समान रूप से दाहकारी एव हृदय को उलट देनेवाली है ॥ १॥ हे नाइन! आज मेरे पैर मे महावर मत लगा, कल युद्ध सुना जाता है। यदि मेरे पति धारा-तीर्थ मे स्नान करे अर्थात् तलवार की धार से कटकर युद्ध मे काम आवे तो फिर (सती होने के समय) खूब रग देना ॥२॥ हे सखी! यदि मेरे पति बिना मृत्यु या बिना जीत के घर आ गये तो मै पग-पग पर अपनी चूडियो के टुकडे कर डालूँगी। मै भी राजपूत की बेटी हूँ ॥ ३॥ हे ननद! हाथी झूम रहे है और मै तलवार चलाना चाहती हूँ। मेरे भुजबद की लटकन को ऊपर बाँध दो। यह बहुत उलझती है ॥४॥

चौदहवीं शताब्दी में जिस समय राजस्थान में राजस्थानी भाषा का उदय हो रहा था लगभग उसी समय शूरसेन देश अथवा ब्रजमंडल में ब्रजभाषा विकसित हो रही थी जिसका आधार शौरसेनी अपभ्रंश था । प्रारभ में यह 'भाखा' कहलाती थी[24] पर बाद में ब्रजभाषा नाम से पुकारी जाने लगी । डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार सर्वप्रथम भिखारीदास ने अपने 'काव्य-निर्णय' (स० १८०३) मे 'ब्रजभाषा' शब्द का प्रयोग किया था ।[25] परन्तु उनका यह कथन ठीक नही । भिखारीदास से भी बहुत पहले के कवियो की रचनाओ में यह शब्द मिलता है —

(१) मरुभाषा निरजल तजी, करि ब्रजभाषा चोज ।
अब गुपाल या ते लहै, मग्म अनोपम मोज ।।[26]
—गोपाल कृत रसविलास (स० १६४४)

(२) सुरभाषा ते अधिक है, ब्रजभापा सौ हेत ।
ब्रजभूषन जा कौ सदा, मुख भूपन करि लेत ।।[27]
—समरथ कृत रसिकप्रिया की टीका (स० १७५५)

---

24. 'भाखा' शब्द का प्रयोग ब्रजभाषा के लिए ही नही, बल्कि सस्कृत से भिन्न अवधी आदि अन्य समकालीन लोकभाषाओ के लिये भी होता था । गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस' की अवधी को नददास ने रासपचाध्यायी' की ब्रजभापा को और राठौड पृथ्वीराज ने वेलि क्रिसन रुकमणी री की डिगल को 'भाखा' कहकर पुकारा है —

(१) "भाखाबद्ध करब मै सोई"
—रामचरितमानस

(२) "ताही ते यह कथा यथा मति भाखा कीनी"
—रासपचाध्यायी

(३) "भाखा सस्कृत प्राकृत भणता, मूझ भारती ए मरम" ।
"चारण भाट सुकवि भाखा चित्र, करि एकठा तो अरथ कहि" ।
—वेलि

25. ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० १० (भूमिका)

26 अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (स १७४६), पद्य ४५ ।

27. दानसागर भडार, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (स १७६६), पद्य १७ ।

(३) केशवदास कहे छ जे माहरी मति सस्कृत वाणीं नै विषै बुद्धि विशेष छै तो पिण हुं भाषा रस नै विषै लोलपी छु ते केहनी परे जिम देवता ने देवलोक माहे अमृत थका पिण देवांगना ना अधर ना रस नी वांछा कर अधर नीरस घणी इच्छा तिम जंपिण संस्कृत भाषा जाणु हुँ तौ पिण ब्रजभाषा नी वाछा घणी है मुझ नें ।[28]

—(केशवदास कृत) शिखनख की टीका (स० १७६२ से पूर्व)

(४) नेही महा ब्रजभाषा-प्रवीन औ सुदरतान के भेद को जानै ।
भाषा-प्रवीन सु छद सदा रहै सौ घन जू के कवित्त बखानै ।।

—घननआनद (स० १७७१-९६)

ब्रजभाषा—सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँचते-पहुँचते ब्रजभाषा ने अच्छा व्यवस्थित रूप धारण कर लिया और फिर धीरे-धीरे लगभग सारे मध्यदेश[29] की साहित्यिक भाषा बन गई जिसमें राजस्थान का भी एक बडा भाग सम्मिलित था । अत. राजस्थान में दो साहित्यिक भाषाएँ साथ-साथ व्यवहृत होने लगी, डिगल और ब्रजभाषा । कुछ समय तक ये दोनो भाषाएँ समानातर में समान गति से आगे बढ़ती रही । परन्तु बाद में डिगल पिछड़ गई और ब्रजभाषा आगे निकल गई । अपने घर में ही डिगल का पिछड जाना एक अस्वाभाविक और आश्चर्यदायक घटना थी । परन्तु इसके कुछ विशेष कारण थे । वे कारण ये हैं —

(१) डिगल एक राजाश्रित भाषा थी । इसका सारा ठाट-बाट, सारा वातावरण, सामती था । इसकी जीवन-शक्ति राजकृपा पर निर्भर थी । इसके पृष्ठपोषक राजा-महाराजा, इसमें रचना करनेवाले राजकवि और इसके प्रशंसक राजदरबारी लोग थे । जनता से सीधा संपर्क इसका न था । राजवर्ग व राजपूत जाति के ही लोग इसकी उन्नति के इच्छुक थे । लेकिन ब्रजभाषा को राजसत्ता तथा जनसाधारण दोनो का बल प्राप्त था ।

(२) डिगल में मुख्यत. चारण, भाट, मोतीसर आदि इनी-गिनी दो-

---

28. अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर, की हस्तलिखित प्रति (स १७६२) पद्य १ ।

29. कन्नौज के राजकवि राजशेखर (स ९३७–७७) के अनुसार बनारस मध्यदेश का पूर्वी बिंदु था । पजाब के कर्नाल ज़िले का पृथूदक अथवा पिहोवा उसकी उत्तरीय एव आबू पर्वत पश्चिमीय सीमा था । दक्षिण में उसका विस्तार गोदावरी तक था ।

चार भटायत जातियो के लोग ही साहित्य-रचना करते थे । दूसरी जातियो के कवि न तो इसमे लिखना पसद करते थे, न इसे बल-प्रोत्साहन देते थे । विशेषकर ब्राह्मण जाति ने तो इस भाषा को कभी छूआ भी नही । वह हमेशा इसे हीनता की दृष्टि से देखती रही । डिगल भाषा का एक भी ग्रथ अभी तक ऐसा देखने मे नही आया जो किसी ब्राह्मण द्वारा रचा गया हो । इसके विपरीत ब्रजभाषा में सभी जातियो के लोग काव्य-रचना करते थे । अतएव डिगल की अपेक्षा ब्रजभाषा मे रचना करनेवालो की सख्या बहुत अधिक थी ।

(३) डिगल भाषा के कवियो का दृष्टि-बिदु लौकिक था । वे प्राय धन-प्रतिष्ठा के लोभ से कविता करते थे । अतः नरकाव्य अधिक लिखते थे जिनमे जनसाधारण की कोई रुचि नही थी । उनके ग्रंथ राजदरबारो मे पढे जाते या राजभडारो की शोभा बढाते थे । लोकप्रियता का सहारा उन्हें नही था । लेकिन ब्रजभाषा के कवि अधिकतर श्रृगारी भक्त एव संत-महात्मा थे जो ईश-भक्ति एव लोक-कल्याण की भावना से काव्य-रचना करते थे । वे प्रेम, भक्ति, धर्म, नीति, वैराग्य आदि लोकप्रिय विषयो पर लिखते थे जिनकी ओर तत्कालीन हिंदू समाज का स्वाभाविक आकर्षण था।

(४) डिंगल के कवि अधिकतर वीर रस की कविता लिखते थे । परन्तु ब्रजभाषा के कवि श्रृंगार, वीर, शान्त आदि नवो रसो मे रचना करते थे । अत. रस-निरूपण की दृष्टि से भी ब्रजभाषा का क्षेत्र डिगल की अपेक्षा अधिक व्यापक था ।

(५) डिगल की अपेक्षा ब्रजभाषा अधिक कोमल, कर्णमधुर और बोधगम्य भाषा थी ।

(६) ब्रजभाषा के गेय पद संगीत के लिए बहुत उपयुक्त थे । यह विशेषता उसे लोकप्रिय बनाने में बहुत सहायक हुई । परन्तु डिगल इस दृष्टि से उतनी उपयोगी न थी ।

ये कुछ ऐसे सहज कारण थे जिससे डिंगल की अपेक्षा ब्रजभाषा का अधिक प्रचार और प्रभाव होना स्वाभाविक था और वही हुआ भी । इतना ही नही, अठारवी शताब्दी में पहुँचकर तो ब्रजभाषा ने एक नई परिस्थिति ही राजस्थान में उत्पन्न कर दी । वह यह थी कि उसने चारण कवियों को भी अपने प्रभाव में ले लिया और उनमें आत्मलघुता का भाव पैदा कर दिया

जिससे वे स्वयं ब्रजभाषा की तुलना मे डिगल को एक नटिया और प्रभावहीन भाषा समझने लग गये । अत. जिस डिगल को वे अभी तक अभिमान की दृष्टि से देखते आ रहे थे, जिसे वे अपनी बपौती मानते थे, और जिसमे कविता करना वे अपने लिए गौरव की बात समझते थे उसी से किनारा कर उन्होंने ब्रजभाषा का आश्रय लिया । बारहठ नरहरिदास पहले चारण थे जिन्होंने 'अवतारचरित्र' (स० १७३३) लिखकर ब्रजभाषा मे ग्रथ-रचना का सूत्रपात किया । फिर तो ब्रजभाषा में लिखने का सिलसिला बन गया और चारण कवियो ने उत्तम कोटि के अनेक ग्रथो का निर्माणकर ब्रजभाषा साहित्य के भडार को भरा ।

हिन्दी-क्षेत्र के कुछ भागो में, विशेषकर राजस्थान में, ब्रजभाषा के लिए 'पिगल' नाम प्रचलित है जिसका वास्तविक अर्थ छद-शास्त्र है । परन्तु इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नही है । कोई १८ वी शताब्दी से यह इस अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है और सिख सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरू गोविदसिह (स० १७२३–६५) के 'विचित्र नाटक' में कदाचित् पहले पहल देखने में आता है । जैसे, "भाषा पिगल दी" ।[30]

इसके पश्चात् इस शब्द का प्रयोग हिन्दी-राजस्थानी के कई ग्रथो मे मिलता है । राजस्थान मे इसका प्रयोग चारण कवियो ने अधिक किया है:—

(१) डिगळिया मिलिया करै, पिगल तणौ प्रकास ।[31]
मस्क्रती व्है कपट सज, पिगल पढियाँ पास ।।

—बाँकीदास

(२) और भी आसीयूँ मै कवि बक ।
डिगल पिगल सस्कृत फारसी मै निसक ।।[32]

—बुधाजी

(३) बदन सुकवि सुत कवि मुकट, अमरगिरा मतिमान ।
पिगल डिगल पटु भये, धुरवर चडिदान ।।[33]

—सूरजमल

30. दशम ग्रथ (श्री गुरुमत प्रेस अमृतसर द्वारा प्रकाशित), पृ० ११७ ।
31 बाँकीदास-ग्रथावली, भाग दूसरा, पृ० ८१
32 बाँकीदास-ग्रथावली, भाग तीसरा, पृ० १० (भूमिका)
33 वशभास्कर, प्रथम राशि, चतुर्थ मयूख, पृ० ४०.

(४) पिंगल डिगल पटु प्रकट, गह्रो ब्रह्म सुग्यान ।
बदनसिह रै सुत विदित, दाखौ चडीदान ।।[34]

—मुरारिदान

चारणेतर कवियो ने ब्रजभाषा के लिए पिगल शब्द का प्रयोग प्राय नही किया । उन्होने अधिकतर 'भाषा' शब्द का व्यवहार किया है ।

परन्तु किस विशेष अभिप्राय से चारण कवियो ने इस नाम को ग्रहण किया सका ठीक-ठीक पता नही लगता । चारण लोग, कहा जा चुका है, अधिकतर अपनी देशी भाषा अर्थात् मरुभाषा में कविता करते थे जो डिगल कही जाती थी । ब्रजभाषा को ये लोग परदेशी भाषा मानते थे और उसे 'भाट भायषा' (भाटो की भाषा) कहते थे । क्योकि भाट जाति के लोग प्रायः उसीमें काव्य-रचना करते थे जो पूरब की ओर से आकर राजस्थान में बसे थे । परन्तु जब ब्रजभाषा के लिये 'पिंगल' शब्द का प्रयोग होना शुरू हुआ तब चारण लोगो ने भी उसे स्वीकार कर लिया । क्योकि छद-रचना में डिगल शब्द के साथ सगति मिलाने और कविता-पाठ में सुखोच्चारण की दृष्टि से 'पिगल' शब्द 'ब्रजभाषा' शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त था । इन दो कारणो के अतिरिक्त इस क्रिया के पीछे दूसरा कोई मनोवैज्ञानिक कारण रहा हो ऐसा अनुमान नही होता ।

स्वर्गीय डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि जो लोग ब्रजभाषा में कविता करते थे उनकी भाषा पिगल कहलाती थी और इससे भेद करने के लिए मारवाडी भाषा का उसी की ध्वनि पर गढ़ा हुआ डिंगल नाम पड़ा[35] है ।' उनके इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पिंगल' शब्द (ब्रजभाषा के अर्थ में) 'डिंगल' की अपेक्षा अधिक प्राचीन है जो वास्तव में नही है । राजस्थान में कुशललाभ नाम के एक जैन कवि हो गये हैं जिनका रचना-काल स० १६१६ के लगभग है । इनका लिखा 'पिंगल-शिरोमणि' नामक छद-शास्त्र का एक ग्रंथ हाल ही में उपलब्ध हुआ है । इसमें उन्होंने मारवाडी भाषा के लिये डिंगल शब्द का प्रयोग किया है ।[36] अतः स्पष्ट ही डिंगल शब्द पिंगल की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, और इसलिए पिंगल की ध्वनि पर डिंगल शब्द के गढ़े जाने की जो बात डा० श्यामसुन्दरदास ने कही है वह

34. डिगल कोष, पृ० १९

35. हिंदी शब्दसागर की भूमिका, पृ० २८

36. राजस्थान-भारती, भाग १, अक ४, पृ० २५

निर्मूल है । डा० तेस्सितोरी ने भी डा० श्यामसुन्दरदास की उल्लिखित राय से मिलती-जुलती राय प्रकट की है । साथ ही उन्होने पिंगल के अनुकरण पर डिंगल शब्द के बनने का कारण भी बतलाया है । उनके अनुसार 'ब्रजभाषा परिमार्जित थी और साहित्य-शास्त्र के नियमो का अनुसरण करती थी । पर डिंगल इस सबन्ध में स्वतन्त्र थी । इसलिये उसका यह नाम पडा ।[37]' परन्तु डा० तेस्सितोरी का यह कथन यथार्थ नही । कारण, डिंगल भाषा के अनेक ग्रथ तथा फुटकर गीत, कवित्त, दोहे आदि अद्यापि मिल चुके है और इनमें व्याकरण, छद, रस, अलंकार आदि साहित्य के विविध अगो व नियमो का पालन उतनी ही सचाई से किया गया है जितना ब्रज-भाषा के कवियो ने अपनी रचनाओ में किया है ।

पिंगल और डिंगल दो भिन्न भाषाएँ है जो क्रमशः शौरसेनी अपभ्रंश[38] और गुर्जरी अपभ्रंश[39] से उत्पन्न हुई है। इन दोनो का पृथक् व्याकरण एव पृथक् छद-शास्त्र है और दोनो की प्रकृति भी बहुत कुछ भिन्न है । साथ ही दोनो में कुछ समानताएँ भी पाई जाती है। परन्तु इनका समुचित ज्ञान न होने से कुछ लोग पिगल और डिंगल की पहचान करने मे चूक जाते है और पिंगल को भी डिंगल कह देते है। उदाहरणार्थ पृथ्वीराज रासौ,[40] वंशभास्कर,[41] इत्यादि ग्रंथ पिंगल भाषा के है, पर कुछ विद्वान इन्हें डिंगल के बतलाते है। क्योकि इनमे कही-कही डिंगल की शब्दावली का प्रयोग हुआ है । परन्तु यह उनकी एक भारी भूल है । वास्तव में ये ग्रथ डिगल के नहीं, पिंगल के है । किसी भाषा का यथार्थ स्वरूप शब्दो से प्रकट नहीं होता, व्याकरण से स्पष्ट होता है । शब्द तो हिंदी (खडी बोली), बगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी इत्यादि भाषाओ में अधिकतर वही संस्कृत के है । फिर भी ये भिन्न भाषाएँ कहलाती है । क्योकि इनके व्याकरण के

---

37. जर्नल आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, वोल्यूम १०, पृ० ३७६

38. डा० ग्रियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया, भाग पहला 'पृ० १२६' डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी, राजस्थानी भाषा, पृ० ६४ ।

39. के०एम० मुशी, अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन के ३३ वे अधिवेशन का विवरण, पृ० ९

40 एकादश हिंदी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता का कार्य विवरण, पृ० १९

41 ओझा; कोशोत्सव स्मारक सग्रह, पृ० ६५—६६

रूप व नियम भिन्न है । इसके विपरीत उर्दू मे अधिकतर अरबी-फारसी के शब्द प्रयुक्त होते है । लेकिन उसके व्याकरण के रूप प्राय हिंदी के अनुसार चलते है और इसलिए वह हिदी के अतर्गत मानी जाती है ।[42]

नीचे पिगल और डिगल की मुख्य-मुख्य विशेषताओ का उल्लेख किया जाता है ---

मूल स्वरो का उच्चारण पिगल और डिगल दोनो मे प्राय एक ही तरह से होता है । परन्तु दो-एक व्यजन वर्णों के उच्चारण मे थोडी-सी भिन्नता पाई जाती है । जैसे, व अक्षर पिगल मे प्राय ब मे परिवर्तित हो जाता है और फिर ब ही लिखा और बोला जाता है· विपिन---बिपिन, दिवस---दिबस, वन---बन । डिगल मे इस व का उच्चारण दो प्रकार से होता है, एक सस्कृत व अथवा अग्रेजी VV की तरह और दूसरा अग्रेजी V की तरह । उच्चारण का यह भेद बतलाने के लिए लिखने में एक व को तो वैसा ही रहने दिया जाता है पर दूसरे के नीचे बिदी (व़) लगा दी जाती है । डिगल की प्राचीन लिखित पोथियो मे भी प्रायः इसी तरह लिखा देखने मे आता है ।

तालव्य श पिगल और डिगल दोनो में स में परिवर्तित हो जाता है । परिवर्तन के पश्चात् पिगल में श का उच्चारण स होने लगता है जैसा कि वह लिखा जाता है । परन्तु डिगल में ऐसा नही होता । स लिखा जाने पर भी बोला वह श ही जाता है । जैसे लिखने मे देस, सीसोदिया, वस लिखते है पर उच्चारण इनका क्रमश देश, शीशोदिया, वश होता है ।

यदि किसी शब्द का अन्तिम अक्षर ल (दीर्घान्त) हो तो पिंगल मे वह प्राय. र हो जाता है । जैसे काले---कारे, पनाले---पनारे, भोली---भोरी, हरियाली---हरियारी । परन्तु डिगल में ल का र नही होता, ळ होता है । जैसे काल---काळ, टोल---टोळ, भाल---भाळ । इसी तरह पिगल में ड का भी प्रायः र हो जाता है । जैसे ठौड़---ठौर, कुल्हाड़ो---कुल्हारो पकौड़ी--पकौरी, भिडे---भिरे । परन्तु डिंगल में इस तरह का परिवर्तन नहीं होता । ड़ उसमें ड़ ही बना रहता ह ।

संस्कृत ण पिगल में प्राय· न हो जाता है । जैसे, प्राण---प्रान, रण---रन, अरुण---अरुन । परन्तु डिगल में ऐसा नही होता । यही नही, संस्कृत, खड़ी बोली आदि के अनेक नकारान्त शब्दो को भी डिंगल में णकारान्त बना दिया

---

42. हिदी-शब्द-सागर की भूमिका, पृ० ४० । डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिदी भाषा का इनिहास, पृ० ६० ।

जाता है। जैसे नयन—नयण, दानी—दाणी, पानी—पाणी। न को ण कर देने की यह प्रवृत्ति डिंगल में बहुत पाई जाती और यह इसकी एक प्रधान विशेषता है।

क्ष का पिंगल में छ हो जाता है। जैसे, क्षोभ—छोभ, क्षिति—छिति, क्षण—छन, क्षमा—छमा। परन्तु डिंगल में क्ष का ख होता है। जैसे, क्षण—खण, क्षिति—खिति, क्षोणि—खोणि।

संस्कृत एवं खडी बोली की पुल्लिग तद्भव संज्ञाएँ, विशेषण और संबन्ध-कारक के सर्वनाम पिंगल और डिंगल दोनो में ओकारान्त होते हैं।[43] जैसे भौंरो, घोडो, आछो, गोरो, मेरो, थारो। पिंगल में शब्दो के रूपो में संज्ञा का विकृत रूप बहुवचन-'अन' लगाकर बनता है। जैसे घरन, ढोटन। डिंगल में 'आँ' लगता है। जैसे, घराँ, घोडाँ।

डिंगल में कारकों के निर्विभक्तिक और सविभक्तिक दोनो रूप मिलते है। परन्तु पिंगल में निर्विभक्तिक रूप प्राय कम देखने में आते हैं। दोनों के परसर्गों में भी बहुत भिन्नता है:—

कारक	पिंगल	डिंगल
कर्ता	नै, ने नें।	ए।
कर्म-सम्प्रदान	को, को, कौ, कौं, कूँ, कुं।	नै, प्रति।
करण-अपादान	सो, सौं; तें, ते।[44]	करि, सूँ, कनै, थी, हूँत[45] हुँतां, हूँतो।
संबध	को, कों, की, के, कें, कै, कै, की, कि।	रा-री-रे-रो; चा-ची-चै-चौ; केरा-केरी-केरो; तणा-तणी-तणो, हंदा-हदी-हंदो।
अधिकरण	मे, मैं,मै, माँझ, पै, पर।[46]	मझार, माँझ, माँ, माँझल, मधि, सें।[47]

43. इसी तरह आकारात साधारण क्रियाएँ और भूतकालिक कृदत भी दोनो भाषाओ में ओकारात होते हैं। जैसे, आवनो-आवणो, देनो-देणो, गयो, आयो।

44 इस परसर्ग के सो, सौ, मे, से, सुं, सूँ आदि रूपातर भी कही-कही देखने मे आते है।

45. इसका प्रयोग कभी-कभी अधिकरण कारक मे भी होता है। जैसे—

ढोल वरज सत्र भेज घर, धर नारेळ सुधाम।
घावा कत पधारिया, गाँवा हूँत प्रणाम।।—सूरजमल

46. इसके मे, माहि, माहि, पाँहि, माही, माँह, माह, महँ, मझारन, मधि, मध्य,मा, पें, पै, ऊपर आदि अन्य रूपो को प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है।

47. इनके अतिरिक्त मै, मै, मइ, मइ, मँहि, मँही माँहि, माँही, मझ, मझि इत्यादि का प्रयोग भी कुछ ग्रथो में दृष्टिगोचर होता है।

सर्वनाम

पुरुष वाचक

उत्तम पुरुष

कारक	पिंगल	डिंगल
एक वचन		
मूलरूप	हौं, मै,[48]	हू, म्हू, मू, म्है, अह्म, अह्मै, मइ।
विकृत रूप	मो, मौ।	म्हा, मैं।
सबध	मेरो, मेरौ मो।	म्हारो, मारो, म्हारउ
बहुवचन		
मूल रूप	हम।	म्हे, मे, आपाँ।
विकृत रूप	हम।	म्हाँ, मा, आपाँ।
सबध	हमारो, हमारौ।	म्हारो, मारो, अम्हाँ।[49]

मध्यम पुरुष

कारक	पिंगल	डिंगल
एक वचन		
मूल रूप	तू, तूँ, तैं, तें।	तूँ।
विकृत रूप	तो	तो।
सबंध	तेरो, तेरौ।	थारो, तुझ, तुझ्झ।[50]
बहुवचन		
मूल रूप	तुम।	थे, तुम।
विकृत रूप	तुम।	थाँ।
संबंध	तुम्हारो, तिहारो।	थांरो, तुम्हारो, थाँकौ।

48. इनके अतिरिक्त हो, हुँ, मैं, मे आदि का प्रयोग भी देखने मे आता है।

49 इसके म्हारौ, म्हाँकौ, हमारउ, म्हॉजी, अम्हीणइ, अम्हीणी, अमीणा, अमीणो आदि रूप भी मिलते है।

50 कही-कही 'तुहालो' रूप भी मिलता है। यथा—

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकडा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी।।

—दुरसाजी

निश्चयवाचक सर्वनाम

यह

कारक	पिंगल	डिंगल
एकवचन		
मूल रूप	यह	ओ, यो; (स्त्री०) आ, या. ।
विकृत रूप	या	इण, इणि, अण, अणी ।
बहुवचन		
मूल रूप	ये, ए	ए, अै, अइ ।
विकृत रूप	इन, इन्ह	इणाँ, अणाँ, याँ, आँ
	वह	
एकवचन		
मूल रूप	वह, वो	ऊ, वो (स्त्री०) वा
विकृत रूप	वा	उण, उणी, वणी
बहुवचन		
मूल रूप	वे, वै	वै ,
विकृत रूप	उन, विन	उणा, वणा, वां ।

अन्य सर्वनाम

	पिंगल	डिंगल
सबधवाचक	जो, जु, (बहु०) जे	जो, जिको, जिका
विकृत रूप	जा; (बहु०) जिन	जिण, जण, जणी
नित्य संबधी	सो; (बहु०) ते, से	सो, तिको, तिका
विकृत रूप	ता; (बहु०) तिन	तिण, तिणि, तिणाँ
प्रश्न वाचक	कौन, को, कौ	कुण, किण, कावण
विकृत रूप	का, कौन	किणाँ
अनिश्चय वाचक	कोऊ, कोई	कोई
विकृतरूप	काहू	केवि, कोय, कॉइ, केइ
निजवाचक	आप, आपु	आप
विकृत रूप	आपन	आपण
आदरवाचक	आप, आपु	आप, राज
विकृत रूप	आपुन	आपण, आपा आदि

क्रिया

(१) सहायक क्रिया

पिंगल और डिंगल के क्रिया-रूपो में बहुत कुछ सादृश्य पाया जाता है। वर्तमान, भूत और भविष्य निश्चयार्थ मे सहायक क्रिया 'होना' के रूप दोनो में इस प्रकार बनते है.—

	पिंगल		डिंगल	
वर्त्तमान	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	हो, हौं, हूँ	हैं, आहि	हूँ	हाँ
मध्यम पु०	है	हौ	है	हो
प्रथम पु०	है, अहै, आहि	हैं	है	है
भूत				
पुल्लिग	हो, हुतो, हुतौ हौ, हते, भयौ, भौ	हे, हुते, हते, भये	हो, हुओ, थयो हुतो	हा, थया
स्त्रीलिंग	ही, हुती, भई	हीं, हुती, भईं	ही, थई	ही, थई
भविष्य				
उत्तम पु०	ह्वैहौं	ह्वैहैं	हुऊंला, ह्वैऊला ह्वैऊंगा	हुवाला, व्है-वाला, व्हैवागा
मध्यम पु०	ह्वैहै	ह्वैहौ	हुवेला, ह्वैला, व्हैगा, होसी	हुवोला, व्होला, व्होगा
प्रथम पु०	ह्वैहै, होइहै, होयगौ	ह्वैहैं, होउगे होंहिंग, होयगे	हुवैला, व्हैला व्हैगा, हुसि	हुवैला, व्हैला व्हैगा

(२) कृदन्त

पिंगल और डिंगल की काल-रचना में वर्तमान कालिक कृदंत तथा भूत-कालिक कृदंत रूपों का व्यवहार स्वतंत्रतापूर्वक होता है। पिंगल में पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनो में वर्तमान कालिक कृदंत के रूप व्यंजनांत धातुओं में 'अत' तथा स्वरान्त धातुओं में 'त' लगाकर बनाये जाते हैं। जैसे सेवत,

खावत, जात । इन रूपों के अतिरिक्त पुल्लिग में 'अतु' तथा स्त्रीलिंग में 'ति' या 'ती' लगाकर भी रूप बनते है । जैसे परियतु, निहारति, इतराती ।

डिंगल में पुल्लिग एकवचन में 'अत' अथवा 'तौ' प्रत्यय तथा बहुवचन में 'ता' अथवा 'ताँ' प्रत्यय लगता है । जैसे, वेलत, चलतौ, जावता, नीगमताँ । स्त्रीलिंग में बहुधा 'ती' लगता है । पर कही-कही 'दी' भी देखने में आता है । जैसे, चाहंदी ।

भूतकालिक कृदन्त के रूप पिंगल और डिंगल में अधिकतर निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनते हैं । इनमें परस्पर बहुत समानता है :—

पिंगल		डिंगल	
एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
ओ, औ, यो, यौ, (स्त्री०) ई	ए, ये, यै, (स्त्री०) ईं	ओ, औ, यो, यौ इयौ, (स्त्री०) ई	आ, या, इया (स्त्री०) इयाँ

पूर्वकालिक कृदन्त धातुओ के रूप पिंगल में धातु में प्रायः इ, य, ऐ आदि लगाकर बनाये जाते है । जैसे समुझि, खोय, दै। डिंगल में इनके रूप प्रायः अ, इ, र, एवि, नै, ह, आदि प्रत्यय लगा कर बनते है । जैसे पालिअ, ठानि, जायर, प्रणमेवि, लिखनै, भरेह ।

प्रधान क्रिया

काल-रचना

उल्लिखित वर्तमानकालिक कृदन्त रूपो के अतिरिक्त पिंगल और डिंगल दोनो में वर्तमान निश्चयार्थ के लिए धातु मे नीचे लिखे प्रत्यय लगाकर भी रूप बनाये जाते है :—

	पिंगल		डिंगल	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पु०	ओ, औं, ऊँ	अइँ, ऐं, हि	ऊँ, अऊँ, औं	आं
मध्यम पु०	अहि	ओ, औ	अइ	अउ, ओ, औ
प्रथम पु०	ए, ऐ, इ, य	एँ, ऐं	अइ, अय	एह, आहि, अही

भविष्य निश्चयार्थ के रूप दोनो भाषाओ में धातु में निम्नलिखित प्रत्यय लगाकर बनते है :—

	पिंगल		डिंगल	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	ऊँगौ, औंगो, उँगौ, इहौ, इहो; (स्त्री०) औंगी, ओगी	एँगे, इहै; (स्त्री०) अहिगी	सूँ, इस, एस स्यउ, ला, गा,	स्याँ, एस, ला, गा
मध्यम पुरुष	यगौ, ऐंगौ, इहै, (स्त्री०) ऐंगी	औंगे, ओगे, हुगे, इहौ, (स्त्री०) अहुगी, ओगी, औगी	सी, से, इस, ला, गा	स्यउ, ला, गा।
प्रथम पुरुष	ऐंगौ, एगो, एगौ, यगो, इहै, (स्त्री०) ऐंगी, अहिगी, यगी	एँगे, हिगे, ऐंगे यगे, इहै (स्त्री०) आहिगी	सी, से, एस, सइ, ला, गा	स्यइ, इसइ, एह, एस्यइ, ला, गा।

भूत निश्चयार्थ के लिए पिंगल और डिंगल दोनो में भूतकालिक कृदंत के रूपो का प्रयोग होता है जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है।

शब्दकोश—जिस तरह पिंगल और डिंगल के व्याकरण सबन्धी रूपो में पर्याप्त-समानता है उसी तरह इनका शब्द-कोश भी बहुत मिलता-जुलता है। क्योकि इन दोनो भाषाओ के कवियो ने सस्कृत शब्दो ही का प्रयोग अधिक किया है चाहे वे शब्द अपने तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हो या तद्भव रूप में। अंतर है तो केवल इतना कि एक ही शब्द को दो भिन्न प्रकार से बदला गया है। पिंगल के कवियो ने उसे अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल बदला है और डिंगल के कवियो ने अपनी भाषा की प्रकृति के अनुकूल। हाँ, इतना अवश्य है कि शब्द को बदलने में डिंगल-कवियो की अपेक्षा पिंगल के कवियों ने कुछ अधिक सावधानी से काम लिया है। उन्होंने शब्द को इस तरह परिवर्तित किया है कि उसके मूल रूप को ढूँढ़ने में विशेष कठिनाई नही

पडती । परन्तु डिंगल के कवियो ने उसे इतना विकृत कर दिया है कि वह अपने मूल रूप से बहुत दूर चला गया है और उसे पहचानने मे कभी-कभी बहुत कठिनाई होती है ।

संस्कृत शब्दो का पिंगल और डिंगल मे कैसा रूप बन गया है इसे दिखाने के लिए कुछ शब्द यहा प्रस्तुत किये जाते है :—

संस्कृत	पिंगल	डिंगल
वृक्ष	बृच्छ	वरख
पार्थ	पारथ	पथ
आश्चर्य	अचरज	अछेरो
पिशुन	पिसुन	पसण
क्षिति	छिति	खत
युधिष्ठिर	जुधिस्ठिर	जुजुठिल
हनुमान	हनुमंत	हणूंत
कुटुम्ब	कुटुम	कडूंब
कपाट	किंवार	कमाड़
कश्यप	कस्यप	कासप
खड्ग	खग्ग	खग
बाणी	बानी	वाण
शावक	सावक	छावड
शार्दूल	सारदूल	सादड
किष्कधा	किस्कधा	खैखंधा

पिंगल साहित्य—पिंगल अथवा ब्रजभाषा साहित्य भी राजस्थान में बहुत रचा गया है, और कुछ लोगो की यह जो धारणा है कि राजस्थानी कवियो ने डिंगल ही में अधिक लिखा है वह निराधार है । वस्तुत राजस्थान का पिंगल साहित्य डिंगल साहित्य की अपेक्षा मात्रा में अधिक है । परन्तु इस विपुल साहित्य-राशि का बहुत अल्पाश अभी तक प्रकाश में आ पाया है और जो आया है उसका भी पूर्ण परीक्षण तथा वैज्ञानिक अध्ययन नही हो सका है । इस साहित्य के रचयिताओ के व्यक्तिगत जीवन इत्यादि के विषय की खोज का कार्य तो अभी तक व्यवस्थित रूप में आरम्भ भी नहीं हुआ है ।

विषय-वस्तु की दृष्टि से राजस्थान के समस्त पिंगल साहित्य का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है :—

(क) चरित्र काव्य
 १. रासौ काव्य
 २. अन्य काव्य

(ख) पौराणिक काव्य और महाभारत काव्य

(ग) भक्ति-काव्य
 ३. कृष्ण-भक्ति काव्य
 ४. राम-भक्ति काव्य
 ५. निर्गुण-भक्ति काव्य

(घ) रीति-काव्य
 ६. रस
 ७. अलंकार
 ८. छंद
 ९. नायिका भेद, षट्ऋतु-वर्णन, नखशिख-वर्णन आदि।

(ङ) नीति-काव्य

(च) फुटकर

(क) चरित्र-काव्य—चरित्र-काव्यो में रासौ ग्रथ मुख्य हैं। 'रासौ' शब्द संस्कृत' रास' से बना है जिसका अर्थ आचार्य हेमचन्द्र[51] और कोषकार पुरुषोत्तम देव[52] दोनों ने 'ग्वालों की क्रीड़ा' तथा 'भाषा में शृंखलाबद्ध रचना' बतलाया है।

अपभ्रंश तथा हिंदी, राजस्थानी, गुजराती, इत्यादि के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथो में यह शब्द कई तरह से लिखा मिलता है: रास, रासक, रासो, राइसो, राइसौ, रायसो, रायसौ, रासौ, रासउ, रासु। जिस काव्य-ग्रंथ में किसी राजा की कीर्ति, विजय, युद्ध-वीरता आदि का विस्तृत वर्णन हो उसे 'रासौ' कहते है। आजकल यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है और

---

51 "रास क्रीडासु गोदुहाम्"
"भाषाशृखलके"
 —अनेकार्थ सग्रह (हेमचद्र)

52. "भाषाशृंखल के रास' क्रीडायामपि गोदुहाम्
 —त्रिकाण्डशेष (पुरुषोत्तम)

इस अर्थ के आधार पर कुछ विद्वानो ने इसकी उत्पत्ति 'राजयश' शब्द से बतलाई है[53]। परन्तु उनका यह अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता। क्योकि यह शब्द काफी प्राचीन समय से प्रयुक्त होता चला आ रहा है और प्राचीन समय मे यह राजयश का द्योतक नही, बल्कि एक सामान्य वर्णनात्मक पद्य-कृति अथवा कथा-काव्य का सूचक था जैसा कि भरतेश्वरबाहुबलि-रास (स० १२४१), जीवदयारास (स० १२५७), जबूस्वामिरास (स० १२६६), इत्यादि ग्रथो से सूचित होता है। इन ग्रथो में किसी राजा के यश का वर्णन नही है।

हिदी-शब्द-सागर के सपादको ने रासौ शब्द की उत्पत्ति 'रहस्य' से, फ्रासीसी विद्वान तासी ने 'राजसूय' से और पडित रामचन्द्र शुक्ल ने 'रसायण' से मानी है।[54] परन्तु ये सब उनकी क्लिष्ट कल्पनाएँ है। भाषा-शास्त्र के नियमानुसार 'रासौ' शब्द के साथ इन शब्दो की सगति ठीक नही बैठती। वास्तव मे यह शब्द 'रास' ही से बना है। प्रारम्भ में इससे एक साधारण पद्य-कृति या कथा-काव्य का बोध होता था। परन्तु बाद में जब राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाता राजा-महाराजाओ की प्रशसा में लिखे अपने ऐतिहासिक काव्यो को 'रासौ' नाम से पुकारना शुरु किया तब से इसके अर्थ में परिवर्तन होने लगा और अब यह शब्द एक विशेष शैली पर लिख गये किसी राजा अथवा राजघराने के प्रतिष्ठित व्यक्ति के पद्यात्मक जीवनचरित्र का द्योतक बन गया हैं।

सस्कृत तथा प्राकृत साहित्य में रासौ ग्रंथ नहीं मिलते पर अपभ्रश मे कुछ मिलते है और गुजराती में तो सैकडो है जो अधिकतर जैन विद्वानो के बनाये हुए है। अपभ्रश का प्राचीनतम रासौ ग्रथ जो अभी तक उपलब्ध हुआ है वह अब्दुल रहमान का सदेशरासौ है। यह गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज अथवा कुमारपाल के शासन-समय में अर्थात् १२ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध या १३ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचा गया था।[55] यह एक खडकाव्य है। इसमें एक विरहिणी स्त्री का अपने प्रवासी पति को एक पथिक द्वारा प्रेम-संदेश भेजने का वर्णन है। इस पर एक सस्कृत अवचूरिका भी उपलब्ध है।

---

53. भारतीय विद्या, वर्ष ३, अक १, पृ० ६६
54. हिदी साहित्य का इतिहास, पृ० २८
55. आचार्य जिन विजय मुनि द्वारा सपादित 'सदेशरासक' की भूमिका, पृ० १३

प्राचीन समय मे गुजरात और राजस्थान जैन सप्रदाय के दो मुख्य केन्द्र थे। इन प्रान्तो के जैन साधु व जैन मतानुयायी अन्य लोग हजारो की सख्या में प्रतिवर्ष इधर-उधर आया-जाया करते थे। उनके इस आवागमन का प्रभाव राजस्थान के साहित्य पर भी पडा और राजस्थान में रासौ लिखने की परिपाटी चल पडी जिसके फलस्वरूप पृथ्वीराज रासौ, खुमाण-रासौ इत्यादि कई रासौ ग्रंथ यहा लिखे गये जिनका हिंदी साहित्य में अत्यन्त आदरणीय स्थान है।

इसमें कोई सदेह नहीं कि रासौ लिखने की परंपरा राजस्थान को जैन विद्वानो के द्वारा अपभ्रंश-गुजराती से प्राप्त हुई है। परन्तु जैन विद्वानो के रचे रास अथवा रासौ ग्रंथो और राजस्थानी कवियो के पिगल भाषा के रासौ ग्रथो में आकार-प्रकार, विषय-वस्तु, वर्णन-शैली इत्यादि की दृष्टि से बहुत भिन्नता है। दोहा, चौपाई, छप्पय, वस्तु, धत्ता, ठवणि आदि दो-चार साधारण कोटि के छदो में रचे जैन पडितो के ये ग्रथ बहुत छोटे-छोटे है और इनके द्वारा वर्ण्य विषय का बहुत सामान्य ज्ञान प्राप्त होता है। लेकिन राजस्थानी कवियो के रासौ ग्रथ अपेक्षाकृत बड़े है जिनमें पृथ्वीराज रासौ तो एक पूरा महाकाव्य है। ये ग्रथ भिन्न-भिन्न युगो एव स्थानों में रचे गये है पर इन सबके लिखने का ढंग लगभग समान ही है। इनके प्रारंभ में मगलाचरण और मुख्य-मुख्य देवी-देवताओ तथा गुरु की स्तुति की गई है। तदंतर राज-वशावली प्रारभ होती है जिसमें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर ग्रथ-नायक तक के राजाओ के नाम गिनाये गये है। बीच में कही-कहीं बड़े-बडे राजाओ का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से भी कर दिया गया है। मुख्य कथा चरित्र-नायक के जन्म-दिन से प्रारभ होती है जिसमें उसके अनेक युद्धो, उसकी शूर-वीरता, उसके आतंक-पराक्रम, उसके बाहुबल और सैन्यबल का अत्यन्त वीरदर्पपूर्ण वर्णन हुआ है। प्रायः ग्रथ-नायक की किसी बहुत बड़ी विजय अथवा उसकी मृत्यु के साथ ग्रथ की समाप्ति हो जाती है।

इन ग्रंथो में वीर रस की प्रधानता है पर प्रसंगानुसार शृगार, करुण आदि अन्य रसो की भी भव्य व्यंजना हुई है। इनमे छन्दो की विविधता भी पूरी-पूरी पाई जाती है। विशेषकर इनकी भाषा इतनी सजीव और सबल है कि पढ़कर भुजाएँ फडकने लगती है।

रासौ ग्रंथो के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के चरित्र काव्य भी राजस्थान में लिखे गये है। जैसे राजविलास, सुजानचरित्र, वंशभास्कर आदि। इन ग्रंथों में साहित्यिक सौन्दर्य कुछ कम और ऐतिहासिक तत्त्व कुछ अधिक देखने

में आता है। क्योकि ये ग्रथ अधिकतर इतिहास को दृष्टि में रखकर बनाये गये है।

(ख) पौराणिक काव्य—ऐतिहासिक काव्यो के अतिरिक्त ब्रजभाषा वाङ्मय को राजस्थान के कवियो की एक दूसरी बहुत बडी देन है, पुराण विषयक काव्य और महाभारत काव्य जिनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति का पूर्ण वैभव व्यक्त हुआ है। इन काव्यो की कथा-वस्तु श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, वराहपुराण वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, हरिवश, महाभारत आदि प्राचीन सस्कृत ग्रंथो से ली गई है। अतएव विषय-सामग्री की दृष्टि से इनमें विशेष नवीनता तथा मौलिकता दृष्टिगत नही होती। परन्तु भाषा-सौन्दर्य, प्रबध-पटुता, वर्णन-चमत्कार आदि काव्योचित गुणो का इनमें बहुत सुन्दर सयोग हुआ है और इस दृष्टि से इनका भारी महत्त्व है। अवतार-चरित्र, वाराणसीविलास, वीरविनोद प्रभृति रचनाएँ इसी श्रेणी की है। कुछ लोगो का कथन है कि ब्रजभाषा जितनी मुक्तक काव्य के लिए उपयुक्त है उतनी प्रबन्ध काव्य के लिए नहीं है। उनकी यह धारणा कितनी भ्रामक है, यह इन ग्रंथो से स्पष्ट है।

(ग) भक्ति काव्य—भक्ति काव्य को मुख्यत तीन भागो में बाँटा जा सकता है—राम-भक्ति काव्य, कृष्ण-भक्ति काव्य, और निर्गुण-भक्ति काव्य।

रामकाव्य की परम्परा सस्कृत साहित्य में वाल्मीकि के समय से चली आती है पर भाषा साहित्य में इसका प्रचार स्वामी रामानन्द के समय से हुआ है। रामानन्द का जन्म-काल स० १३५६ माना गया है।[56] ये श्री सप्रदाय के प्रवर्तक रामानुजाचार्य की चौथी या पाँचवीं शिष्य-परम्परा में हुए थे[57] और स्मार्त वैष्णव थे। इन्होने विष्णु के अवतार श्री राम की भक्ति पर जोर दिया और उसका प्रचार किया। इनके अनुयायी बहुत हो गये जिनका एक सम्प्रदाय बन गया। सत कबीर इनके शिष्य थे।[58] गोस्वामी तुलसीदास इनके मतानुयायी थे।[59]

स्वामी रामानन्द अच्छे साहित्यकार थे। परन्तु राजस्थान के पिंगल साहित्य पर इनका कोई सीधा प्रभाव पडा हो ऐसा सूचित नहीं होता। इस दृष्टि से

---

56. डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिंदी काव्य मे निर्गुण सप्रदाय, पृ० ४१
57 डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ० ६
58. पंडित रामचद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५।
59 डा० श्यामसुन्दरदास, हिंदी साहित्य (पचम सस्करण) पृ० १६१।

गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव अधिक गहरा रहा जैसा कि अवतारचरित्र (नरहरिदास), रामगुणसागर (प्रतापकुँवरि) इत्यादि रामचरित सबन्धी सुप्रसिद्ध पिगल ग्रथो के अवलोकन से विदित होता है। ये ग्रथ मुख्यतः तुलसी कृत रामायण के आधार पर लिखे गये है। इनके अतिरिक्त रामभक्ति विषयक अनेक दूसरे छोटे-छोटे ग्रथ एवं फुटकर पद्य जो राजस्थान में मिलते है वे भी तुलसीदास के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नही है।

कृष्ण-भक्ति काव्य का प्रारभ राजस्थान में मुख्यतः पुष्टि सप्रदाय के प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य (स० १५३५–८७) के कारण हुआ। वल्लभाचार्य भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे और भक्त से अधिक कवि थे। वे कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर उनकी भक्ति का उपदेश देते थे। उन्होने भारतवर्ष के अनेक भागो में भ्रमण कर अपने सिद्धातो का प्रचार किया और उनका सप्रदाय स्वामी रामानद के सम्प्रदाय से भी अधिक व्यापक हुआ। स० १५४६ में वल्लभाचार्य ब्रज गये ओर वहा श्रीनाथजी का मंदिर स्थापित किया।[60] वल्लभाचार्य के स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके सुपुत्र गोपीनाथ ने अपने पिता के कार्य को हाथ में लिया और उसे बड़ी चतुराई से संभाला। परन्तु आठ वर्ष बाद इनकी भी मृत्यु हो गई। इसलिये वल्लभाचार्य्य के द्वितीय पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने आचार्य पद को ग्रहण किया। विट्ठलनाथ बडे गुणाढ्य और व्यक्तित्वसम्पन्न पुरुष थे। ये ललित कलाओ के बडे प्रेमी और पोषक थे। विशेषकर काव्य-कला को इनसे बहुत प्रोत्साहन मिला। इन्होने ब्रजभाषा के आठ सर्वोत्तम कृष्णभक्त कवियो को चुनकर "अष्टछाप" की स्थापना की जिसमें सूरदास, कुंभनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास सम्मिलित थे। इन प्रेमोन्मत्त भक्त कवियो ने कृष्णभक्ति की एक विशाल सरिता ब्रजमडल मे बहा दी जिसकी एक धारा इस रेतीले राजस्थान में भी पहुँची जो अभी तक लहरा रही है।

राजस्थान के पिंगल भाषा के कवियो में कृष्णदास पैहारी और मीराँ-बाई अष्टछाप वाले कवियो के समकालीन थे। इनके उपरात तो यहाँ नागरी-दास, हितवृन्दावनदास, ब्रजनिधि इत्यादि कई उत्तमोत्तम कृष्णोपासक कवि हुए जिनके ग्रंथ ब्रजभाषा साहित्य की अमूल्य संपत्ति और भारतीय साहित्य के गौरव की वस्तु माने जाते है।

राजस्थान का निर्गुण-भक्ति काव्य दादू पन्थ, चरणदासी पंथ, राम-

---

60. डा० दीनदयाल गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ७१।

स्नेही पथ आदि के अनुयायी सत-महात्माओ की "वाणियो" के रूप में मिलता है। कुछ थोड़ा-सा अन्य कवियो का रचा हुआ भी है पर वह विशेष महत्त्व का नहीं है। यह समस्त साहित्य 'सत-साहित्य' कहलाता है। इस पर कबीर-पथी साहित्य का प्रभाव यथेष्ट पाया जाता है। क्या भाषा, क्या वर्णन-शैली, क्या विषय-वस्तु सभी पर कबीर-साहित्य की छाप है। इसमें निराकार ईश्वर गुरुदेव, सत्सग, दया, प्रेम, क्षमा, शील, सतोष, इत्यादि की महिमा गाई है। कही-कही रहस्यवाद की झलक भी है जो सूफियों के प्रभाव का फल है। इसमें शान्त रस का प्राधान्य है और मुख्य छद दोहा प्रयुक्त हुआ है। इस साहित्य का वह अश जिसमे सत महात्माओ के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डाला गया है विशेष रूप से बहुत उपयोगी है।

(घ) रीति साहित्य—पिंगल साहित्य का एक बहुत बडा अश रीति साहित्य के रूप में मिलता है जो बहुत उल्लासपूर्ण एव शृंगार रस से ओत-प्रोत है। रीति साहित्य के प्रथम कवि जान थे जो जाति के मुसलमान थे। इनके रचे रसमजरी, रसकोष, भावशतक आदि ग्रथो का पता है। इनके बाद इस विषय के इतने ग्रथ लिखे गये है कि देखकर अचभा होता है। इनमें महाराजा जसवन्तसिंह कृत 'भाषाभूषण', कुलपति मिश्र कृत 'रसरहस्य', सोमनाथ कृत 'रसपीयूषनिधि', दलपतिराय और बंसीधर कृत 'अलकाररत्नाकर', रावराजा बुधसिह कृत 'नेहतरग', और कविराजा मुरारिदान कृत 'जसवंत जसोभूषण' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(ङ) नीति-काव्य—पिंगल भाषा के कवियो का नीति, ज्ञान तथा उपदेश विषयक साहित्य भी राजस्थान में यथेष्ट मात्रा में पाया जाता है। इस विषय के प्रमुख कवि वृन्द है जिनकी 'सतसई' हिंदी साहित्य की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। इसमें नीति एव लोक-व्यवहार सबन्धी बातो का बहुत सरस एवं चमत्कारपूर्ण विश्लेषण हुआ है। इनके उपरात उमेदराम, प्रताप-सिंह, बालाबख्श प्रभृति अन्य कवियो की रचनाओ में भी नीति संबन्धी सूक्तियो का अच्छा सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

(च) फुटकर—इनके अतिरिक्त संगीत, कोष, शकुन, वैद्यक, वृष्टि-विज्ञान, रमल, रत्न-परीक्षा, स्तोत्र, कथा आदि अन्य फुटकर विषयो पर रचे ग्रंथ भी मिलते है।

भूमिका के तौर पर ऊपर राजस्थान और राजस्थान के साहित्य से संबंधित कुछ आवश्यक बातो का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। अगले

पृष्ठो में यहाँ के पिंगल साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है जो कालक्रमानुसार निम्नलिखित तीन भागो में विभक्त होता है :—

प्रारभ काल	सं० १५५० से १७०० तक
मध्य काल	स० १७०० से १९०० तक
आधुनिक काल	सं० १९०० से अब तक

दूसरा अध्याय

प्रारंभ काल (सं० १५५०–१७००)

चौदहवीं शताब्दी मे ब्रजभाषा अपभ्रंश से पृथक् एक भिन्न भाषा के रूप में प्रकट होने लग गई थी यह बात पहले कही जा चुकी ह । परन्तु किसी भाषा के साहित्य में व्यवहृत होने के योग्य बनने में कुछ समय लगता है । अत. कुछ काल तक ब्रजभाषा बोलचाल की भाषा रही होगी और फिर इसका साहित्य में व्यवहार होना आरभ हुआ होगा । ब्रजभाषा की जो साहित्यिक सामग्री अभी तक उपलब्ध हुई ह उसके परीक्षण से ज्ञात होता है कि साहित्य-रचना के योग्य बनने में ब्रजभाषा को लगभग २००–२५० वर्ष का समय लगा था । इस अनुमान के आधार पर ब्रजभाषा में साहित्य-रचना का श्रीगणेश स० १५५० के आसपास माना जा सकता है । डा० धीरेन्द्र वर्मा के शब्दो में "इलाहाबाद के निकट मुख्य केन्द्र अरैल (अडेल) के अतिरिक्त जिस समय श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य को ब्रज जाकर गोकुल तथा गोवर्धन को अपना द्वितीय केन्द्र बनाने की प्रेरणा हुई उसी तिथि से ब्रज की प्रादेशिक बोली के भाग्य पलटे । स० १५५६ बैसाख सुदी ३ आदित्यवार को गोवर्धन में श्रीनाथजी के विशाल मदिर की नीव रखी गई थी । यही तिथि साहित्यिक ब्रजभाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है "।[1] डा० साहब का यह मत यथार्थ है और बिना पक्षपात एवं भावुकता के शुद्ध वैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर स्थापित किया गया है ।

डा० ग्रियर्सन और उनके मतानुयायी कुछ विद्वानो ने खुमाण रासौ, बीसलदेव रासौ,पृथ्वीराज रासौ और विजयपाल रासौ को हिंदी के आदि काल की अर्थात् स० १५५० के पूर्व की रचनाएँ माना है और इस मान्यता के आधार पर उन्होंने अपने रचे हिंदी साहित्य के इतिहासो में 'वीरगाथा काल' की स्थापना की है । परन्तु उनकी यह स्थापना अनुचित है और निराधार भी । हुआ यह है कि इन ग्रंथो के चरित्रनायको के अस्तित्व-काल को इन ग्रथों का रचना-काल मान लिया गया है जो स्पष्ट भूल है । वास्तव में ये ग्रंथ इतने प्राचीन नहीं है । खुमाण रासौ और बीसलदेव रासौ राजस्थानी भाषा के ग्रथ हैं । अत. उनके विषय में यहां कुछ कहना अप्रासगिक होगा । परन्तु पृथ्वीराज रासौ और विजयपाल रासौ ब्रजभाषा अथवा पिंगल भाषा की रचनाएँ हैं जिनका विवेचन आवश्यक है ।

---

1 ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० ११

पृथ्वीराज रासौ—कहा जाता है कि आज-कल 'पृथ्वीराज रासौ' नाम से जो ग्रंथ प्रचलित है उसका रचयिता चद बरदाई नाम का कोई भाट था जिसने ईसा की बारहवी शताब्दी में उसे बनाया था[2]। परन्तु इस विषय में इतिहासवेत्ताओं और साहित्यकारो में मतभेद है जो गत ६५ वर्षों से चला आ रहा है और अभी भी पूर्णत समाप्त नही हुआ है। हाँ, इतना अवश्य है कि यह मतभेद अब उतना गहरा नही रहा जितना प्रारभ में था। इसका मुख्य कारण यह है कि रासौ सबन्धी विवाद मे इतिहासकारो की अब कोई रुचि नही रही। वे इस विषय मे अपना अतिम निर्णय दे चुके हैं और वह यह है कि 'पृथ्वीराज रासौ एक अनैतिहासिक ग्रथ है जो उसके चरित्र नायक महाराज पृथ्वीराज चौहाण के समय से बहुत पीछे बनाया गया है।[3]

इतिहासकारो की इस राय को साहित्यज्ञो ने भी प्राय. मान लिया है। परन्तु फिर भी कुछ ऐसे व्यक्ति शेष है जो इसे स्वीकार करने को तैयार नही हैं। उनके इस दुराग्रह के दो कारण प्रतीत होते है—(१) उनकी भावुकता और (२) ऐतिहासिक तथ्यो से उनकी अनभिज्ञता।

कुछ लोग ऐसे भी है जिनमें जातीय पक्षपात अथवा व्यक्तिगत स्वार्थ कार्य कर रहा है, और सच तो यह है कि इन्ही लोगो ने रासौ संबन्धी विवाद को उलझाया है और आज भी उसे अधिकाधिक उलझाने की चेष्टा में है। परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है, न इनके विचारो का कोई विशेष मूल्य है। क्योकि अब लोग इनके वास्तविक मंतव्यो को ताड गये है।

पृथ्वीराज रासौ का परिचय आधुनिक जगत् को पहले पहल सवत् १८८६ (सन् १८२९ ई०) में मिला। जब इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड के 'एनलस ऐंड एंटिक्विटीज ऑव राजस्थान' का प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ। इस ग्रथ में

---

2 कर्नल टॉड; दि एनलस ऐंड एंटिक्विटीज ऑव राजस्थान (प्रथम सस्करण), पृ० २५४। ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान पृ० ३। मोहनलाल-विष्णुलाल पडया, पृथ्वीराज रासो की प्रथम सरक्षा, पृ० १। मिश्रबधु, हिंदीनवरत्न (तृतीय मस्करण); पृ० ५७६–६०७।

3 कविराजा श्यामलदास, पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, पृ० ८७। मुशी देवीप्रसाद, नागरीप्रचारिणी पत्रिका; भाग ५, स० १६०१; पृ० १७०। गौरीशकर-हीराचद ओझा, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० २६-६६।

उन्होंने रासौ की बडे ऊँचे शब्दो मे प्रशंसा की और उसे इतिहास का एक अमूल्य ग्रंथ बतलाया.—

"चंद का यह ग्रथ अपने समय का एक विश्वमुखीन इतिहास है। इसके ६४ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम सबन्धी एक लाख छद है जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्वपुरुषो का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिये राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखनेवाली जातियाँ इसे अपने संग्रहालयो में रखती है और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओ का पता लगाती है जिन्होंने किर्मान के दर्रों में, जब कि युद्ध के बादल हिमालय से हिंदोस्तान तक के मैदानो में गडगडा रहे थे युद्ध-तरंगो का जल-पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धो, उनकी सधियो, उनके वशवर्ती अनेक शक्ति-शाली राजाओ, उनके निवास-स्थानो तथा वशावलियो ने चद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्त्व का एक अमूल्य ज्ञापन (Memorandum) बना दिया है तथा देव-गाथाओ, रीति-व्यवहारो व मनुष्य के मन के इतिहासो का भी वह एक कोषागार है[4]।

इतना ही नही, रासौ की कविता से टॉड साहब इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इसके तीन हजार छंदों का अंग्रेजी अनुवाद भी कर डाला[5]।

किन्तु एक भारी भूल उनसे यह हुई कि उन्होंने रासौ को पृथ्वीराज के समय की रचना समझ लिया और उसके अनेक अंशो को ऐतिहासिक तथ्य-प्रमाणो के रूप में अपने ग्रंथ में स्थान दिया। इससे उनके ग्रंथ में और उसके आधार पर लिखे गये सैकडो दूसरे ग्रथो में इतिहास सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ आ गईं जिनका निराकरण अभी तक भी पूरी तरह नहीं हो पाया है। परन्तु इसमें टॉड साहब का विशेष दोष न था। उन दिनो भारतवर्ष में ऐतिहासिक शोध-कार्य का श्रीगणेश हुआ ही था और प्राचीन शिलालेख, मुद्राएँ, ताम्र-पत्र, हस्तलिखित ग्रंथ इत्यादि साधन इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न थे जितनी प्रचुर मात्रा में आजकल मिलते है जिनकी सहायता से वे रासौ की घटनाओ, तिथियो आदि की ठीक-ठीक जाँच करने और उनकी वास्त-विकता का पता लगाते।

परन्तु टॉड साहब के लेख से एक बहुत बड़ा लाभ यह हुआ कि देश-

4. दि एनल्स ऐंड एंटिक्विटीज़ आव राजस्थान (प्रथम संस्करण), पृ० २५४।
5. वही, पृ० २५४।

विदेश के विद्वानो का ध्यान रासौ की ओर आकर्षित हुआ और उन्होने इसका अध्ययन करना प्रारभ किया ।

इन अध्ययन-कर्त्ताओ मे 'इस्त्वार द ला लितरात्यूर इदुई ए इदुस्तानी' (सवत् १८९६=सन् १८३९ ई०) के रचयिता फ्रांसीसी विद्वान गार्सा दतासी का नाम शीर्षस्थानीय है । अपने इस ग्रथ में तासी ने चद को पृथ्वीराज का समकालीन और उसका समय ईसा की १२ वी शताब्दी बतलाया है जिसका आधार कर्नल टॉड का उपरोक्त लेख ही प्रतीत होता है । क्योकि बात इन्होने भी वही कही है जो कर्नल टॉड ने लिखी है । केवल शब्दो का थोडा-सा अन्तर है । अनुमान होता है, तासी ने पृथ्वीराज रासौ की दो-एक हस्तलिखित प्रतियाँ भी देखी थी जिनका उल्लेख उन्होने अपने इस ग्रंथ में चद के वर्णन के साथ किया है । इन प्रतियो मे एक प्रति रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन के पुस्तकालय की और दूसरी मैकेंजी के संग्रह की थी । तासी ने इस ग्रंथ मे राबर्ट लिज नामक एक रूसी विद्वान का भी उल्लेख किया है जिन्होने रूसी भाषा में रासौ के एक खड का अनुवाद किया था जो सन् १८३६ मे सेंट पिटर्सबर्ग में प्रकाशित किया जाने को था परन्तु अनुवादक की असामयिक मृत्यु हो जाने से प्रकाशित नही किया जा सका ।[6]

तासी के पश्चात् जिन पाश्चात्य विद्वानो ने रासौ पर काम किया उनमें एफ० एस० ग्राउस, जॉन बीम्स और रूडोल्फ होर्नली के नाम उल्लेख योग्य है । इन्होने रासौ की कई हस्तलिखित प्रतियाँ ढूँढ निकालीं और उसके कुछ खंडों का सम्पादन किया तथा उनका अंग्रेजी अनुवाद छपवाया । साथ ही रासौ की भाषा आदि पर कुछ फुटकर लेख भी लिखे जो एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, के जर्नल में प्रकाशित हुए ।[7] ये लेख सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी बडे महत्त्व के है और इन विद्वानो के गभीर अध्ययन तथा अथक परिश्रम के परिचायक है । कहना न होगा कि ये तीनो पाश्चात्य विद्वान कर्नल टाड के मतानुगामी थे और चंद को हिंदी भाषा का आदि कवि तथा रासौ का रचनाकाल १२ वी शताब्दी मानते थे[8] और यही मानकर इन्होंने रासौ पर इतना कठोर परिश्रम किया था ।

6. ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० ४ ।

7. सेंटिनरी रिव्यू आव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, सन् १७८४–१८८३, परिशिष्ट सी०, पृ० १०५ ।

8. वही, पृ० १६७ ।

जिस समय ये विद्वान एशियाटिक सोसाइटी के तत्वावधान में रासौ संबन्धी उक्त कार्य कर रहे थे लगभग उसी समय उदयपुर के कविराजा श्यामलदास मेवाड का वृहत् इतिहास 'वीरविनोद' लिख रहे थे। इस प्रसग मे उनको पृथ्वीराज रासौ के अध्ययन का अवसर मिला और इतिहास विषयक जो त्रुटियाँ उनके देखने मे आई उन पर हिंदी में एक लेख लिखकर उसे 'पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित करवाया (स० १९४२) इसी का अग्रेजी अनुवाद बाद में एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल मे प्रकाशित हुआ[9]।

इस लेख मे श्यामलदास ने रासौ की कुछ घटनाओ, तिथियो आदि को इतिहास की कसौटी पर कसा और उसके सबन्ध में निम्नलिखित बातें बतलाई —

(१) पृथ्वीराज रासौ पृथ्वीराज अथवा चद के समय से बहुत पीछे बना है[10]।

(२) इसका रचयिता बेदला या कोठारिया के चौहाणो का आश्रित कोई भाट था जिसने अपनी जाति का बडप्पन दिखलाने के लिये इसे रचा था[11]।

(३) यह ग्रथ इतिहास की दृष्टि से दोषपूर्ण और निरर्थक है[12]।

(४) इसका निर्माण सं० १६४० और स० १६७० के बीच में हुआ है[13]।

इससे पृथ्वीराज रासौ के सबन्ध में नई चर्चा खडी हो गई। उन दिनो मथुरा-निवासी मोहनलाल-विष्णुलाल पड्या उदयपुर की 'महद्राजसभा' के सेक्रेटरी थे। उदयपुर के कुछ राजदरबारी राव-भाटो ने पड्याजी को घेर लिया और रासौ सम्बन्धी अनेक मिथ्या धारणाएँ उनके मस्तिष्क में भर दी तथा श्यामलदास के विरुद्ध खडा किया। पड्याजी प्राचीन हिंदी साहित्य के सुज्ञाता और अध्ययनशील व्यक्ति थे। परन्तु राजस्थान की भाषा, राजस्थान के इतिहास और राजस्थान की साहित्यिक परम्पराओं से अनभिज्ञ थे। इसलिए राव-भाटो के धोखे में आ गये। उन लोगों ने पृथ्वीराज और चंद की झूठी वंशावलियाँ, नकली पट्टे-परवाने और रासौ की बनावटी हस्तलिखित प्रतियाँ पंड्याजी को दी। इस सामग्री के आधार पर उन्होंने 'पृथ्वीराज रासौ की

9. सख्या १, भाग १, सन् १८८६।
10. पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, पृ० २।
11. वही, पृ० ३।
12. वही, पृ० ८७।
13 वही, पृ० ७५।

प्रथम संरक्षा' नामक एक छोटी-सी पुस्तक तैयार की जो स० १६४४ में प्रकाशित हुई । इस पुस्तक में उन्होने पृथ्वीराज रासौ के कर्त्ता चंद का प्रसिद्ध चौहाण राजा पृथ्वीराज के समय मे होना सिद्ध करने की भरसक चेष्टा की जो निष्फल रही। कविराजा श्यामलदास के उल्लिखित आक्षेपो मे से एक का भी सतोषजनक उत्तर उनसे न बन सका ।

पृथ्वीराज रासौ मे सब से अधिक गडबडी सवतो की पाई जाती है। इसका कारण पड्याजी ने यह बतलाया कि पृथ्वीराज रासौ में विक्रम सवत् का नही, बल्कि एक सवत् विशेष, अनद विक्रम सवत्, का प्रयोग हुआ है जिसमें ६०।६१ वर्ष जोड देने से विशुद्ध विक्रम सवत् निकल आता है[14] । परन्तु उनकी यह कल्पना भी निराधार सिद्ध हुई[15] ।

अभी तक जॉन बीम्स आदि अग्रेज विद्वान इस विषय में मौन थे । कविराजा श्यामलदास के लेख से उनके मन में सदेह अवश्य उत्पन्न हो गया था पर वे इस चिता में थे कि कोई पाश्चात्य विद्वान उनकी बात का समर्थन करे । सौभाग्य से वह अवसर भी शीघ्र ही आ गया और उसका श्रेय प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता जर्मन विद्वान डा० बूलर को मिला । स० १६३२ में उनको कश्मीर में सस्कृत-ग्रथो की खोज करते समय 'पृथ्वीराज-विजय' नामक महा-काव्य की भोजपत्र पर लिखी हुई एक अपूर्ण प्राचीन प्रति मिली । इसका अध्ययन करने पर उनको मालूम हुआ कि इसका रचयिता, जयानक कवि, पृथ्वीराज का समकालीन और उनका राजकवि था । इसमें दी हुई पृथ्वीराज की वंशावली तथा उनके जीवन सबन्धी अन्य घटनाओ को उन्होने पृथ्वीराज रासौ के विरुद्ध और शिलालेखो से मिलता-जुलता पाया ।

इस खोज की सूचना डा० बूलर ने एक पत्र द्वारा एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, को दी । पत्र के अतिम भाग में उन्होंने लिखा कि "मै समझता हूँ, चंद के रासौ का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय तो अच्छा होगा । यह ग्रथ जाली है जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था । 'पृथ्वीराजविजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बदीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट था न कि चद बरदाई[16] ।"

---

14. पृथ्वीराज रासौ, आदि पर्व (ना० प्र० सभा), पृ० १३६–१४४

15. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग १, स० १६६७, पृ० ३७७–४५४ ।

16 प्रोसीडिंग्ज आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव बगाल, सख्या ४ और ५ (अप्रैल–मई), सन् १८६३, पृ० ६४–६५ ।

डा० बूलर के इस पत्र से पाश्चात्य विद्वानो का रहा-सहा संदेह दूर हो गया और एशियाटिक सोसाइटी ने रासौ का प्रकाशन बन्द कर दिया।

इस पर मोहनलाल-विष्णुलाल पड्या और बाबू श्यामसुन्दरदास ने रासौ के सपादन का काम अपने हाथ में लिया और उसे नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की ओर से प्रकाशित करवाया (स० १९६२)। इससे यह ग्रथ सर्वसाधारण को सुलभ हो गया और विद्वानो को इसके पक्ष-विपक्ष में सम्मति प्रकट करने का अवसर मिला जिसका उन्होने भरपूर लाभ उठाया। रासौ पर सब से अधिक श्रम स्वर्गीय पडित गौरीशकर-हीराचन्द ओझा ने किया। इन्होने इतिहास, भाषाशास्त्र आदि विभिन्न दृष्टियो से इसकी परीक्षा की और अन्त में इसे सं० १६०० के आसपास का रचा हुआ[17] एक अनैतिहासिक ग्रंथ बताया। उन्हीं के शब्दो में "पृथ्वीराज रासौ बिलकुल अनैतिहासिक ग्रथ है।[18] उसमें चौहाणो, प्रतिहारो, और सोलंकियो की उत्पत्ति के सबन्ध की कथा, चौहाणों की वंशावली[19], पृथ्वीराज की माता,[20] भाई, बहन, पुत्र, राणियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओ के संवत् और प्राय. सभी घटनाएँ तथा सामतो आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित है। कुछ सुनी-सुनाई बातो के आधार पर इस काव्य की रचना की गई है।[21] यदि पृथ्वीराज रासौ पृथ्वीराज के समय मे लिखा जाता तो इतनी बडी अशुद्धियो का होना असंभव था।"

जहाँ तक रासौ की ऐतिहासिकता का सबन्ध है पडितजी की उक्त राय मान्य है और देश-विदेश के सभी प्रतिष्ठित विद्वानो ने इसे मान लिया है। अतः इस विषय मे यहाँ कुछ कहना केवल पिष्टपेषण होगा। अब झगडा सिर्फ इसके निर्माण-काल सम्बन्धी रह गया है और इसी पर यहाँ विचार करना है।

अनुश्रुति है कि चंद बरदाई महाराज पृथ्वीराज चौहाण का राजकवि और सामत था। परन्तु इसका कोई लिखित प्रमाण अभी तक हस्तगत नहीं हुआ। आचार्य श्री जिन विजय मुनि को चंद नामक किसी कवि के चार फुटकर कवित्त (छप्पय) मिले है जो अपभ्रश भाषा में है।[22] जिस प्राचीन प्रति

17. कोशोत्सव स्मारक सग्रह, पृ० ६६।
18. वही, ६५।
19. वही; ३९।
20. वही, ४१।
21. वही, ६५।
22. पुरातन प्रबन्ध सग्रह; पृ० ८६, ८८, और ८९।

में ये छप्पय मिले हैं वह सं० १५२८ की लिखी हुई है ।[23] इससे मालूम पड़ता है कि चद नाम का कोई कवि प्राचीन समय में, कम से कम सं० १५२८ से पहले हुआ अवश्य है । परन्तु वह चंद कब हुआ, कहाँ हुआ, वह किस जाति का था, उसने क्या लिखा, कितना लिखा इत्यादि बातो का कुछ पता नहीं है । अत. उस चंद का अधुना प्रचलित पृथ्वीराज रासौ से सबन्ध जोड़ना अनुचित है । क्योकि इसकी भाषा स्पष्ट बतला रही है कि यह विक्रम की १८ वी शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं है । न १८ वी शताब्दी से पहले के सस्कृत, हिदी, राजस्थानी आदि के किसी ग्रंथ में इसका नाम दृष्टिगोचर होता है । यहा तक कि पृथ्वीराजविजय महाकाव्य (सं० १२४९), प्रबन्धचिंतामणि (स० १३६१), हमीर महाकाव्य (स० १४६०), सुर्जनचरित्र (स० १६३५) इत्यादि ग्रंथों में भी, जिनमें पृथ्वीराज अथवा चौहाण-वंशी अन्य राजाओं का विस्तृत वर्णन है, रासौ का नाम नहीं है ।

रासौ साहित्यिक दृष्टि से एक बहुत उत्तम कोटि का ग्रंथ है । वह कोई ऐसी साधारण रचना नही है कि जिसकी उपेक्षा की जा सके । यदि वह १८ वीं शताब्दी के पूर्व रचा गया होता तो उल्लिखित ग्रंथो में से किसी न किसी में इसका नामोल्लेख अवश्य होता ।

पृथ्वीराज रासौ का प्रथम प्रामाणिक उल्लेख 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' में मिलता है । इसके तीसरे सर्ग में रावल समरसिंह के वर्णन में इसका रचयिता छोटिग भट्ट लिखता है कि 'समरसिंह ने पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई से विवाह किया था और शहाबुद्दीन की लड़ाई में वह मारा गया जिसका वृत्तान्त भाषा के रासौ ग्रंथ में लिखा है ।[24]

---

23. वही, पृ० ३ (प्रास्ताविक वक्तव्य)

24. तत समरसिहाख्य पृथ्वीराजस्य भूपते ।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दत ।।२४।।
गोरीसाहिबदीनेन गज्जनीशेन सगरम् ।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामतशोभित ।।२५।।
दिल्लीश्वरस्य चोहाननाथस्यास्य सहायकृत् ।
स द्वादशसहस्रै स्ववीराणा सहितो रणे ।।२६।।
बध्वा गोरीपति दैवात् स्वर्यांत सूर्यबिबमभित् ।
भाषा"रासा"पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्तिविस्तर ।।२७।।

—सर्ग ३

तदंतर दलपति मिश्र कृत जसवत-उद्योत,[25] कवि जदुनाथ कृत वृत्तविलास[26] कवि वल्लभ कृत कुन्तीप्रसन्नाख्यान,[27] आदि १८ वीं १९ वीं शताब्दी के ग्रथो में इसका नाम दिखाई देता है। यथा—

सयोगिता कुमारिका, रच्यौ स्वयवर काजु।
देस विदेसनि ते तहाँ, आयौ राज समाजु ॥ ४०१ ॥
चद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि।
सग सोरह सामत ले, गयो गुपत अनुहारि ॥ ४०२ ॥
सयोगिता कुमारिका, वर्‌यौ जहाँ चौहानु।
तही पिथौरा कह दयौ, राइ अभै जिय दानु ॥ ४०३ ॥
रासौ पृथ्वीराज कौ, तहाँ बहुत विस्तारु।
मै वरन्यौ सछेप ही, सकल कथा को सारु ॥ ४०४ ॥

—जसवत-उद्योत

एक लाख रासौ कियो, सहस पच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान ॥ ५६ ॥

—वृत्तविलास

---

25. इस ग्रथ मे इसका रचनाकाल स० १७०५ दिया हुआ है (पाँच अधिक सत्रसई,सवत को परमानु)। परन्तु इसमे महाराजा जसवन्तसिह के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओ का वर्णन भी है जो स० १७०५ के बाद मे हुई थी। अत यह सवत् सदिग्ध है। लेकिन इस ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय मे सुरक्षित है जो स० १७४७ की लिखी हुई है। इसलिये यह स० १७४७ से पहले का रचा हुआ तो है।

26 ये करौली के यदुवशी राजा गोपालसिह (गोपालपाल) के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १८०० है। देखिये कोशोत्सव स्मारक सग्रह मे पडित गौरीशकर-हीराचन्द ओझा का लेख, पृ० ६४।

27. वल्लभ गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि प्रेमानन्द (स० १६९३–१७९१) के पुत्र थे। कुतीप्रसन्नाख्यान की रचना उन्होने स० १८३८ मे की थी। देखिये, श्रीकन्हैयालाल - माणिकलाल मुशी कृत गुजरात ऐंड इट्स लिट्रेचर पृ० २००।

भारत सम् प्रमाण, रासा ना तमासा भाळो ।
कर्या भारत बेत्रण, आरत उबेखिए ।।
पृथ्वीश प्रशमा कथी, मानशे नुं मोधु तेमा ।
प्रेमानन्द नी कविता, सविता शी पेखिए ।।
ब्राह्मण थी भाट थया, वशज विधिना आतो ।
कवीश्वर ना पिता थी, चद मद देखिए ।।

—कुन्तीप्रसन्नाख्यान

'राजप्रशस्ति महाकाव्य' एक इतिहास-प्रसिद्ध ग्रथ है । यह ग्रथ महाराणा राजसिह के बनवाये हुए 'राजसमद' नामक तालाब[28] की बाँध पर पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओ पर खुदा हुआ है, और भारत भर में सब से बडा शिलालेख तथा शिलाओ पर खुदे हुए ग्रथो में सब से बडा है ।[29] इसमें २५ सर्ग है और १०१७ श्लोक । यह काव्य कोरा कल्पना-प्रसूत नही है । इसमें इतिहास और काव्य दोनो का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

इसके लिए सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिह ने बहुत धन व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी । परिणाम-स्वरूप प्राचीन ग्रंथो आदि के रूप में इतिहास-विषयक प्रचुर सामग्री प्रकाश में आई और 'राजरत्नाकर', 'राजविलास', 'राजप्रकाश' इत्यादि कई ग्रंथ उसी समय नये लिखे गये जिन सब की मूल प्रतियाँ उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित है ।[30] इसी समय चंद का कोई वशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासौ लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है । यदि यह व्यक्ति रासौ को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती । अतएव चद-रचित बतलाकर उसने इस सारे झगड़े का अंत कर दिया । चंद का नाम लोक-प्रचलित था ही । लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया ।

'राजप्रशस्ति महाकाव्य' का लिखना स० १७१८ में प्रारभ हुआ था

---

28 यह तालाब उदयपुर से ४० मील उत्तर-पूर्व मे है । यह चार मील लंबा, पौने दो मील चौडा और ५५ फीट गहरा है । इसकी बनवाई मे १०५४७५८४ रुपया खर्च हुआ था ।

29. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ५७४ ।

30. ए कैटेलॉग आव मैनुस्क्रिपट्स इन दि लाइब्रेरी आव हिज हाइनेंस दि महाराना आव उदयपुर; पृ० १२२, २५४ ।

प्रारंभ हुआ था और समाप्ति उसकी सं० १७३२[31] में हुई थी। अतः इसी के समानान्तर का समय पृथ्वीराज रासौ की रचना का भी समय है। परन्तु यदि कोई यह कल्पना करे कि 'राजप्रशस्ति' का लिखना प्रारम्भ करने से पूर्व उसके लिए सामग्री जुटाने का काम शुरु हो गया होगा, और सभवतः उसी समय रासौ का भी श्रीगणेश हो गया हो तो इस समय को खींच-खांचकर स० १७०० तक भी ले जाया जा सकता ह। परन्तु इससे आगे ले जाना इतिहास और अनुमान दोनो का गला घोटना है।

हमारे इस अनुमान की पुष्टि रासौ की प्राचीन लिखित प्रतियों से भी होती है। रासौ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ अभी तक प्राप्त हुई है वे सब स० १७०० के बाद की है। जिन प्रतियो को सं० १७०० के पूर्व की माना जा रहा है वे यथार्थ में स० १७०० के पूर्व की नही है। इस विषय मे बडा धोखा चल रहा है, और यह धोखा काफी लम्बे अर्से से होता चला आ रहा मालूम पड़ता है। अतः इसके मूलभूत कारणो को भी जान लेना आवश्यक है।

बात यह है कि चंद की बडी ख्यति देखकर भारतवर्ष के कुछ भागो मे, विशेषकर राजस्थान और गुजरात मे, राव-भाटो के कई ऐसे घराने उठ खडे हुए है जो अपने को चद की वश-परपरा मे बतलाते है। परन्तु इनके पास प्रमाण कुछ नही है। अतएव ये नकली प्रमाण गढते रहते है। इनमें से कुछ ने झूठी वंशावलियाँ भी बना ली है।[32] अपने कथन की पुष्टि में ये लोग पृथ्वीराज रासौ की भी छोटी-बडी, तरह-तरह की, हस्तलिखित प्रतियाँ सामने लाकर रखते है जिनमे बहुत प्राचीन संवत् लिखे रहते है। इन प्रतियो की पुष्पिकाओ में ये लोग संवत्, माह और तिथि का उल्लेख तो करते है पर वार नही लिखते। जैसे—

"संमत १२५० वर्षे आसाड़ सुदी १३।"

"स० १३४० काती विद ३।"

"सं० १६७५ का माहा वद ५ सुभ लिखता भाई सोभजी।"

क्योंकि दो-चार शताब्दियो पहले के किसी संवत् के अमुक महीने की तिथि को अमुक वार था इसका ज्योतिष-गणना आदि से पता लगा लेना इनके लिये दुष्कर है। और यदि कहीं अशुद्ध वार लिख दें, जैसा कही-कही लिखा मिलता

31. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५७०, ५७२ और ५७७।

32. हरप्रसाद शास्त्री, प्रेलिमिनेरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिपट्स ऑव बार्डिक क्रोनिकल्स, पृ० ३०।

भी है, तो-दूसरो द्वारा जत्री आदि से मिलान करने पर पोल खुल जाने का भय रहता है ।

इसके अलावा इन बनावटी प्रतियो की पुष्पिकाओ में जो संवत् ये लोग लिखते है उसके आसपास के किसी बडे राजा अथवा जैनाचार्य आदि का नाम भी उनमे जोड देते है जिनका आधार इनकी बहियाँ अथवा सुनी-सुनाई बातें हुआ करती हैं । अतएव कभी तो इनका अनुमान ठीक बैठता है और कभी गलत हो जाता है ।

कभी-कभी प्रति के अत में पुष्पिका न देकर ये लोग किसी प्राचीन ऐतिहासिक पुरुष की प्रशसा आदि का कोई पद्य बनाकर लिख देते है जिससे आगे जाकर लोग यह समझें कि वह प्रति उस महापुरुष के लिए अथवा समय में लिपिबद्ध हुई होगी । परन्तु चोरी चोरी ही है । कागज से, स्याही से, लिखावट से, पुष्पिका मे दी हुई अटकलपच्चू बातो से सही बात का पता लग ही जाता है ।

पृथ्वीराज रासौ की लगभग ३०-३५ हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे देखने में आई है । इनमे से कुछ प्रतियो में बहुत प्राचीन सवत् लिखे हुए मिले । पर गहरी परीक्षा करने पर सब अशुद्ध-निकले । दो-एक दफा ऐसा भी हुआ कि पहली बार जब प्रति को देखा गया तो उसमें उसका लेखन-काल कुछ और दिया हुआ था और बाद में कुछ और लिखा हुआ मिला ।

कुछ वर्ष पूर्व प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी की नागौर-निवासी नानूराम नामक एक भाट से भेंट हुई थी । उसने अपने को चद का वंशधर बतलाया और रासौ की दो प्रतियाँ लाकर त्रिपाठीजी के सामने रखीं जिनमें से एक में उसका लेखन-काल स० १४५५ दिया हुआ था--

"सवत् १४५५ वरषे शरद ऋतौ आश्विन मासे शुक्ल पक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखतं । श्री खरतरगच्छाधिराजे पंडित श्रीरुपजी लिखत चेला श्रीसोभाजी रा । कपासन मध्ये ।[33]

प्रति वर्ष आश्विन का महीना, शुक्ल पक्ष, चतुर्थी इत्यादि होते है और इसलिए स० १४५५ में भी ये सब हुए होगे इसमें कोई सदेह नही । परन्तु जानने योग्य बात यह है कि उक्त संवत् के आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को वार कौन सा था, जिसका पुष्पिका में कहीं उल्लेख नहीं है । जो लिपिकार पुष्पिका में घड़ी आदि जैसी सूक्ष्म बातो तक का विवरण दे

---

33. चाँद, नवम्बर १९२९, पृ० १४९ ।

देता है वह वार जैसी बडी बात का उल्लेख नही करता इससे क्या सूचित होता है। स्पष्ट है कि प्रति कृत्रिम है और इसकी पुष्टि उसकी भाषा से होती है जो किसी दशा में भी १६ वी शताब्दी से पूर्व की नही है :—

एक पहुर मे सॉवत मारे। लोक हजार पॉच तहॅ मारे॥
ये सॉवत पृथिराज पियारे। केतेई दल सॅकर बुहारे॥
मारे लोक हजार अठारा। उभय हूर इकबीस सिगारा॥
दोउ घरिय पच्चिसू पूगे। धूमध्यान के चूखट पुग्गे॥
ता पिछ लोक च्यार दस मारे। पिछले पहुर पचास सिगारे॥
तब दलथभ चदेल जुहारे। सॉवत पूगे महल मॅझारे॥
महलन मध्ये घाव सिवाये। फते फते कर सॉमत आये[34]॥

इस प्रकार का छल अब कुछ अन्य लोग भी करने लगे है जो अपनी नई खोज बतलाने के लिए ऐसा कर रहे है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासौ की प्राचीनतम प्रति' शीर्षक वह टिप्पणी है जिसमें उसके लेखक ने अपने पास रासौ की स० १४०३ की लिखी हुई एक प्रति होना बतलाया है।[35] लेखक का यह भी कहना है कि यह रासौ छप्पय छदो में गुंफित है और अपभ्रश भाषा में है।[36] उनके अनुसार इस रासौ की हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है :—

"विक्रम स० १४०३ कार्तिक शुक्ल पंचम्या॥ तुगलक फिरोजशाहि विजय राज्ये ढिल्या मध्ये लिपि कृत वाचक महिम राजेन श्रीमाल कुलोत्पन्न श्रीठक्कुर फेरू पुत्र हेमपाल वाचनार्थ शुभ भूयात।[37]"

इस पुष्पिका में भी वही दोष है जो नानूरामवाली प्रति की पुष्पिका में पाया जाता है। अर्थात् तिथि के साथ वार का उल्लेख इसमें भी नही है। इसके अतिरिक्त पुष्पिका में कहा गया है कि यह प्रति सं० १४०३ में फीरोजशाह तुगलक के शासन-समय में दिल्ली में लिखी गई थी। परन्तु स० १४०३ में

---

34 हरप्रसाद शास्त्री, प्रेलिमिनेरी रिपोर्ट आन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिपट्स आव बार्डिक क्रोनिकल्स, पृ० २७।

35. विशाल भारत, नवम्बर, १६४६, पृ० २३१।

36. वही।

37 वही।

फीरोजशाह दिल्ली का शासक ही नही था। उस समय मुहम्मदशाह तुगलक दिल्ली पर राज्य करता था। फीरोज तुगलक स० १४०८ (सन् १३५१ ई०) में राजसिंहासन पर बैठा था और ३७ वर्ष राज्य करने के पश्चात् सं० १४४५ (सन् १३८८ ई०) में मरा था।[38] अस्तु।

पृथ्वीराज रासौ की जितनी हस्तलिखित प्रतियो का पता अब तक लग सका है वे ये है :—

(१) 'टॉड कलैक्शन ऑव मैनुस्क्रिप्टस' की बारह प्रतियाँ।[39]
(२) सरस्वती भडार, उदयपुर, की सात प्रतियाँ।
(३) अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, की सात प्रतियाँ।
(४) रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बबई शाखा की तीन प्रतियाँ।
(५) एशियाटिक सोसाइटी, बगाल, की तीन प्रतियाँ।
(६) ओरियंटल कॉलेज लाइब्रेरी, लाहौर, की तीन प्रतियाँ।
(७) भंडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीटच्यूट, पूना, की दो प्रतियाँ।
(८) अभय जैन पुस्तकालय, बीकानेर, की दो प्रतियाँ।
(९) सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर, की दो प्रतियाँ।
(१०) फार्बस गुजराती सभा की दो प्रतियाँ।
(११) भींडर के श्रीमाणिक्यविजयजी की दो प्रतियाँ।
(१२) वृहत् ज्ञानभडार, बीकानेर, की एक प्रति।
(१३) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की एक प्रति।
(१४) आगरा कॉलेज की एक प्रति।
(१५) बेदला की एक प्रति।
(१६) देवलिया प्रतापगढ़ की एक प्रति।
(१७) कानौड़ की एक प्रति।[40]
(१८) उदयपुर के स्वर्गीय बख्तावरजी राव की एक प्रति।
(१९) बोदलियन की एक प्रति।
(२०) स्वर्गीय पूर्णचन्द्र नाहर की एक प्रति।

---

38. वी० ए० स्मिथ, दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ० २६२।
39. दि जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव ग्रेट ब्रिटन ऐण्ड आयरलैंड, जून १९४०, पृ० १२९–१७९।
40. इस प्रति को हमने पहले अक्तूबर, १९४५, में देखा था। उस समय इसमे इसका लिपिकाल स १८४६ लिखा हुआ था। परन्तु अब उसे बदल कर स० १७४६ कर दिया गया है।

उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित पृथ्वीराज रासो की सं० १७६० की लिखी हुई अर्थात् लिखित प्रति का अंतिम पत्र। पृथ्वीराज रासो की जितनी भी प्रतियाँ अब तक उपलब्ध हुई हैं उनमें यह सब से प्राचीन और प्रामाणिक है। देखिये पृ० ६५–६६।

(२१) सरस्वती भडार, कोटा, की एक प्रति ।

(२२) धारणोज की एक प्रति ।

(२३) अबोहर की एक प्रति ।

(२४) राजपुस्तकालय, बूँदी, की एक प्रति ।

(२५) काकरोली की एक प्रति ।[41]

इन ६०-६[illegible] प्रतियो में लगभग तीन चौथाई प्रतियाँ १८ वी शताब्दी तथा उसके बाद की है । शेष में से कुछ अपूर्ण है और कुछ में लिपिकाल का निर्देश नही है । पूर्ण प्रतियो मे से जिन प्रतियो का लेखन-समय सं० १७०० से पूर्व का बताया जाता है वे ये है —

(१) नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की प्रति[42]। लिपिकाल—स० १६४२ ।

(२) कर्नल टॉड की प्रति ।[43] लिपिकाल —स० १६६२, चैत्र सुदी २, रविवार ।

पहले इसके कि इन दोनो प्रतियो की प्रामाणिकता के विषय में कुछ कहा जाय उदयपुर के सरस्वती भडार की एक प्रति का परिचय दे देना उचित जान पडता है जो रासौ की प्राचीनतम प्रति है, और पूरी है । यह प्रति मेवाड के महाराणा अमरसिह (द्वितीय) के शासनकाल में (स० १७५५-६७) लिखी गई थी । इसका पुष्पिका-लेख इस प्रकार ह —

"स० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायन गते श्री सूर्ये शिशिर ऋतौ सन्मागल्य प्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे ।। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्रीअमरसिहजी विजय राज्ये । मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखित चद बरदाई कृत पुस्तक ।।"

इस पुष्पिका के ऊपर इस प्रति में निम्नलिखित दो छप्पय दिये हुए है जिनमे पुष्पिका के सवत् आदि की कूटकाव्य मे चर्चा की गई है और कुछ अन्य बातें भी बतलाई गई है :—

---

41 इनके अतिरिक्त किशनगढ, अलवर, नाथद्वारा, पीपल्या आदि स्थानो मे भी कुछ प्रतियाँ है । परन्तु उनमे अधिकाश अपूर्ण है और दो-एक जो पूर्ण है वे १९वीं शती की लिखी हुई हैं ।

42 डा० श्यामसुन्दरदास; हिदी साहित्य (पचम सस्करण) पृ. ९५ ।

43. दि जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी आव ग्रेट ब्रिटन ऐंड आयरलेंड, जून १९४०, पृ० १४९ ।

(१)

निलि पकज गन उदधि करद कागद कातरनी।
कोटि कवी का जलह कमल कटिक तै करनी ॥
इहि निथि सख्या गुनित कहै कक्का कवियानै।
इह श्रम लेखनहार भैद भेदै सोइ जानै ॥
इन कष्ट ग्रथ पूरन करय जन बड या दुख ना लेहय।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र लिखि लेखिक बिनती करय ॥

(२)

गुन मनियन रस पोय चन्द कवि कत्रियन दिद्धिय।
छद गुनी तै तुट्टि मद कवि भिन भिन किद्धिय ॥
देस देस विष्षरिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रान अमरेस न्रप हित श्रीमुख आयस दयौ।
गुन बीन बीन करुना उदधि लखि रासौ उद्दिम कियौ[44] ॥

इतिहास बतलाता है कि सं० १७६० में मेवाड पर महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का राज्य था,[45] और ज्योतिष-गणना से सूचित होता है कि सं० १७६० की माघ वदि ६ को सोमवार था।[46] अतः इस प्रति की प्रामाणिकता के सबन्ध मे किसी प्रकार के सदेह अथवा मतभेद के लिये स्थान नही है।

(१) नागरीप्रचारिणी सभावाली प्रति को जिस आधार पर स० १६४२ माना गया है वह आधार उपर्युक्त दोनो छप्पय है जिनका छटपटाग अर्थ इस प्रकार किया गया है। प्रथम छप्पय के 'मिलि पकज गन उदधि करद कागद कातरनी' तुक के सबन्ध में कहा गया है कि "यदि पकज से पकज नाल (१), गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है, मान लें, तो स० १६४१ बनता है।"[47]

---

44. हस्तलिखित प्रति, पत्र न. ८४६।

45 ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ११४७–११४८।

46. एल० डी० पिल्ले, इण्डियन ऐफेमेरिस, पृ० २०८ (वोल्यूम ६)

47. स० १९९० की ओरियटल कान्फ्रेस के हिन्दी विभाग के सभापति की हैसियत से दिया गया डा० श्यामसुन्दर का भाषण।

द्वितीय छप्पय के 'चित्रकूट रान अमरेस नृप' से अभिप्राय चित्तोड़ के राणा अमरसिह प्रथम (स० १६५३–१६७६) लिया गया है,[48] और इन दोनो मिथ्या धारणाओ के आधार पर रासौ का सकलन-काल स० १६४१ तथा रासौ की प्राचीनतम प्रति का लिपिकाल स० १६४२ ठहराया गया है।

परन्तु सरस्वती भडार , उदयपुर, की प्रति की उपर्युक्त पुष्पिका से, जिसके ऊपर ये दोनो छप्पय दिये हुए है, स्पष्ट है कि 'मिलि पकज गन उदधि' आदि का अर्थ स० १७६० होता है[49] और 'अमरेस नृप' से अभिप्राय अमरसिह द्वितीय से है ।

इस सबन्ध में अधिक टीका-टिप्पणी व्यर्थ है । कारण कि अब तो सभावालो ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया है, कि उनकी प्रति स० १६४२ की लिखी हुई नही है । वह स० १६३२[50] की है ।

(२) अब कर्नल टॉड की प्रति को लीजिये । इसमे उसका लिपिकाल स० १६६२, चैत्र सुदी २, रविवार दिया हुआ है । परन्तु स० १६६२ की चैत्र सुदी द्वितीया को रविवार था ही नही । उस दिन मगलवार था । अत यह प्रति भी अप्रामाणिक है ।[51]

पडित गौरीशकरजी ने रासौ का निर्माण-काल स० १६०० के आस-पास जो निश्चित किया है उसका आधार नागरीप्रचारिणी सभा की उप-रोक्त प्रति है जिसके सबन्ध मे उनको कहा गया कि वह स० १६४२ की लिखी हुई है । अत यह सोचकर कि जब रासौ की हस्तलिखित प्रति स० १६४२ की प्राप्त है तब रासौ का प्रणयन-काल उससे पूर्व का होना ही चाहिये उन्होने उसे स० १६०० के आसपास का रचा हुआ बताया । परन्तु न तो रासौ की प्राचीनतम प्रति स० १६४२ की लिखी हुई कही है और न रासौ स० १६०० के आसपास रचा गया है । वस्तुत स० १७०० के आसपास इस ग्रथ की रचना हुई है ।

---

48 नागरीप्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासौ' की उपसहारिणी टिप्पणी, पृ० १७८

49. प्राचीन ग्रथो मे 'उदधि' और 'करद' (खड्ग) को क्रमश ७ और १ की सख्या का सूचक माना गया है । 'अत "अकाना वामतो गति" नियम के अनुसार 'मिलि पकज गन उदधि करद' मे १७ की सख्या तो ठीक निकल आती है पर आगे अर्थ स्पष्ट नही है ।

50. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५३, अक २, पृ० १२६

कुछ विद्वानो का कथन है कि पृथ्वीराज रासौ जिस रूप मे आजकल पाया जाता है वह उसका वास्तविक रूप नही है । उनके मतानुसार मूल रासौ दूसरा था । इस विषय में उनमें तीन मत पाये जाते है। ये तीनो मत और उनकी समीक्षाएँ नीचे दी जाती है ।

पहला मत । पृथ्वीराज रासौ की रचना चद ने पृथ्वीराज के राजत्व-काल मे की थी । परन्तु उस समय यह इतना बडा न था । चद के वंशज अथवा दूसरे लोग बाद में समय-समय पर इसमे प्रक्षिप्त अश जोडते गये जिससे इसका कलेवर बढ गया और इतिहास सम्बन्धी अशुद्धिया भी अनेक आ गई है ।[52]

यह मत डा० ग्रियर्सन और उनके अनुयायियो का है । अपने मत के समर्थन में इन्होने कोई ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत नही किया । केवल अपनी एक अस्पष्ट धारणा को मत के रूप में सामने रख दिया है और रासौ में पाई जानेवाली अनेकानेक ऐतिहासिक त्रुटियो के परिहार के लिये ऐसा किया गया है । रासौ के कुछ अशो को ये विद्वान प्राचीन और कुछ को प्रक्षिप्त मानते है। परन्तु वे प्राचीन अश कौन से है और किस आधार पर उनको प्राचीन कहा जा रहा है इस सबन्ध में इन्होने कुछ नही कहा । इसमे कोई सदेह नही कि रासौ में कही-कही प्राचीनता का आभास होता ह । परन्तु इसका कारण रासौ की प्राचीनता नही, प्रत्युत इसका कारण तो चारण-भाटो की वह क्लासिक भाषा-शैली है जिसमें वह रचा गया है । राजस्थान में आज भी कई ऐसे चारण-भाट विद्यमान है जो इस तरह की भाषा-शैली में सैकडो छद लिखकर दे सकते है । सच तो यह है कि वर्तमान रासौ में पाँच पक्तियाँ भी ऐसी नहीं है जिनकी भाषा को बारहवी शताब्दी की भाषा कही जा सके । बारहवीं शताब्दी के कई ग्रथ अद्यावधि मिल चुके है जिनकी भाषा के साथ रासौ की भाषा की तुलना करके हमारे इस कथन की यथार्थता

51 एल डी पिल्ले, इण्डियन ऐफेमेरिस, पृ० ७२ (वोल्यूम ६)

52. ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० ३ । सी० वी० वैद्य, हिस्ट्री आव मैडीवल हिन्दू इण्डिया, वोल्यूम २, पृष्ठ १८–२५ । डा० श्यामसुन्दरदास; हिन्दी साहित्य (पचम सस्करण), पृ० ९४ । प० रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७ । मथुराप्रसाद, असली पृथ्वीराज रासौ, पृ० १ (प्राक्कथन) । राहुल साकृत्यायन; हिन्दी काव्यधारा, पृ० २८ ।

की परीक्षा की जा सकती है । सारांश, डा० ग्रियर्सन आदि विद्वानों का यह मत सर्वथा निराधार है ।

दूसरा मत । मूल रासौ अपभ्रंश मे रचा गया था और वह छप्पय छन्दों में था । वर्तमान रासौ उसी का रूपान्तर है ।[53]

इस मत की पुष्टि में दो बातें कही गई है—(१) छप्पय छंदो में गुम्फित पृथ्वीराज रासौ की सं० १४०३ की एक हस्तलिखित प्रति मिली है जो अपभ्रंश में है (२) आचार्य श्री जिन विजय मुनि को चद के चार फुटकर छप्पय मिले है जो अपभ्रंश भाषा में है और जिनमें से तीन कुछ विकृत रूप में वर्तमान रासौ में भी विद्यमान है ।

(१) सं० १४०३ की मानी जानेवाली यह प्रति वही है जिसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है । वास्तव में इस तरह की कोई प्रति है ही नहीं ।

(२) मुनि जिन विजयजी को मिले चार फुटकर छप्पयों से भी पृथ्वीराज रासौ का रचा जाना सिद्ध नहीं होता । हो सकता है कि चंद नामक किसी कवि ने पृथ्वीराज की जीवन घटनाओ पर कुछ फुटकर छद ही लिखे हो और यही अधिक सभव भी मालूम पड़ता है । क्योकि इस तरह के फुटकर छद अन्य राजाओ के भी भारी संख्या में मिलते है और यह राजस्थानी साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है । इस प्रकार की कविता को राजस्थान में 'साख री कविता' कहते है ।

एक बात और है । राजस्थान में ऐसी काव्य-परिपाटी रही है, और आज भी है, कि चारण–भाट आदि जातियो के लोग किसी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति पर जो कोई ग्रंथ लिखते है उसमें स्वरचित छंदों के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती कवियों के छद भी बीच-बीच में जोडते जाते है । उदाहरण-स्वरूप

---

53. आचार्य जिन विजय मुनि; पुरातन प्रबन्ध-सग्रह, पृ० ८७ । काति सागर; विशाल भारत, नवम्बर १९४६, पृ० २३१ । दशरथ शर्म्मा और मीनाराम रगा; राजस्थान-भारती, भाग १, अक ५, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ९३।

दौलतविजय (स० १७६७-९०) के खुमाण रासौ[54] को लीजिये । इसमे बापा रावल से लेकर राणा राजसिह तक के मेवाड के राजाओ का वर्णन है । महाराणा प्रताप के वर्णन में दौलतविजय ने स्वरचित छदो के अलावा बीकानेर के प्रसिद्ध कवि राठौड पृथ्वीराज(स० १६०६-५७) के भी ये दोहे रखे है —

'पातल पाघ प्रमाण, साँची साँगाहर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी ।।
अकबर घोर अधार, आथमिया हिदू अवर ।
जागै जागणहार, पोहरै राण प्रतापसी ।।

54. कुछ विद्वानो ने इसका रचनाकाल १० वी शताब्दी विक्रमीय मान रखा है जो एक भ्रम है । वास्तव मे यह ग्रथ मेवाड के महाराणा अमरसिह के पुत्र महाराणा सग्रामसिह (द्वितीय) के शासन-काल मे लिखा गया था । इस बात का स्पष्ट उल्लेख इसके रचयिता ने इसके प्रथम खड के अतिम दोहे में किया है । वह दोहा इस प्रकार है—

बिउ सागउ अमरेस सुत सीसोद्यौ सुवियाण ।
राणा पाट प्रतपैं रिधू, मन हेला महिराण ।।

महाराणा सग्रामसिह (द्वितीय) ने स. १७६७ से स. १७९० तक राज्य किया था । अतएव लगभग यही समय इस ग्रथ की रचना का भी है ।

एक दूसरी भ्रान्ति जो इसके विषय मे फैली हुई है वह यह है कि इसे मेवाड के राजा खुँमाण के जीवनचरित का ग्रथ समझा जा रहा है । यह भ्रान्ति कदाचित इस ग्रथ के नाम के कारण हुई है जो कुछ अस्पष्ट है । मेवाड के नरेशो की 'राणा', 'महाराणा', सीसोदा, केलपुरा' 'चित्तौडा' आदि कई पदवियाँ है जिनमे एक 'खुमाण।' भी है जिसका अर्थ है—खुमाण के वशज । अत इस ग्रथ के रचयिता ने इसका 'खुमाण रासौ' नाम जो रखा है वह इसलिये नही रखा है कि इसमें राजा खुमाण का वर्णन है, बल्कि खुमाण के वशजो का, राणाओ का, वर्णन होने से इसे यह नाम दिया गया है जो उचित्त भी है । क्योकि इसमे राजा खुमाण का ही नही, प्रत्युत बापा रावळ से लेकर राणा राजसिह (स० १७०९–३५) तक के मेवाड के सभी राजाओ का वर्णन है । महाराणा राजसिह के बाद के राणाओ—जयसिह, अमरसिह (द्वितीय) और सग्रामसिह (द्वितीय)-का वर्णन भी इसमे था । परतु इसकी जो हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है उसमें वह नही है । क्योकि यह प्रति अपूर्ण है । इसके अतिम दो-चार पन्ने खो गये है ।

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप। .
अकबर सूतो औझकै, जाण सिराणे सॉप।।[55]

इसका नवीन उदाहरण देखना हो तो बारहठ केसरीसिंह रचित 'प्रताप-चरित्र' का अवलोकन करना चाहिये। यह ग्रथ स० १९०० में लिखा गया था, पर इसमें दुरसाजी आदि दो-एक ऐसे कवियो के पद्य उद्धृत है जो आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले हुए है।[56]

अतएव मुनि जिन विजयजी को मिले अपभ्रश के तीन छप्पयो को वर्तमान रासौ में देखकर यह निष्कर्ष निकालना कि मूल रासौ अपभ्रश में रचा गया था, उचित नही है।

तीसरा मत। रासौ के चार रूपातर (Recensions) मिलते है। (१) लघुतम (२) लघु (३) मध्यम और (४) वृहत्। वर्तमान रासौ चतुर्थ अथवा वृहत् रूपातर है।[57]

यह मत अस्पष्ट है। कारण कि इसके प्रवर्तक इन रूपातरो का ठीक-ठीक समय-निर्णय नही कर पाये है जो आवश्यक है। कम से कम लघुतम रूपान्तर का समय-निर्धारण तो होना ही चाहिये। तभी शेष रूपातरो के काल आदि के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकता है। क्योकि ये रूपातर एक ही काल के भी हो सकते है और भिन्न-भिन्न कालो के भी। अभी तो स्थिति यह है कि जिस रूपातर को लघु कहा जा रहा है वह पहले का (सं० १६५७)[58] है और लघुतम उसके बाद का (स० १६६७)।[59]

दूसरी बात यह है कि जिन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर इन रूपांतरो की स्थापना की गई है वही संदिग्ध है। बिना उचित अनुसधान के उनका लिपिकाल निश्चित कर लिया गया है। उदाहरण के लिए लघुतम रूपांतर की प्रति को लीजिये जिसकी पुष्पिका में तिथि के साथ वार दिया

55. भडारकर ओरियटल रिसर्च इस्टीटयूट पूना की हस्तलिखित प्रति पत्र न० १३६।

56. प्रतापचरित्र, पृ० २३५, २४५, २४७।

57. राजस्थान भारती अक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ३-४।

58. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग २०, अक ३, स० १९९६, पृ० २७५

59. राजस्थान भारती, अक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ४

हुअ नहीं है ।[60] फिर भी इसे प्रामाणिक मान लिय. गया है और केवल इसी एक प्रति के आधार पर लघुतम रूपातर की स्थापना कर दी गई है । यह नहीं सोचा गया कि यह रूपांतर रासौ की किसी बड़ी प्रति का कटा-छँटा रूप भी हो सकता है ।

आगे इसकी विषय-वस्तु को देखिये । इसमें लगभग १३०० छंद है जिनसे पृथ्वीराज के जीवन की मुख्यतः चार घटनाओ पर प्रकाश पडता है---पृथ्वीराज का जन्म, उनका सयोगिता से विवाह, उनकी शहाबुद्दीन से लडाई और उनकी तथा चद की गजनी में आत्महत्या द्वारा मृत्यु ।

पृथ्वीराज का जन्म-काल इसमें भी स० १११५ दिया हुआ है जो अशुद्ध है —

एकादस मद पचदह, विक्कम साकु आनद।
तिहि पुर रिपु जय हरण, भयो प्रिथिराज नरिद ।।[61]

इसी प्रकार पृथ्वीराज का सयोगिता से विवाह होना, पृथ्वीराज और चद का गजनी में आत्मघात करना आदि घटनाएँ भी इतिहास-समत नही है ।

अतएव लघुतम रूपातर से इस मत के पृष्ठपोषको का यदि यह अभिप्राय है कि यह पृथ्वीराज के समय की रचना है तो यह उनकी स्पष्ट भूल है ।

लघु रूपातर की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ कही जाती है जिनमें से अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर की दो प्रतियो का१७ वीं शती में लिखा जाना अनुमानित किया गया है ।[62] परन्तु जैसा कि डा० नेस्सितोरी ने निर्देश किया है ये प्रतियाँ १७ वी शताब्दी की नही, किन्तु १८ वी शताब्दी की है ।[63]

मध्यम और वृहत् रूपांतरो की किसी प्रति को सं० १७०० से पूर्व की नहीं कहा गया है । अतः उनके विषय में यहाँ कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ।

60, स० १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवत्तमाने आसाढ मासे शुक्ल पक्षे पचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराजा श्रीकल्याणमल्लजी तत्पुत्र राजा श्री भाणजी तत्पुत्र राजा श्री श्रीभगवानदासजी पठनार्थं श्रेय कल्याण श्रीशुभं भवतु ।

61. अभय जैन ग्रथालय बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, पृ० ७

62. राजस्थान भारती, अंक १, अप्रैल सन् १९४६, पृ० ४

63. ए डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग आव बार्डिक ऐंड हिस्टोरिकल मैन्नुस्क्रिप्ट्स, भाग १, पृ० ७३ और ८३ ।

राजस्थान में ऐसी प्रथा है कि चारण, भाट आदि जातियो के लोग अपने बच्चो को कठस्थ कराने के लिये अथवा राजा-महाराजाओ को सुनाने के लिये प्रायः किसी बड़े ग्रथ को काट-छाँटकर छोटा कर लिया करते है। चारण करणीदान का 'सूरजप्रकाश' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह साढ़े सात हजार छदो का एक भारी ग्रथ है। परन्तु इसे काटकर छोटा बना लिया गया है। इस छोटे रूप का नाम 'विड़दसिणगार' है। इसमें केवल १२५ छद है। दूसरा उदाहरण कविराजा मुरारिदान कृत 'जसवत-जसोभूषण' का है। इसका लघु रूप 'जसवंतभूषण' नाम से प्रसिद्ध है।

अतः अनुमान होता है कि उपर्युक्त तीसरे मत के समर्थक जिनको रासौ के रूपातर (Recensions) मान रहे है वे वास्तव में रासौ के रूपांतर नहीं, प्रत्युत बृहत् अथवा सम्पूर्ण रासौ के ही कटे-छँटे रूप हैं जिनको अपनी-अपनी रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार समय-समय पर लोगो ने तैयार कर लिया है।

जो भी हो, पृथ्वीराज रासौ से हमारा अभिप्राय यहाँ उस रासौ से है जिसमें एक लाख छद एवं ६९ सर्ग है, जो काशी नागरीप्रचारिणी सभा तथा बगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से प्रकाशित हुआ है और जिसकी कर्नल टॉड, कविराजा श्यामलदास, पं० गौरीशकर-हीराचंद ओझा प्रभृति विद्वानो ने उहा-पोह की है। यह सं० १७०० के आसपास बनाया गया है इसमें किसी प्रकार का सदेह नही है।

विजयपाल रासौ—ब्रजभाषा का एक दूसरा ग्रथ जो अर्वाचीन होते हुए प्राचीन माना जा रहा है वह है[64] विजयपाल रासौ जिसका थोडा-सा अंश उपलब्ध हुआ है। इसमें इसके रचयिता नल्लसिह ने अपने को सिरोहिया शाखा का भाट और विजयगढ (करौली राज्य) के यदुवशी नरेश विजयपाल का आश्रित बतलाया है —

भये भट्ट पृथु यज्ञ तै, है सिरोहिया अल्ल।
वृत्तेस्वर जदुवस के, नल्ल पल्ल दल सल्ल॥

नल्लसिह यह भी लिखता है कि उसके आश्रयदाता महाराज विजयपाल

---

64. मिश्रबधु, मिश्रबधु विनोद (चतुर्थ सस्करण) भाग प्रथम, पृ० १५०। डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय सस्करण); पृ० २५२।

ने उसे हिंडौन नामक एक नगर, सात सौ गाँव और हाथी, घोडे, ऊँट रत्नादि पुरस्कार मे दिये थे .—

बीसा सौ गजराज, बाजि सोलह सौ माते।
दिये सातसौ ग्राम, सहर हिडौन मुदाते।।
सुतर दिये द्वै सहस, रकम गिलमै भरि अबर।
कचन रत्न जडाव, बहुत दीने जु अडबर।।
कुल पूजित राव सिरोहिया, यादवपति निज सम कियव।
नृप विजयपाल जू विजयगढ, साह ये जू सम्मपियव।।[65]

विजयपाल रासौ मे महाराज विजयपाल के राज्यारोहण एव उनकी दिग्विजय का वर्णन है :—

बैठतै पाट विजयपाल वीर, अल्लीलखान जीत्यौ गहीर।
इक लक्ष मीर दहवट्ट कीन, रो राखि रिद्धि सब खोसि लोन।।
साहाबदीन गजनी हकारी, तत्तारखान को मान मारि।
तेगन अमोरि तूरान तोरि, ईरान पेसकस लीन मोरि।।
बरछीनि मारि बङ्गस उजारि, कधार कोट सब दियो पारि।।
काबिली किलङ्गी रोह जीति, राखिय नरेन्द्र हिदवान रीति।।
बल्की भुखार सब जेर कीन, खुरसान खोसि हबसान लीन।।
आरबी रूम लटियाल कूटि, फिरगॉन देस दुइ बार लूटि।।
लीनी स पेसकस अवर देस, राखियो धरम जादव नरेस।।
पॉचाल देस वयराट मारि, अजमेर सोम को गर्व गारि।।
मडोवर परिहार डडि, जोइया पारस खगनि खडि।।
तौवर अनग दिल्ली सुमानि, थापियो थान सगपन्न जानि।।
ढूढाहर हय खुरनि गाहि, पज्जूनि करत नित सेव चाहि।।
मेवात मुरस्थल महि लीन, उतराध पथ सब जेर कीन।।
इहि तेज तपम विजयपाल राज, जाहरा तेग जादव समाज[66]।।

इस दिग्विजय का समय नल्लसिंह ने स० १०९३ बतलाया है।[67] ग्यारहवी

---

65. मुशी देवीप्रसाद, कविरत्नमाला, पृ० २३
66, मुशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० २५
67, वही; पृ० २४

शताब्दी में करौली में विजयपाल नाम के एक प्रतापी राजा हुए है जिनका करौली के अतिरिक्त उसके निकटवर्ती अलवर, भरतपुर, धौलपुर, आदि अन्य राज्यो के कुछ भागो पर भी अधिकार था।[68] परन्तु गज़नी, ईरान, काबुल, दिल्ली, अजमेर ढूढ़ाड इत्यादि पर विजयपाल का एक-छत्र राज्य होने की जो बात नल्लसिह ने कही है वह इतिहास-विरुद्ध और अतिरजना है। कहने की आवश्यकता नही कि सोमेश्वर, शहाबुद्दीन प्रभृति जिन ऐतिहासिक व्यक्तियो का नामोल्लेख नल्लसिह ने ऊपर के पद्य में किया है वे विजयपाल के समकालीन ही नही थे। सोमेश्वर की मृत्यु स० १२३६[69] में और शहाबुद्दीन की स० १२६३[70] में हुई थी। अत इतिहास के अनुसार विजयपाल के समय मे और सोमेश्वर-शहाबुद्दीन के समय में क्रमश १४३। १७० वर्षो का अन्तर है। यदि विजयपाल रासो का रचयिता नल्लसिंह महाराज विजयपाल का समकालजीवी होता तो इस प्रकार की भूलो का होना असभव था।

विजयपाल रासौ की भाषा भी ग्यारहवी शताब्दी की भाषा नही है। उस समय इस तरह की भाषा का चलन भारतवर्ष मे कही था ही नही। इसकी भाषा और शैली दोनो पर बूदी के सुप्रसिद्ध चारण कवि सूरजमल के 'वशभास्कर' (स० १८९७) का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

वास्तव में यह ग्रंथ स० १६०० में अथवा इससे भी कुछ बाद में रचा गया है। पर प्राचीन बताने के लिये इसके रचयिता ने नल्लसिह का कल्पित परिचय इसमे जोड़ दिया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

उपरोक्त विवेचन से साफ है कि हिंदी साहित्य के विद्वान ब्रजभाषा के जिन ग्रथो को स० १५५० से पूर्व का मान रहे है वे यथार्थ में स० १५५० के पूर्व के नही है। वस्तुत ब्रजभाषा मे साहित्य-सृजन का प्रारभ स० १५५० के बाद से हुआ है और राजस्थान के ब्रजभाषा के कवियो मे पहला नाम भक्त शिरोमणि मीरॉबाई का है।

(१) **मीराँबाई**—इनकी जीवनी इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है। राजस्थान की ख्यातो आदि में कही इनका वृतान्त नही मिलता। हिंदी

68. दि रूलिग प्रिंसेज, चीफ्स ऐंड लीडिंग पर्सनेजेज इन राजपूताना ऐंड अजमेर (छठा सस्करण), पृ० ११५।

69 . कोशोत्सव स्मारक सग्रह, पृ० ४६

70 वही, पृ० ६०

के कुछ प्राचीन ग्रंथों व फुटकर छंदो में इनके विषय के कुछ उल्लेख देखने में आते है। पर वे इतने अपूर्ण और इतिहास की दृष्टि से इतने भ्रष्ट है कि उनके आधार पर कोई निश्चित मत स्थिर नही किया जा सकता। स्वय मीरॉबाई के पदो से इस विषय मे विशेष सहायता नही मिलती। क्योकि अभी तक यह निश्चय नही हो पाया है कि इनके रचे मानेजाने वाले पदो में कौन से पद असली और कौनसे प्रक्षिप्त हैं।

इतिहासकारो के अनुसार मीरॉबाई मेडते के राठौड राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिह की इकलौती पुत्री थी।[71] इनका जन्म स० १५५५ के लगभग कुडकी नामक गॉव में हुआ था।[72] बाल्यावस्था ही में इनकी माता का देहान्त हो गया जिससे राव दूदाजी ने इन्हें अपने पास मेड़ते में बुला लिया और वही इनका पालन-पोषण हुआ।

इनका विवाह मेवाड के महाराणा सॉगा (स० १५६६-८४) के ज्येष्ठ कुँअर भोजराज के साथ सं० १५७३ मे हुआ था। परन्तु विवाह के थोडे ही समय बाद भोजराज का देहावसान हो गया और मीरॉबाई विधवा हो गईं। मुशी देवीप्रसाद के मतानुसार यह दुखद घटना स० १५७३ और सं० १५८८ के बीच में हुई थी।[73] पंडित गौरीशकर-हीराचंद ओझा ने इसका समय स० १५७५ और स० १५८० के बीच में स्थिर किया है।[74]

भोजराज की मृत्यु से मीराँबाई का मन संसार से उचट गया और वह सत्संग तथा भजन-कीर्तन में अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगी। परन्तु ससुरालवालो ने उनके इस तरह के कार्यों को अपनी वश-मर्यादा के विरुद्ध समझा और उनमें बाधाएँ डालने लगे। इसलिए मीराँबाई चितौड़ से अपने पीहर मेड़ते चली गईं। इनका देहान्त सं० १६०३ में हुआ था।[75]

---

71 कविराजा श्यामलदास, बीरविनोद प्रथम प्रकरण, पृ० १०२। मुशी देवीप्रसाद; मीराबाई का जीवनचरित्र, पृ० ६। ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५९। हरबिलास सारडा, महाराणा सागा, पृ० ९६।

72. हरबिलास सारडा, महाराणा सागा, पृ० ९६। ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३५९।

73. मीराँबाई का जीवनचरित्र; पृ० ७

74. उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ३५९

75. मुंशी देवीप्रसाद; मीराँबाई का जीवनचरित्र, पृ० २७। ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६०।

इससे आगे मीराँबाई के संबन्ध में जो अनेक कथाएँ लोगो में प्रचलित है और हिंदी, गुजराती, बँगला, मराठी, अंग्रेजी आदि के मुद्रित ग्रथो में दृष्टि-गोचर होती है उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं है । परन्तु उन पर भी विचार करना आवश्यक है । क्योकि दोहराते-दोहराते ये कथाएँ अब एक तरह से इतिहास का अंग बन गई है ।

राजस्थान में यह दंत-कथा प्रचलित है कि मीराँबाई मेवाड के महाराणा कुभाजी (सं० १४९०-१५२५) की राणी थीं । कर्नल टॉड ने भी यही लिखा है[76] जिसका अनुसरण ठा० शिवसिंह[77], ग्रियर्सन[78] आदि कई प्रतिष्ठित विद्वानो ने किया है । मीराँबाई के नाम से प्रचलित कुछ पद भी ऐसे देखने में आते है जिनमें कुंभाजी का नाम आया है ।[79] परन्तु इतिहास से इसकी पुष्टि नही होती । महाराणा कुंभाजी के ६० से अधिक शिलालेख मिले है ।[80] इनमें कही मीराँबाई का नामोल्लेख नहीं है । न बाद के शिलालेखो में पाया जाता है । महाराणा कुभाजी के कई राणियाँ थीं जिनमें से कुंभलदेवी और अपूर्व देवी के नाम क्रमशः चित्तौडगढ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति[81] (सं० १५१७) और गीतगोविंद की कुभाजी-रचित'रसिक प्रिया' टीका[82] में दिये हुए है । शेष के नाम भाटो की ख्यातो में मिलते है । परन्तु इनमें मीराँबाई का नाम नहीं है । यदि मीराँबाई जैसी प्रसिद्ध महिला कुम्भाजी की राणी होती तो उनका नाम अवश्य इनमें दिया जाता ।

---

76 दि एनलस ऐंड ऐंटिक्विटीज आव राजस्थान पृ. २८९ ।

77 शिवसिंह-सरोज, पृ १०२ (कवियो का जीवनचरित्र)

78 ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान, पृ० १२

79. "राणा कुभाजी ओ जी, जीव रा सघाती जोया नॉय मिलेजी ।।"

80. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३१८

81. वेणीव्याजवलद्भुजगललनालावण्यलीलालया
सौंदर्यामृत दीर्घिका परिलसन्नालीक नेत्रद्वया ।
कुभारभकुचद्वयोपरिचलन्नामुक्तमुक्ता च या
यस्यानगकुतूहलक पदवी कुम्भल्लदेवी प्रिया ।।

—श्लोक १८१

82. महाराज्ञी श्री अपूर्वदेवी हृदयाधिनाथेन महाराजाधिराज महाराज श्री कुम्भकर्ण महीमहेन्द्रेण ········ ।।
पृ० १७४ (नि. सा. प्रे, बबई का सस्करण)

मेवाड के महाराणा भीमसिह के शासन-समय (स० १८३४-८५) में कर्नल टॉड उदयपुर में आये और रहे थे और इतिहास विषयक बहुत-सी सामग्री महाराणा के द्वारा उनको प्राप्त हुई थी । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मीरॉबाई के सम्बन्ध में टॉड साहब ने महाराणा से कोई पूछ-ताछ नही की । यदि वे पूछ-ताछ करते तो उनको सही बात का पता अवश्य लगता । क्योकि महाराणा भीमसिह को मीरॉबाई का बहुत कुछ वृत्तान्त मालूम था जैसा कि रामदान लालस कृत 'भीमप्रकाश' नामक ग्रथ से विदित होता है । यह ग्रथ महाराणा भीमसिह के अनुरोध से स० १८५६ मे लिखा गया था और महाराणा को सुनाया गया था । इसमे एक स्थान पर जहॉ महाराणा सॉगा के पुत्रो की नामावली दी गई है वहाँ भोजराज-मीरॉबाई का स्पष्ट उल्लेख है :—

भोजराज जेठो अभँग, कुँवरपदे म्रत कीध।
मेडतणी मीरॉ महळ, प्रेमी भगत प्रसीध ।।[83]

किसी भी इतिहासकार के लिए यह एक बहुत बडा सकेत है । परन्तु कर्नल टॉड को इसका लाभ नही मिला । महाराणा कुभा एक प्रतिभाशाली विद्वान और साहित्यकार थे । ऐसे सुयोग्य राजा की राणी भी विदुषी होनी चाहिये यह अनुमान लगाकर उन्होंने मीरॉबाई का संबन्ध कुँभाजी से जोड़ दिया और उन्हें उनकी राणी लिख दिया ।

वास्तविक बात यह है कि महाराणा कुभाजी की राणी होना तो दूर रहा मीराँबाई उनकी समकालीन ही नही थी । कुभाजी का देहात स० १५२५[84] में और मीरॉबाई का जन्म स० १५५५ में हुआ था ।[85] अर्थात् महाराणा कुभाजी की मृत्यु के ३० वर्ष बाद मीरॉबाई पैदा हुई थीं ।

इसी तरह की कुछ दतकथाएँ और भी प्रचलित है । जैसे (१) मुग़ल सम्राट अकबर अपने प्रसिद्ध गवैये तानसेन के साथ मीरॉबाई के दर्शन करने को आया था (२) अपने परिवारवालो से दुखी होकर मीरॉबाई ने गोस्वामी तुलसीदास को एक पत्र लिखा था । परन्तु इनमें काल-दोष स्पष्ट है । मीराँ-

83. सेठ सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय कलकत्ता की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३ ।
84. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२
85. वही, पृ० ३५६

बाई की मृत्यु के समय अकबर (जन्म स० १५९९) केवल चार वर्ष का बालक था और गद्दी पर ही नही बैठा था। गोस्वामी तुलसीदास को पत्र लिखनेवाली दतकथा का आधार 'विनयपत्रिका' का एक पद है। परन्तु 'विनयपत्रिका' की रचना गोस्वामीजी ने सं० १६५३ में की थी[86] जब मीराँ-बाई को मरे ५० वर्ष हो गये थे।

कहा जाता है कि मीराँबाई का साधु-सतो में बैठना-उठना और उनके साथ भजन-कीर्त्तन करना इनके देवर राणा विक्रमादित्य (सं० १५८८-९३) को पसंद नही आया और उन्होने विष-प्रयोग द्वारा मीराँबाई को मार डालने की चेष्टा की जो असफल रही। भक्तमाल आदि ग्रथो में इस बात का उल्लेख है और स्वय मीराँबाई ने अपने पदो में स्थान-स्थान पर इस दुष्कर्म का वर्णन किया है :—

'जहर का प्याला भेजिया रे दीजो मीराँ हाथ।"
"राणाजी भेज्यो विष का प्याला सो अमृत कर दीज्यो जी।"
"विष को प्यालो राणाजी मेल्यो द्यो मेडतणी नै प्याय।"
"राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई।"
"मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हठ कर पी गई जहर।"
"राणाजी तै जहर दियो मै जाणी।"

मुशी देवीप्रसाद,[87] डा० ओझा[88] आदि इतिहासकारो ने भी इस घटना को सही माना है। अतः यह सर्वथा निराधार नही है, यद्यपि अतिशयोक्ति पूर्ण अवश्य है।

हिंदुओं के घरो में विधवा स्त्रियो की और विशेषकर बालविधवाओ की कैसी दुर्दशा होती है और उनके साथ कैसा दुर्व्यवहार किया जाता है यह बात किसी से छिपी हुई है नही है। अतः संभव है कि विधवा होने के नाते मीराँबाई को भी कुछ कष्ट-यातनाएँ भोगनी पड़ी हो अथवा विष-प्रयोग द्वारा मार डालने की चेष्टा हुई हो। परन्तु तीन बार विष पीकर भी मीराँबाई के जीवित रह जाने की जो बात कही जाती है उसमें कोई तथ्य नही है। जान पड़ता है, राणा ने मीराँबाई को जहर देने का इरादा किया था

---

86. डा० माताप्रसाद गुप्त, तुलसीदास (द्वितीय सस्करण) पृ० २५४
87. मीराँबाई का जीवनचरित्र, पृ० ११-१२
88. उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६०

पर कार्य रूप में परिणत होने के पूर्व ही उनके इस इरादे का भडा-फोड हो गया और जहर नही दिया जा सका जिससे मीराँबाई बच गईं ।

मीराँबाई के कोई गुरु थे अथवा नही और थे तो कौन थे, यह एक विवाद ग्रस्त विषय है । जनश्रुति के अनुसार सत रैदास इनके गुरु थे । मीराँबाई के नाम से प्रचलित कुछ पदो में भी इस बात का संकेत है:—

मीराँ ने गोविद मिल्या जी गुरू मिलिया रैदास ।"
"गुरु म्हारै रैदास सरनन चित सोई ।"
"रैदास सत मिले मोहि सतगुरु दीन्ह सुरत सहदानी ।"
"गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिडी ।"
"गुरु मिलिया रैदासजी दीन्ही ज्ञान की गुटकी ।"

चित्तौड के किले पर कुंभस्वामी (कुंभश्याम) का एक भव्य मंदिर है जिसको लोग 'मीराँबाई का मदिर' कहते है । इसी के पास आठ खंभो की एक छोटी-सी छतरी है जो मीराँबाई के गुरु की छतरी मानी जाती है और 'रैदास की छतरी' के नाम से प्रसिद्ध है ।

नाभादास कृत भक्तमाल के अनुसार सत रैदास स्वामी रामानद के शिष्य थे । रामानन्द का जन्म सं० १३५६ में हुआ था ।[89] रैदास अपने गुरु रामानन्द से आयु में छोटे ही रहे होगे । परन्तु यदि इन दोनो की आयु बराबर मान ली जाय और यह भी मान लिया जाय, जैसा कुछ लोगों ने माना है, कि रैदास १२० वर्ष की अवस्था में स्वर्गवासी हुये थे[90] तो भी उनका और मीराँबाई का समसामयिक होना सिद्ध नहीं होता । इससे उनका निधन काल सं० १४७६ के आसपास ठहरता है जो मीराँबाई के जन्म स० १५५५ से ७९ वर्ष पहले का है । अतः मीराँबाई को रैदास की शिष्या मानना अनुचित है ।

मीराँबाई एक राज-घराने की महिला थी । इनके ससुर राणा साँगा बड़े प्रतापी राजा थे जिनका लगभग सारे राजस्थान पर प्रभुत्व था ।[91] ऐसे महान् राजा के घराने से अपना सम्पर्क बतलाकर अपने पथ को लोकप्रिय बनाने के लिये रैदासी-पंथियो ने स्वरचित पदो में रैदास का नाम जोडकर उनको

---

89. डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिदी काव्य मे निर्गुण सप्रदाय, पृ० ४१
90. डा० रामकुमार वर्मा, हिदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ०३२२ ।
91. कर्नल टाड, दि एनल्स ऐंड एटिक्विटीज़ आव राजस्थान (प्रथम सस्करण), पृ० ३०० ।

मीराँ के नाम से प्रचलित कर दिया प्रतीत होता है । इसी तरह की चेष्टा वल्लभ-संप्रदायवालो ने भी की है, जैसा कि '८४ वैष्णवो की वार्ता'[92] और '२५२ वैष्णवो की वार्ता'[93] नामक ग्रथो से विदित होता है । पर इन बातो पर वही लोग विश्वास कर सकते है जिनको मेवाड की राज-परम्पराओ और मर्यादाओ का ज्ञान नही है ।

श्री ब्रजरत्नदास ने रघुनाथदास[94] को और श्रीवियोगी हरि ने जीव गोस्वामी को[95] मीरॉबाई का गुरु माना है । परन्तु ये केवल अनुमान मात्र है । इनके पीछे कोई तर्क अथवा प्रमाण नही है । इसलिए इन पर विचार करने की आवश्यकता प्रतीत नही होती ।

संत कबीर, दादू इत्यादि के समान मीराँबाई किसी पथ की प्रवर्त्तक नहीं थीं । न उनका किसी सम्प्रदाय विशेष से कोई सबन्ध था । वह एक सीधी-सादी सद्गृहस्थ भक्त महिला थीं जो भगवान् का भजन-कीर्त्तन कर अपने वैधव्य के दिन व्यतीत करती थीं और भगवान को ही अपना सर्वस्व समझती थी । अतएव किसी व्यक्ति विशेष को इन्होने अपना गुरू बनाया हो ऐसा अनुमान नही होता ।

मीराँबाई केवल भक्त ही न थी, कवि भी थी । इनके रचे पाँच ग्रंथ कहे जाते है–(१) गीतगोविंद की टीका,[96] (२) नरसीजी रो माहेरो,[97] (३) सत्यभामाजी नु रुसणुं,[98] (४) राग सोरठ,[99] और (५) राग गोविंद ।[100]

(१) गीतगोविद की टीका । यह ग्रथ भ्रम से मीराँबाई के नाम से विख्यात हो गया है । वास्तव में यह मीराँबाई का लिखा हुआ नही है, महा-

92 वार्ता न० ४१, न० ५४ और न० ६२ ।

93 वार्ता न ५५ और न० ४७ ।

94 मीरॉ-माधुरी, पृ० ७६ (भूमिका)

95. वही, पृ० ७६

96 मुशी देवीप्रसाद, राजपूताना मे हिंदी पुस्तको की खोज, पृ० ५

97. वही; पृ० ६

98. केशवराम-काशीराम शास्त्री, कविचरित, पृ० १८७

99 मुशी देवीप्रसाद; राजपूताना में हिंदी पुस्तको की खोज, पृ० १७

100. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ३६० ।

राणा कुभाजी का रचा हुआ है। इस बात का चितौड़गढ़ के कीर्तिस्तभ की प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख है। अत.[101] इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के संदेह अथवा मतभेद की गुजाइश नहीं है।

(२) नरसीजी रो माहेरो। इस ग्रथ को मीरॉबाई का बताने की भूल पहले-पहल मुशी देवीप्रसाद ने की थी जिसकी पुनरावृत्ति अभी तक हो रही है। इसकी तीन-चार हस्तलिखित प्रतियो का पता है। इनमें कही मीरॉ-रचित होने का सकेत नही है। ग्रथ में दो एक स्थलो पर 'मीरॉ उवाच' लिखा हुआ है और कदाचित् इसी लिये इसे मीरॉबाई की रचना मान लिया गया है। परन्तु ग्रंथ प्रश्नोत्तर व सवाद के रूप में लिखा होने से ऐसा हुआ है। इसमें इतर स्थानो पर 'नरसी उवाच', 'रामानन्द उवाच', 'सीता उवाच' 'श्रीरगो उवाच' इत्यादि भी लिखा मिलता है। यह ब्रजभाषा की एक बहुत सामान्य कोटि की रचना है। इसकी भाषा बहुत निर्जीव एव कविता नीरस है और मीरॉंबाई की भाषा-कविता से सर्वथा भिन्न है। किसी दूसरे कवि की कृति है। रचना इस ढग की है :—

कहै त्रिया सुन हौ मम बानी। देखि जाय नृप की रजधानी ॥
जती सती देखिय भू केरा। समै पाय जग लियौ बसेरा ॥
हस बस सब फेर बुलावा। करि दृढ मति नृपती गृह धावा ॥
सत अरु साथ जुत्रिया समेता। आये नृप आराम निकेता।
मत्री देखि मलिन मन मॉही। हस श्वान घर कबहुँ न खाही ॥
नृप कौ जाइ दडवत कीना। देखे नृप सब सचिव मलीना ॥
पूछी नृप सब कारन काहा। हस भक्ष गृह नहि नरनाहा ॥
सत अरु साथ हस चलि आये। त्रिया सहित सोभित अधिकाये ॥[102]

(३) सतभामाजी नुं रूसणुं। यह इक्कीस चरणो का एक छोटा-सा लोक गीत है। 'बृहत् काव्यदोहन' में प्रकाशित हो चुका है। इसकी भाषा गुजराती है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुर के सरस्वती भंडार में भी है जो सं० १८३३ की लिखी हुई है। इसके अंतिम चरण में 'मीरॉं' शब्द आया है.—

---

101. येनाकारि मुरारि सगतिरसप्रस्यदिनी नन्दिनी
वृत्तिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविदके।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमहाराष्ट्रादिके योदय-
द्वाणीगुफमय चतुष्टयमयं सन्नाटकाना व्यधात् ॥

102. सरस्वती भडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पृ० ८

रूसणुं गाऊँ रे रूडी रीत सुं रे' लोल
सतभामा ना मोआ छे वाल्हा मन जो।
मीरॉ ना स्त्रामी मदिर पधारिया रे लोल
सतभामा नुं जीवन करयूँ धन धन जो ।। २१ ।। [103]

'मीरॉ ना स्वामी' से अभिप्राय यहाँ श्रीकृष्ण से है । सस्कृतादि के ग्रथो में श्रीकृष्ण के लिये जिस प्रकार 'राधारमण' 'गोपीवल्लभ' 'राधास्वामी' इत्यादि शब्द प्रयुक्त हुए है उसी प्रकार यहाॅ 'मीरॉ ना स्वामी' का प्रयोग श्रीकृष्ण के लिये हुआ है। अतएव मीरॉ शब्द को देखकर इसे मीरॉ-बाई की रचना मान लेना अनुचित ह। कारण, इसकी भाषा मीरॉ-कालीन भाषा नही है। वह उन्नीसवी शताब्दी की गुजराती है।

उदयपुर के सरस्वती भडार की जिस गुटकाकार प्रति मे यह रचना मिलती है उसी में 'राधाजी नु रूसणुं' नाम की एक दूसरी रचना भी है। उसमे उसके रचयिता का नाम 'वल्लभ' दिया हुआ है :—

वल्लभ वैष्णव जन नो दास के हरिचरणे मले रे लोल।[104]

इस ग्रंथ की भाषा-शैली उपरोक्त 'सतभामाजी नु रूसणु' की भाषा-शैली से पूर्णतः मिलती है । इसलिए अनुमान होता है कि 'सतभामाजी नु रूसणु' का कर्त्ता भी वल्लभ ही है।

(४) राग सोरठ। यह स्वतत्र रचना नहीं है। राग सोरठ मे गान योग्य मीरॉबाई के पाँच-सात पदो का सग्रह मात्र है।

(५) राग गोविद । यह भी मीरॉबाई के कुछ फुटकर पदो का सग्रह है जिसे 'राग गोविद' नाम दे दिया गया है।

मीरॉबाई ने केवल फुटकर पद लिखे है जिनके छोटे-बडे लगभग तीस सग्रह हिंदी, गुजराती, बगला आदि भाषाओ में प्रकाशित हुए है । परन्तु इनमें सभी पद मीरॉबाई के रचे हुए नहीं है। मीरॉ के भक्तो तथा मुद्रक-प्रकाशको ने कुछ पद नये बनाकर और कुछ कबीर, सूर, तुलसी, दादू, नानक आदि के इनमें मिला दिये ह । दुर्भाग्य से मीरॉबाई के पदो की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति अभी तक प्राप्त नही हुई है जिसके आधार पर यह दृढतापूर्वक कहा जा सके कि अधुना प्रचलित पदो में इतने पद मीराँ-बाई के है और इतने नही है। बगीय हिंदी परिषद्, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित

103 हस्तलिखित प्रति, पृ० २१५
104. वही' पृ० २२८

'मीराँ-स्मृति-ग्रंथ' में उसके एक संपादक महोदय ने एक प्राचीन प्रति का उल्लेख किया है जिसे उन्होने सं० १६४६ की लिखी हुई बतलाया है।[105] परन्तु इसका कोई प्रमाण उन्होने नही दिया । भूल-भूलैयाँ की तरह एक विचित्र परिस्थिति में इस प्रति के मिलने का वर्णन किया गया है जो मन में सदेह उत्पन्न करता है। इस प्रति में कुल ६६ पद हैं। इनमें से एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

म्हारो मण साँवरो णाम रट्याँ री ।
साँवरो णाम जपा जग प्राणी कोट्याँ पाप कट्याँ री।
जणम जणम री खता पुराणी णमाँ स्याम मट्याँ री ।।
कणक कटोराँ इम्रत भर्‍याँ पीवताँ कूण नट्या री ।
मीराँ रे प्रभु हरि अविणासी तण मण स्याम नट्यारी ।।[106]

इस पद की भाषा न तो मीराँबाई के समय की राजस्थानी भाषा है, न ब्रजभाषा । राजस्थानी भाषा में प्राय' सस्कृत शब्दो के 'न' को 'ण' में बदल दिया जाता है । परन्तु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें इस तरह का परिवर्तन नहीं होता । उपरोक्त पद में आये हुए मन, जनम, कनक, तन इत्यादि शब्द इसी श्रेणी के हैं । इसके अतिरिक्त शब्द के आदि का 'न' तो राजस्थानी में कभी 'ण' में बदलता ही नही । परन्तु इस पद में 'नाम' 'नमा' आदि को 'णाम' 'णमा' आदि कर दिया गया है । व्याकरण संबन्धी त्रुटियाँ भी इस पद में अनेक हैं । मालूम पडता है, राजस्थानी भाषा से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति ने यह सारा जाल रचा है । यदि मीराँबाई ने इस तरह की कर्णकटु और भद्दी भाषा में कविता की होती तो वह कदापि इतनी लोकप्रिय नही हो पाती । यह प्रति स० १६४६ की हो नहीं सकती । अतः इसकी भाषा को मीराँबाई की मूल भाषा मानना भारी भूल है ।

मीराँबाई के पद अधिकतर हिंदी-गुजराती के भक्त कवियों के पदो के साथ सगृहीत मिलते है । इस समय इनके नाम से लगभग पौने पाँच सौ पद भारतवर्ष में प्रचलित हैं । परन्तु इनमें कई पद प्रक्षिप्त ह । गुजराती भाषा के पद तो सभी सदिग्ध है । क्योकि मीराँबाई का द्वारका में प्राणान्त होने की जो बात कही जाती है[107] और जिसके आधार पर

105. मीराँ-स्मृति-ग्रथ, पदावली परिचय, पृ० घ

106 वही, पृ० १६

107. ग्रियर्सन, दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० १२ । मुशी देवीप्रसाद मीराँबाई का जीवनचरित्र, पृ० २७ ।

मीराँबाई को गुजराती पदो का रचयिता माना गया है वह लोगो की कवल कपोल-कल्पना है । उसके लिये कोई सुदृढ ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है । शेष पदो म भी प्रक्षिप्त पदो की सख्या बहुत है। परन्तु मीराँबाई के प्रत्येक पद पर उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप लगी हुई है और इसलिये उनके वास्तविक पदो को पहचान लेना असंभव नही है. यद्यपि कुछ कठिन अवश्य है । अनुमानत· मीराँ के पदो की सख्या २२५।२५० है।

मीराँबाई ने ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनो में कविता की है। इनके कुछ पद ब्रजभाषा में और कुछ राजस्थानी में है । इनकी भाषा सरल और भावोपयोगी है । इनके शब्द-व्यवहार में बड़ी कोमलता और स्वाभाविकता है । बाह्याडबर और शाब्दिक चतुराई के फेर में न पड़कर इन्होने सीधी बात को सीधे ढंग से कहा है जो मस्तिष्क से पहले हृदय को स्पर्श करती है ।

मीराँ प्रेम और भक्ति की दीवानी थी । आध्यात्मिक आकुलता और भक्त-हृदय का अटल विश्वास इनकी कविता में अपूर्व रूप से झंकृत है । साहित्यिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इनकी कविता कोई बहुत ऊंची नही है । परन्तु सरल, स्वाभाविक तथा भक्तिभाव पूर्ण होने से एक भक्त-हृदय को मुग्ध करने में वह फिर भी अप्रतिम है । कृष्ण-भक्ति में कवि चूड़ामणि भक्तवर सूरदास की तुलना किसी दूसरे से नही हो सकती । सूर सचमुच हिंदी साहित्याकाश के 'सूर' हैं । उनके 'सूरसागर' में प्रेम-रस की एक बाढ-सी आ गई है और गोपियो के मुह से जो पद उन्होने कहलवाये है उनमें उन्होने नारी-हृदय का ऐसा मधुर, मनोवैज्ञानिक एव कलात्मक विश्लेषण किया है कि देखकर चकित ही रह जाना पड़ता है । सख्या भी सूर के पदो की कम नहीं । परन्तु इतना सब होते हुए भी मीराँ के पदो में जो रस है, मीठा-सा दर्द है, वह उनमें भी नहीं आ पाया है ।

मीराँ की भक्ति दपति-भाव की थी । अत. इनकी कविता में भक्ति और शृगार का सुन्दर सयोग हुआ है । परन्तु इनका शृंगार बहुत मर्यादित है । उसमें न तो विद्यापति की सी अश्लीलता है, न सूर की सी उच्छृखलता और न बिहारी की सी मादकता । उसमें पवित्रता है और साथ ही चिरतन प्रेम की अनोखी झांकी भी है । इसी लिये निष्ठुर काल के थपेड़े भी उसके सौंदर्य को, उसकी कांति एव प्रभाव को, मंद अथवा मलिन नहीं कर सके है ।

(२) **कृष्णदास पैहारी**—ये जयपुर के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान गलता के महन्त

और जाति के दाहिमा ब्राह्मण [108] थे । ये स्वामी रामानन्द के शिष्य अनंतानद के चेले थे ।[109] केवल दूध पर जीवन-निर्वाह करते थे इसलिये पैहारी' कहलाये । ये आमेर के महाराज पृथ्वीराज की राणी बालांबाई के गुरु थे । [110] महाराज पृथ्वीराज ने स० १५५६ से स० १५८४ तक राज किया था । [111] अत' लगभग यही समय कृष्णदास का भी समझना चाहिये ।

कुछ विद्वानों ने भ्रमवश अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी और इन कृष्णदास पैहारी को एक व्यक्ति मान रखा है ।[112] परन्तु वास्तव में ये दो भिन्न व्यक्ति थे जैसा कि नाभादास कृत भक्तमान्न [113], ८४ वैष्णवन की वार्ता [114] इत्यादि ग्रथो से विदित होता है ।

पेहारीजी एक योग्यसिद्ध महात्मा एवं तेजस्वी ब्रह्मचारी थे । इनके योग-चमत्कार की अनेक कथाएँ लोगो मे प्रचलित है । कुछ का समावेश प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका में भी हुआ है । [115] परन्तु इनका ऐतिहासिक मूल्य नगण्य है । कहा जाता है कि इन्होने महाराज पृथ्वीराज के गुरु कापालिक सप्रदाय के योगी चतुरनाथ को शास्त्रार्थ में परास्त किया था जिसके फल-स्वरूप इनको गलता की गद्दी प्राप्त हुई थी । [116]

कृष्णदास पैहारी संस्कृत एवं भाषा के अच्छे पंडित ओर प्रतिभावान कवि थे । ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार था । इनके नाम से तीन ग्रंथ प्रचलित है—ब्रह्मगीता, प्रेमसत्वनिरूप और जुगलमानचरित [117] । इनमें प्रथम दो ग्रथ निश्चित रूप से इन्ही के है क्योंकि उनमें कृष्णदास के गुरु

---

108. नाभादास, भक्तमाल, छप्पय ३६ ।

109. वही; छप्पय ३८ ।

110. हितैषी; दिसम्बर-जनवरी सन् १६४१-४२ मे प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरनारायणजी का 'जयपुर के कवि-कोविद' शीर्षक लेख, पृ० ५४१ ।

111. हनूमान शर्मा; जयपुर का इतिहास, पृ० ३६ और ४१ ।

112. ग्रियर्सन; दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० २१ ।डा० रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय सस्करण) पृ० ६७७ ।

113. छप्पय न० ३८, ३६ और ८१ ।

114. ८४ वैष्णवन की वार्ता में कृष्णदास की वार्ता, प्रसग ६-६ ।

115. श्री वेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बम्बई, से प्रकाशित सस्करण, पृ० ७१ ।

116 हनूमान शर्मा; जयपुर का इतिहास, पृ० ३७ ।

117. हितैषी; दिसम्बर-जनवरी सन् १६४१-४२, पृ० १५६ ।

आदि का नाम दिया हुआ है और उनका वर्ण्य विषय भी रामानंदी सम्प्रदाय के सिद्धातो से मेल खाता है। परन्तु तीसरा ग्रंथ 'जुगलमानचरित' सदिग्ध है। इसमें राधाकृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन है। कृष्णदास पैहारी रामानदी सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्यों में से थे और उस समय पैदा हुए थे जब कि वल्लभ सम्प्रदाय और रामानन्दी सप्रदाय के आचार्य-अनुयायी लोगो में अपना-अपना प्रभाव बढाने की एक होड-सी लगी हुई थी। ऐसी स्थिति में रामोपासक कृष्णदास पैहारी ने कृष्ण-लीला सबन्धी यह ग्रंथ रचा हो ऐसा विश्वास नही होता। यह सर्वथा असभव तो नहीं है पर कुछ अस्वाभाविक अवश्य है। अत॰ सभव है कि यह ग्रथ अष्टछाप के कृष्णदास अधिकारी अथवा कृष्णदास नाम के किसी दूसरे कृष्ण-भक्त कवि का रचा हुआ हो। परन्तु इस विषय में दृढ़तापूर्वक कुछ कहना कठिन है।

कृष्णदास की रचना मधुर और कोमल है। परन्तु उसमें काव्य-तत्व की अपेक्षा बुद्धि-तत्त्व अधिक पाया जाता है। इसलिये वह मन की अपेक्षा मस्तिष्क को अधिक स्पर्श करती है। इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते है। इन पर भी इनके तत्त्वज्ञान की गहरी छाप लगी हुई है।

(३) कील्हजी—ये कृष्णदास पैहारी के शिष्य थे[118]। इनके पिता का नाम सुमेरदेव था जो गुजरान के सूबेदार थे।[119] ये बडे भगवद्भक्त और साख्य योग आदि के सुज्ञाता थे। इनको भगवान श्रीरामचन्द्र का बड़ा इष्ट था और दिन-रात रामनाम की रट लगाया करते थे। ये भीष्म पितामह के समान मृत्युजय थे पर सरल एवं निरभिमान इतने थे कि अपने मिलनेवालो से पहले झुककर प्रणाम करते थे। प्रियादास ने लिखा है कि अत समय में इन्होंने सब सत समाज को एकत्र किया और सब का सम्मान आदि कर उनके सामने ब्रह्माण्ड से प्राण त्याग शरीर छोडा।[120]

कील्हजी का रचा हुआ कोई स्वतत्र ग्रथ नहीं मिलता। थोड़े से फुटकर पद मिलते है जिनसे इनकी अखंड भगवद्भक्ति और सहृदयता का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी भाषा ढूँढाड़ी से प्रभावित ब्रजभाषा है। इनके पद सद्भावोत्पादक एव विचार-सौंदर्य से ओत-प्रोत है और मानव हृदय में आध्यात्मिक स्फूर्ति का सचार करते है।

---

118. नाभादास; भक्तमाल, छप्पय ४०।

119. वही; छप्पय ४१।

120. श्री वेंकटेश्वर यत्रालय से प्रकाशित संस्करण, पृ० ७१–७२।

(४) अग्रदास—ये कृष्णदास पैहारी के शिष्य और कील्हजी के गुरु-भाई थे। कील्हजी की भाति ये भी भगवान श्रीरामचन्द्र के परम भक्त और सरल प्रकृति के जीव थे। गुरुभक्ति इनमें इतनी थी कि अपने गुरु कृष्णदास के निवास-स्थान, उद्यान आदि की सफाई स्वय अपने हाथो से करते थे यद्यपि इस कार्य के लिये नौकर-चाकर नियत थे।[121] स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने अग्रदास का स० १६३२ तक जीवित रहना बतलाया है[122] जिसका कोई प्रमाण उन्होने नही दिया। परन्तु प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका से विदित होता है कि ये और भी आगे तक विद्यमान थे। अपनी इस टीका में प्रियादास ने आमेर के महाराजा मानसिंह और अग्रदास की भेंट का वर्णन किया है।[123] महाराजा मानसिंह ने सं० १६४६ से सं० १६७५ तक राज्य किया था। यदि उनके शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही यह भेंट हुई हो तो भी सं० १६४६ तक अग्रदास का विद्यमान होना स्पष्ट है। सत्य तो यह है कि अग्रदास स० १६३२ तक ही नही, वरन् सं० १६४६ के पश्चात् भी लगभग १५ वर्ष तक विद्यमान थे। उनकी रचनाओ से भी इस बात का समर्थन होता है। इनके 'विश्वब्रह्मज्ञान' और 'रागावली' ग्रंथों में उनका रचनाकाल दिया हुआ है जो क्रमशः स० १६४७ और स० १६६० में लिखे गये थे[124]। अतः स० १६३२ तक अग्रदास का जीवित रहना जो बतलाया जाता है वह निर्मूल है। वास्तव में ये सं० १६६० तक विद्यमान थे।

अग्रदास ने छोटे-बडे कुल मिलाकर नौ ग्रथ बनाये जिनके नाम निम्न हैं :—

(१) श्रीरामभजन-मंजरी (२) कुडलिया (३) हितोपदेश भाषा (४) उपासना बावनी (५) ध्यानमजरी (६) पद (७) विश्वब्रह्मज्ञान (८) रागावली और (९) रामचरित के पद।

अग्रदास रामोपासक भक्त थे। इन्होने रामभक्ति पर विशेष लिखा है। इनकी भाषा सीधी-सादी चलती ब्रजभाषा है जिसमें राजस्थानी के शब्द मुहावरो का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनकी कविता मधुर, भावमयी और

---

121. नाभादास; भक्तमाल, छप्पय ४२।

122. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १२६।

123. श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से प्रकाशित सस्करण, पृ० ७२–७३।

124. मिश्रबधु; मिश्रबधु-विनोद, प्रथम भाग पृ० ३२२।

मौलिकतापूर्ण है। उसमें प्रसाद है, कान्ति है, और व्यापक रूप में ओज भी है।

(७) नाभादास—ये अग्रदास के शिष्य थे। इनका वास्तविक नाम नारायणदास था। इनकी जाति के सबन्ध में मतभेद है। कोई ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय और कोई डोम बतलाते है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने इनको हनुमानवशी लिखा है :—

"हनूमान वश ही मे जनम प्रसिद्ध जा को
भयो दृगहीन सो नवीन बात धारिये।"[125]

'हनूमान' का अर्थ स्वर्गीय श्रीराधाकृष्णदास ने 'डोम' किया है और इस अर्थ के आधार पर उन्होने नाभादास की जाति डोम बतलाई है जिसका अनुसरण हिदी के अन्य कई विद्वानो ने किया है। श्रीराधाकृष्णदास लिखते है कि "मारवाडी भाषा में 'डोम' शब्द का अर्थ 'हनुमान' है, इसलिये प्राचीन टीकाकारो ने इन्हें हनुमानवशी लिखा है।[126]" मालूम नही यह बात उन्होने किस आधार पर लिख दी। राजस्थान में 'डोम' का 'हनुमान' अर्थ कहीं सुनने में नहीं आया, न मारवाडी भाषा के किसी कोष या ग्रथ में इसका यह अर्थ देखने में आता है।

राजस्थान-काठियावाड में क्षत्रियो के कुछ ऐसे घराने मिलते है जो अपने को वानरवशी कहते है। अतएव बहुत सभव है कि नाभादास का जन्म किसी वानरवशी क्षत्रिय परिवार में हुआ हो जिसके पर्याय के रूप में प्रियादासने हनुमानवंशी शब्द का प्रयोग किया है।

नाभादास जन्मांध थे। बचपन में इनके पिता का देहावसान हो गया था। जब ये पॉच वर्ष के थे तब देश में घोर दुर्भिक्ष पडा। इनकी माता से इनका भरण-पोषण न हुआ और वह इन्हें वन में छोड आई। संयोग से कील्हजी और अग्रदासजी घूमते-घामते उधर जा निकले। इनको वहाँ पड़ा देखकर उनके मन में दया आ गई और उठाकर अपने निवास-स्थान गलता में ले गये। इन सतो की कृपा से नाभादास की ऑखें भी ठीक हो गईं। तभी से ये उनके शिष्य बन गये और उनके साथ रहने लगे।[127]

---

125. श्रीवेंकटेश्वर यत्रालय से प्रकाशित सस्करण, पृ० १६
126. ध्रुवदास कृत भक्तनामावली; पृ० ८९।
127. प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका (वे० प्रे०), पृ० १६

हिंदी साहित्य के विद्वानो ने नाभादास का रचना काल सं० १६४२ – १७०० निश्चित किया है जो उचित प्रतीत होता है । इस विषय में जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी ने पर्याप्त गवेषणा की थी । उन्होने इनका रचना-काल सं० १६४०-६० स्थिर किया है । परन्तु यह कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है ।[128]

नाभादास उत्तम कोटि के कवि और भक्त थे । इनके रचे चार ग्रंथो का पता है—भक्तमाल, रामचरित्र के पद और दो अष्टयाम, एक ब्रजभाषा गद्य में और दूसरा पद्य में ।

इन ग्रथो में 'भक्तमाल' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है । यह लोकप्रिय भी बहुत है इसका निर्माण इन्होने अपने गुरु अग्रदास की आज्ञा से किया था :—

गुरु अग्रदेव आज्ञा दई, भक्तनि को यश गाइ ।
भवसागर के तरन को, नाहिन और उपाइ ॥ [129]

इसमें ३१६ छद है जिनमें लगभग २०० वैष्णव भक्तो की महिमा गाई गई है । ग्रथ इतिहास और साहित्य दोनो दृष्टियों से परम उपयोगी और प्रशसनीय है । इस पर छ: टीकाएँ भी हुई है [130] जिनमें प्रियादास की 'भक्ति-रसबोधिनी' टीका बहुत प्रसिद्ध है ।

भक्तमाल की भाषा ब्रजभाषा है जो बहुत प्रौढ, परिमार्जित एव ललित है । इसकी रचना पद्धति सरस और चित्ताकर्षक है । वैष्णव भक्तो के विभिन्न शब्द-चित्र जो इसमें अकित किये गये हैं वे बहुत सुन्दर तथा स्वाभाविक है और उनमें किसी प्रकार की अवास्तविकता एवं अतिरंजना नहीं आ पाई है ।

(६) जल्ह—इनका विशेष वृत्त ज्ञात नही है । इनके 'बुद्धिरासौ' ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति का पता हाल ही में लगा है जो सं० १७०४ की

128. हितैषी; दिसबर-जनवरी सन् १९४१-४२, पृ० १४१

129. भक्तमाल; छद ४ ।

130. भक्तिरसबोधिनी टीका (प्रियादास), भक्तकल्पद्रुम टीका (प्रतापसिंह), भक्तविनोद (कवि मियाँसिंह), भक्तिसुधास्वाद तिलक (श्री सीतारामशरण भगवानदास रूपकला), रामरसिकावली (रघुराजसिंह) और भक्तदामगुणचित्रनी टीका (बालकराम) ।

लिखी हुई ।[131] इसकी भाषा-रचना से ये जैसलमेर अथवा है बीकानेर की तरफ के कोई जैन कवि मालूम पडते है। जल्ह नाम के एक कवि जैनियो मे हुए भी है[132] जिनके रचे हुए कुछ फुटकर पद्य मिलते है। उनका रचना-काल स० १६२५ है। उनकी भाषा-शैली और बुद्धिरासौ के कर्त्ता जल्ह की भाषा-शैली पर्याप्त सादृश्य है। इसलिये अनुमान होता है कि ये दोनो कवि एक ही है। यदि यह अनुमान ठीक हो तो जल्ह का रचना-काल सं० १६२५ के लगभग ठहरता है।

बुद्धिरासौ एक छोटा सा प्रेमाख्यान है। इसकी कथावस्तु काल्पनिक है।[133] इसमें चम्पावती नगरी के राजकुमार और जलधितरंगिनी नामक एक रूपवती स्त्री की प्रेम-कथा का वर्णन है। राजकुमार अपनी राजधानी से आकर कुछ दिनो के लिये जलधि तरगिनी के साथ समुद्र के पास किसी निर्जन स्थान में ठहरता है और जिस समय वहाँ से रवाना होता है जलधि-तरगिनी से एक माह के भीतर वापस लौटने की प्रतिज्ञा करता है। अवधि के ऊपर कई मास बीत जाने पर भी जब राजकुमार नही आता है तब विरहोत्तापित जलधितरगिनी दुनियाँ से विरक्त हो जाती है और अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषणो को अपने शरीर से उतार फेंकती है। इस पर उसकी माँ उसके सामने दुनियाँ के विलास-वैभव तथा देवदुर्लभ मानव देह का बखान करने लगती है। इतने में राजकुमार भी आ पहुँचता है। दोनो का पुर्नमिलन हो जाता है और हास-विलासपूर्वक अपना समय व्यतीत करते है।

बुद्धिरासौ की छंद सख्या १४० है। इसका कथानक मार्मिक है। परन्तु काव्य-कला की अपेक्षा भाषाशास्त्र की दृष्टि से इस ग्रथ का महत्त्व विशेष है। अनेक कारणो से मीराँ, सूर इत्यादि हमारे ब्रजभाषा के कवियों की रचनाओ का मूल रूप विकृत हो गया है और उनका आदि स्वरूप कैसा था यह जानना आज हमारे लिये दुसाध्य है। परन्तु बुद्धिरासौ इस दोष से मुक्त है। उसमें उसका प्रकृत रूप बहुत कुछ सुरक्षित है।

---

131. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज (प्रथम भाग), पृ० ७६।

132. अगरचद नाहटा और भँवरलाल नाहटा, ऐतिहासिक जैन-काव्य-संग्रह, पृ० १३८।

133 इति प्रतिवाद सुवेस रस, वर्ण कियो कवि जल्ह ।।
चपावति नयरी सुथल, कही मनोहर गल्ह ।।
हस्तलिखित प्रति, पद्य १४०

बुद्धिरासौ की भाषा-रचना प्रांजल, प्रवृद्ध एव प्रवाहपूर्ण है। उस पर हलका-सा रंग अपभ्रश का भी लगा हुआ है। उदाहरण—

चदमुखी मुख चद कीय। चखि कज्जल अबर हार लीय ।।
घन घटनि छिद्र नितब भरै। मयमत्त सुवा मनमछ्छ करै ।।
अनि अथि तम्बोल अमोल मुख। अहि लोक सु अछ्छर कौन सुख ।।
कुच ढकति कचु कसी कसिये। जुग भीर जुरे मनमछ्छ भये ।।
घन जघनि कचन रभ बनी। पहिरनि पटबर अग तनी ।।
चष भू अनि बक निसख खरै। विष वान कटाछिन प्रान हरै ।।
कर ककन अकन जायि नहो। ग्रिहि जानु गुहे भुजपाल वही ।।
बर हस बिराजन हस बनी। तप छडि जोगेन्द्र मद्द सुनी ।।
चरनावलि बेस विसाप अगे। कदली दल जानि कसुभ रगे ।।
बनि ठाढिय अगनि आयि खरी। रथ खचि रह्यौ रवि एक घरी ।।[134]

(७) पृथ्वीराज—ये बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के बेटे और राव जैतसी के पोते थे। इनका जन्म स० १६०६ में हुआ था। इतिहास-प्रसिद्ध महाराजा रायसिह इनके बडे भाई थे। कर्नल टॉड ने इनके विषय में लिखा है कि 'पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामतो में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय टूबेडार राजकुमारो की भाति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वय तलवार लेकर लड भी सकते थे। इतना ही नही, राजपूताने के कवि-समुदाय ने एक स्वर से गुणज्ञता का सेहरा भी इन्ही वीर राठौड के सिर बाँधा था।'[135]

ये मुगल सम्राट् अकबर के बडे कृपापात्र थे और प्रायः शाही दरबार में रहा करते थे। मूता नैणसी की ख्यात से पता लगता है कि बादशाह ने इन्हें गागरौन का किला दिया था जो बहुत समय तक इनकी जागीर में रहा।[136]

---

134. हस्तलिखित प्रति, पृ० ४०४-४०५

135 कर्नल टाड, दि एनल्स ऐड ऐंटिक्विटीज़ आव राजस्थान (प्रथम सस्करण) पृ० ३४३

136. "तठा पछे वळे एक वारए पृथ्वीराज कल्याणमलोत बीकानेरीया पातसाहजो गढ गागरूग दी थी। तद पिण वेढ हुई। तिकारा पृथ्वीराजजी जीती। खीची हारिया।" (उदयपुर के सरस्वती भंडार की हस्तलिखित प्रति, पत्र स० ६७)

इन्होने दो विवाह किये थे । इनकी पहली स्त्री का नाम लालांदे था । यह जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री थी । इसका देहान्त हो जाने पर इन्होने इसी की बहिन चाँपादे से अपना दूसरा विवाह किया। इन दो स्त्रियो से पृथ्वीराज के कितनी संतति हुई इसका ठीक-ठीक पता इतिहास-ग्रंथों से नही लगता । परन्तु इनके सतति हुई थी यह निश्चित है । इनके वंशज पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं जो बीकानेर राज्यान्तर्गत दद्रेवा के पट्टेदार है ।[137] पृथ्वीराज का देहावसान स० १६५७ में हुआ था । उस समय इनकी आयु ५१ वर्ष की थी ।

उच्च कोटि के योद्धा एव कवि होने के अतिरिक्त पृथ्वीराज भगवद्भक्त भी पूरे थे । भक्तवर नाभादास ने भी अपने 'भक्तमाल' में इनका बखान किया है ।[138] ये पिंगल और डिंगल दोनो में कविता करते थे । इनका लिखा 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल भाषा का एक अद्वितीय ग्रथ है । मिश्रबन्धु-विनोद में इनके 'प्रेमदीपिका' नामक एक ब्रजभाषा के ग्रथ का उल्लेख भी हुआ है जिसमे से थोडा-सा अश भी उद्धृत किया गया है ।[139] परन्तु यह पृथ्वीराज की प्रामाणिक रचना नही है । राजस्थान के इतिहास-ग्रथो में कहीं इसका नाम दृष्टिगत नही होता, न बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में यह ग्रंथ पाया जाता हैं जहाँ पृथ्वीराज के सभी ग्रथ सुरक्षित है । ऐसा ज्ञात होता है कि मिश्रबन्धुओं ने भ्रमवश किसी दूसरे कवि की रचना को पृथ्वीराज की मान लिया है ।

पृथ्वीराज ने ब्रजभाषा में केवल फुटकर कविता लिखी है जिसमें वीर रस का प्राधान्य है । यह कविता अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है और इसमे बहुत बल एव तेज पाया जाता है जो ब्रजभाषा के बहुत कम कवियों की रचनाओ में देखने को मिलता है ।

(८) परशुरामदेव--ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य श्रीहरिव्यास देवजी के शिष्य थे । इनका 'विप्रमती' नामक एक ग्रथ मिला है जो सं० १६७७ में लिखा गया था ।[140] इससे इनका रचना-काल स० १६७७ के आसपास निश्चित होता है । ये जाति के आदिगौड ब्राह्मण थे । इनके जन्म-

137. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास प्रथम खड, पृ० १६१

138 छप्पय २४०

139 भाग पहला (चतुर्थ सस्करण), पृ० २८३ ।

140. उदयपुरस्थ श्रीस्वामी प्रयागदासजी महाराज के स्थल की 'परशुराम सागर' की हस्तलिखित प्रति, पृ० १७४

स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के लोग जयपुर राज्य के खंडेला ग्राम को इनकी जन्मभूमि बतलाते है। परन्तु नाभादास कृत भक्तमाल में इनका जो वर्णन मिलता है उससे कुछ ऐसी ध्वनि निकलती है कि ये जंगलदेश अर्थात् बीकानेर के रहनेवाले थे --

ज्यौ चदन कौ पवन, नीब पुनि चदन करई।
बहुत काल तम निबिड उदय दीपक ज्यौ हरई ॥
श्रीभट पुनि हरिब्यास सत मारग अनुसरई।
कथा कीरतन नेम रसनि हरि गुण उच्चरई ॥
गोबिद भक्ति गद रोग गति तिलकदाम सद बैद हद।
जगली देश के लोग सब परसुराम किए पारषद ॥ [141]

परशुरामदेवजी बहुत ज्ञानी और प्रभावशाली महात्मा थे। हरिव्यास देवजी के और भी कई शिष्य थे जिनमें से कुछ आयु में परशुरामजी से बडे भी थे। पर उनमें प्रतिष्ठा इनकी सब से अधिक थी और छोटे-बडे सभी इनके चरणो मे मस्तक नमाते थे --

आचारज हरिब्यास के, सिष्य सपूत अनत।
तिनमे मुखिया परसुराँ, गादीवत महत ॥
कठमाल हरिब्यास की, पुनि सर्वेस्वर ईस।
सो राजत श्रीमत्प्रभू, परसुराम के सीस ॥
सिष्य सकल हरिब्यास के, और प्रसिष्य अनत।
परसुराम पद-पादुका, सब ही आन नमत ॥ [142]

—हरिव्यासछब्बीसी

परशुरामदेव-विरचित 'परशुरामसागर' अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उदयपुरस्थ श्री स्वामी प्रयागदासजी महाराज के स्थल में विद्यमान है। यह स० १८३७ में लिपिबद्ध हुई थी। इसमें इनके निम्नलिखित २३ ग्रंथ सगृहीत है :—

(१) साखी का जोडा (२) छद का जोडा (३) सवैया दस अवतार का (४) रघुनाथचरित्र (५) श्रीकृष्णचरित्र (६) सिंगार सुदामाचरित्र (७) द्रौपदी का जोडा (८) छप्पय गज-ग्राह का (९) प्रहलादचरित्र (१०) अमरबोध लीला (११) नामनिधि लीला (१२) साँच निषेध लीला (१३) नाथ लीला (१४) निज रूप लीला (१५) श्रीहरि लीला (१६) श्री निर्वाण लीला (१७) समझणी लीला (१८) तिथि लीला (१९) वार लीला

141. छप्पय न० २३७

142. स्वामी प्रयागदासजी के स्थल की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

(२०)नक्षत्र लीला (२१)श्री बावनी लीला (२२)विप्रमती और (२३)पद ।

परशुरामदेवजी की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा नहीं है । वह सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा है जिसमें राजस्थानी का भी पर्याप्त पुट लगा हुआ है । ये सगुणोपासक भक्त थे । अतएव इन्होने सगुण भक्ति पर विशेष लिखा है । परन्तु इनकी निर्गुण भक्ति सम्बन्धिनी कविताएँ भी मात्रा में कम नही है । शैली इनकी प्रथाबद्ध है । भावो मे भी नवीनता बहुत थोडी है । अधिकतर कबीर, सूर इत्यादि के भावो को अपनाया गया है । परन्तु कही-कहीं मौलिक सूक्तियाँ भी है जो बडी सरस और प्राणवान है ।

(६) तत्त्ववेता—ये भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्यों में से थे और श्री परशुरामदेवजी के शिष्य थे। इनका आविर्भाव काल स० १६८० के लगभग है । इनके वास्तविक नाम का पता नही है । 'तत्त्ववेत्ता' इनका उपनाम था जो तत्त्वज्ञान संबन्धी इनके गहन ज्ञान को देखकर गुरु ने रख दिया था । ये जोधपुर राज्य के जैतारण गाँव में पैदा हुए थे और जाति के गुर्जरगौड़ ब्राह्मण थे । इनकी गद्दी अभी तक जैतारण में चल रही है । वही इनका समाधि-स्थान भी है ।

ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । इनकी 'वाणी' जैतारण के गोपाल मदिर में विद्यमान है । उसमें ज्ञान-उपदेश की बातो का प्राधान्य है । फिर भी रचना मनोहारिणी है । इनका 'कवित्त' नामक एक और ग्रंथ उपलब्ध हुआ है ।[143] इसमे ९८ कवित्त (छप्पय) हैं जिनमें राम, कृष्ण, नारद आदि भारत के प्राचीन महापुरुषो की महिमा गायी गई है । ग्रथ नाभादास कृत भक्तमाल की शैली पर लिखा गया है । रचना सुन्दर है । भाषा इस ढग की है :—

उग्रसेन बलहीन कृष्णजी राजा कीनौ ।
राजपाट राज्यद छत्र सिघासन दीनौ ।।
स्वामी सेवक होय चत्रुभुज चौर ढलावै ।
पीतांबर स्यौं छाँडि पाय पनही पहरावै ।।
दालिद हरन दयाल बिपुल बैभौ बिस्तारा ।
करुणासागर कृष्ण किसोर कीनौ स कुवारा ।।
ततवेता तिहु लोक मे भगतबछल जस गाइयै ।
मनसा बाचा कर्मणा मन बछित फल पाइयै ।। [144]

---

143. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज, प्रथम भाग, पृ० ३९ ।
144 हस्तलिखित प्रति, पत्र ४०

द्वितीय अध्याय का परिशिष्ट

(१०) देवा, उदयपुर। नि० का० सं० १६३२; र० फुटकर; वि० ये कूट-काव्य लिखते थे।

(११) लालांदे, बीकानेर। नि० का० स० १६४०, र० फुटकर, वि० राठौड पृथ्वीराज की पहली स्त्री।

(१२) चाँपादे, बीकानेर, नि० का० सं० १६५०; र० फुटकर, वि० राठौड पृथ्वीराज की दूसरी स्त्री।

(१३) राडधडीजी, सिरोही। नि० का० स० १६५० के लगभग, र० फुटकर; वि० यह सिरोही-नरेश की राणी थी।

(१४) मानसिंह, जयपुर। नि० का० सं० १६४६-७५; र० फुटकर; वि० ये जयपुर के महाराजा थे।

(१५) हरनाथ, जयपुर। नि० का० स० १६६०, र० फुटकर; वि० महाराजा मानसिंह के समकालीन।

(१६) लीलाधर, जोधपुर। नि० का० स० १६७७, र० फुटकर, वि० महाराजा गजसिंह के आश्रित।

(१७) चतुर्भुजसहाय, उदयपुर। नि० का० सं० १६७७; र० फुटकर, वि० ये जाति के राव थे।

(१८) परसाद, उदयपुर। नि० का० स० १६८०; र० फुटकर, वि० महाराणा कर्णसिंह के आश्रित।

(१९) जसवंतसिंह, प्रतापगढ। नि० का० सं० १६८५-९०; र० फुटकर; वि० ये प्रतापगढ के राजा थे।

तृतीय अध्याय

मध्यकाल (सं० १७००–१९००)

लगभग सं० १७०० से ब्रजभाषा साहित्य का मध्यकाल आरभ होता है जो स० १९०० तक चलता है। आदि काल में भक्ति-काव्य की प्रधानता थी पर इस काल में भक्ति-काव्य के साथ साथ रीति-काव्य और चरित्र-काव्य का भी निर्माण हुआ। विशेषकर रीति-काव्य तो इतना अधिक रचा गया कि उसे देखकर कुछ विद्वानो ने इस काल का नाम ही 'रीति काल' रख दिया है। यह नाम उपयुक्त है और सार्थक भी। क्योकि इससे इस काल की प्रमुख काव्य धारा का बहुत कुछ अनुमान हो जाता है।

रीति के मुख्य अग तीन हैं—अलकार, रस और ध्वनि। ब्रजभाषा का अलकार विषय अधिकतर जयदेव के 'चन्द्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानद' के आधार पर निर्मित हुआ है। इसी प्रकार रस तथा ध्वनि विषयक विवेचन के लिये 'काव्यप्रकाश' 'साहित्यदर्पण' 'रसमजरी' इत्यादि सस्कृत-ग्रथो से सहायता ली गई है। अत विषय-मौलिकता की दृष्टि से ब्रजभाषा का यह रीति-साहित्य विशेष महत्त्व का नही है। परन्तु विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से इसका भारी महत्त्व है। क्योकि मूल विषय सामग्री दूसरो की होते हुए भी ब्रजभाषा के कवियो ने उसे ऐसी उत्तमता से सजाया है कि वह सर्वथा नवीन-सी प्रतीत होती है। इतना ही नही, नायिका-भेद-वर्णन में तो ये कवि सस्कृत कवियो से भी कुछ आगे निकल गये है।

राजस्थान में लिखे गये इस काल के रीति-काव्यों के नाम नीचे दिये जाते है :—

लेखक	ग्रथ	रचना-काल
१. जान	रसकोश	स० १६७६
	कविवल्लभ	स० १७०४
	रसमजरी	स० १७०६
	रसतरगिनी	सं० १७११
२. केहरी	रसिकविलास	स० १७१०
३. जगन्नाथ	रतिभूषण	स० १७१४
४. सूरवत्त	रसिकहुलास	स० १७१६

लेखक	ग्रंथ	रचना-काल
५. जसवतसिंह	भाषाभूषण	स० १७१७
६ उदयचद	अनूपरसाल	सं० १७२८
७ नदराम	अलसमेदनी	स० १७२८*
८ मान	सयोगद्वात्रिंशिका	स० १७३१
९. सतीदास व्यास	रसिक-आराम	स० १७३३
१०. रूपजी	रसरूप	सं० १७३९
११ कुलपति मिश्र	रस-रहस्य	स० १७४३
१२. वृन्द	भावपचाशिका	स० १७४३
	शृगारशिक्षा	स० १७४८
१३. अभयराम	अनूपशृगार	स० १७५४
१४ लोकनाथ चौबे	रसतरग	स० १७६०
१५. सूरत मिश्र	अलकारमाला	स० १७६६
	रसरत्नमाला	स० १७६८
	काव्यसिद्धान्त	स० १७८५
१६ तिलोकराम	रसप्रकास	सं० १७६७
१७ अजीतसिंह	भावविरही	स० १७७०*
१८. बुधसिंह	नेहतरग	स० १७८४
१९. श्री कृष्णभट्ट	शृगाररसमाधुरी	स० १७९९
	अलकार-कलानिधि	स० १७९१
२०. सोमनाथ	रसपीयूषनिधि	सं० १७९४
२१. दलपतिराय-बंसीधर	अलकार-रत्नाकर	स० १७९८
२२. पीथल	जुगल-विलास	सं० १८०० (?)
२३. शिवसहायदास	लोकोक्तिरस-कौमुदी	सं० १८०९
२४. दौलतराय	रसप्रबोध	स० १८२०
२५. हरिचरणदास	कविवल्लभ	सं० १८३९
२६. रामकर्ण	अलंकार-समुच्चय	स० १८५५
२७. उत्तमचंद भडारी	अलकार—आशय	स० १८६०
२८. गणपति भारती	नवरस	स० १८६०

* ये सवत् अनुमानित हैं।

लेखक	ग्रंथ	रचना-काल
	अलकारसुधानिधि	----
२६. उमेदराम	वाणी-भूषण	सं० १८६१
३० पद्माकर	जगतविनोद	स० १८६७
	पद्माभरण	स० १८६७
३१. कृष्णलाल	कृष्णविनोद	स० १८७२
	रसभूषण	स० १८७४
३२. गणेश	रसचन्द्रोदय	सं० १८७५
३३ मडन भट्ट	रसरत्नाकर	स० १८७७
	नवरसरत्नाकर	
	रस-समुद्र	
३४. हरि	रसमंजरी	स० १८८३
३५. ब्रजेन्द्र	रसानद	स० १८६०
३६ उदयचद	रसशृंगार	स० १८६०
	रसनिवास	स० १८६२
३७ चतुरदान	चतुर-रसाल	स० १८६०
३८. चतुर्भुज मिश्र	अलकार-आभा	स० १८६६

इस काल के चरित्र-काव्यो में पृथ्वीराज रासौ मुख्य है जिसका विस्तृत विवेचन गत अध्याय में किया जा चुका है। इसके अनन्तर जितने भी चरित्र-काव्य यहाँ रचे गये है प्राय उन सभी पर पृथ्वीराज रासौ की रचना-शैली का न्यूनाधिक प्रभाव पाया जाता है। कुछ में तो थोडे-बहुत अतर के साथ छद के छद पृथ्वीराज रासौ से उठाकर रख दिये गये है। विशेषकर सेना, युद्धादि के वर्णन में ऐसा बहुत हुआ है। पृथ्वीराज रासौ व इस काल के अन्य कुछ बहुत प्रसिद्ध चरित्र-काव्यो के नाम ये है—

रचयिता	ग्रंथ	रचना-काल
१ चद	पृथ्वीराज रासौ	स० १७००*
२. हरिदास	अमरबत्तीसी	,, १७०१
३. दलपति मिश्र	जसवंत-उद्योत	,, १७०५ (?)

* ये सवत् अनुमानित है।

रचयित्ता	ग्रथ	रचना-काल
४. राम कवि	जयसिहचरित्र	स० १७१०*
५. डूँगरसी	शत्रुसाल रासौ	स० १७१०*
६. जान	कायमरासौ	स० १७११
७. कुँभकर्ण	रतन रासौ	स० १७३२
८ मानजी	राजविलास	स० १७३४
९. दयालदास	राणा रासौ	स० १७३७–५५
१०. हरिनाभ	केसरीसिह-समर	स० १७५४
११. वृन्द	वचनिका	स० १७६२
	सत्यस्वरूप	स० १७६४
१२. जोधराज	हमीर रासौ	स० १७८५
१३. नंदराम	जगविलास	स० १८०२
१४. सूदन	सुजानचरित्र	स० १८२५*

यहाँ पर यह उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि उपरोक्त साहित्य-रीति-काव्य और चरित्र-काव्य—इस काल में रचा अवश्य गया है और यह इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का द्योतक भी है, पर यह इस युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करनेवाला साहित्य नहीं है। क्योकि यह जनसाधारण का साहित्य नही है, न यह जनसाधारण की दृष्टि से लिखा गया है। यह केवल श्रृंगारी कवियो तथा उनके आश्रयदाता राजा-महाराजाओ की भाव-भावनाओं को व्यक्त करता है जिनके मनोरजनार्थ इसकी रचना हुई है। रीति-काव्यो की सृष्टि उनकी मानसिक काम-वासना की तृप्ति के लिये की गई है और चरित्र-काव्यो की उनकी यश-लिप्सा की शान्ति के लिये और इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये रीति काव्यो में बहुधा राधा-कृष्ण की भक्ति को बहाना बनाया गया है और चरित्रकाव्यो में इतिहास को। परन्तु दोनो के मूल मे मनोवृति वही एक काम कर रही है। और वह है राजा-महाराजाओ की सतुष्टि।

आगे इस काल के कवियो का विवरण दिया जाता है जिसमे सर्वप्रथम मुसलमान कवि जान सामने आते है।

(२०) जान कवि—जयपुर राज्य के सुप्रसिद्ध करद संस्थान सीकर के इलाके में परगना फतहपुर है। वहाँ वर्तमान शेखावत राजवंश से पहले कायम-

* ये सवत् अनुमानित है।

खानी नवाबो का शासन था। कायमखानी वश का मूल पुरुष चौहाण करमसी था जिसको फिरोजशाह तुगलक के पदाधिकारी और हिसार के सेनापति सैयद नासिर ने स० १४४० में मुसलमान बनाया और उसका नाम बदलकर कायमखा रखा। वही कायमखाँ कायमखानी वश का मूल पुरुष हुआ और उसके वंशधर कायमखानी (क्यामखानी) कहलाने लगे।[1]

सैयद नासिर की मृत्यु के उपरात कायमखाँ उसकी जगह नियुक्त हुआ और हिसार उसको जागीर मे मिला। कायमखाँ बडा वीर और महत्त्वाकाक्षी पुरुष था। उसने अपना प्रभाव इतना बढा लिया कि बादशाह खिजरखाँ उससे डरने लगा और भयभीत होकर उसने उसे दिल्ली के किले पर से जमुना मे गिरवा दिया और उसके पुत्र मुहम्मदखाँ तथा ताजखाँ को हिसार से निकाल बाहर किया। दोनो भाई कुछ वर्षों तक जैसलमेर और नागौर में रहे। बाद में वापस हिसार पहुँच गये और दोनो के लिये पृथक्-पृथक् दो रियासते—झूँझणू और फतहपुर—कायम हुईं। मुहम्मदखाँ के पुत्र नबाब शमसखाँ ने झूँझणू बसाया और ताजखाँ के पुत्र नबाब फतहखाँ ने फतहपुर।

फतहखाँ फतहपुर का पहला नबाब था। इससे आठवीं पीढ़ी मे न्यामतखाँ हुए जो कविता में अपना नाम जान लिखा करते थे। वंश-वृक्ष इस प्रकार है:—

फतहखाँ
|
जलालखाँ
|
दौलतखाँ
|
नाहरखाँ
|
फदनखाँ
|
ताजखाँ
|
अलफखाँ
|
न्यामतखाँ (जान कवि)

जान कवि के जन्म और मृत्यु संवत् का ठीक-ठीक पता नही है। परन्तु अपने ग्रंथों में इन्होने उनका लेखन-समय दिया है जिससे इनका रचना-काल स० ~~१६७१~~-१७२१ निश्चित होता है।

ये संस्कृत, अरबी, फारसी, पिंगल आदि कई भाषाओं के अच्छे जानकार और आशु कवि थे। इन्होने कुल ७५ ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये है:—

(१) मदनविनोद (२) ज्ञानदीप (३) रसमंजरी (४) अलफखाँ की

---

1. मुहणोत नैणसी की ख्यात, पृ० १९६

पेडी (५) कायमरासौ (६) पुहुपबरखा (७) कवलावती कथा (८) बरवा ग्रथ (९) छंविसागर (१०) कलावती कथा (११) छीता की कथा (१२) रूपमंजरी (१३) मोहनी (१४) चन्द्रसेन राजा सीलनिधान की कथा (१५) अरदेसर पातिसाह की कथा (१६) कामरानी या पीतमदास की कथा (१७) पाहन परिच्छा (१८) शृंगारशतक (१९) भावशतक (२०) विरहशतक (२१) बलूकिया विरही की कथा (२२) तमीम अनसारी की कथा (२३) कथा कलंदर की (२४) कथा निर्मल की (२५) सतवती की कथा (२६) शील-वती की कथा (२७) कुलवती की कथा (२८) खिजरखाँ साहिजादा व देवल देवी (२९) कनकावती की कथा (३०) कौतूहली की कथा (३१) कथा सुभटराय की (३२) बुधिसागर (३३) कामलता कथा (३४) चेतननामा (३५) सिख ग्रंथ (३६) सुधासिख ग्रंथ (३७) बुधिदायक (३८) बुधिदीप (३९) घूँघटनामा (४०) दरसनामा (४१) अलकनामा (४२) दरसननामा (४३) बारहमासा (४४) सतनामा (४५) वर्ननामा (४६) बाँदीनामा (४७) बाजनामा (४८) कबूतरनामा (४९) गूढ ग्रथ (५०) देसावली (५१) रस-कोष (५२) उत्तम सब्द (५३) सिख्यासागर (५४) वैद्यक सिख शतपद (५५) शृंगारतिलक (५६) प्रेमसागर (५७) वियोगसागर (५८) षट्ऋतु पवंगम छंद (५९) रसतरंगिनी (६०) रतनमंजरी (६१) नल-दयमयंती (६२) पैमुनामा (६३) मानविनोद (६४) बिरही को मनोरथ (६५) जफरनामा (६६) पदनामा (६७) भावकल्लोल (६८) कंदर्पकल्लोल (६९) नाममाला अनेकार्थी (७०) रतनावती (७१) सुधासागर (७२) स्वाससंग्रह (७३) लैला-मजनू (७४) कविवल्लभ और (७५) वैदकमति । (७८)

जैसा कि उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है जान कवि ने प्रेमाख्यान अधिक लिखे हैं । अतएव इनकी रचना में शृंगार रस का प्राधान्य है । बहुत ऊँची काव्य-प्रतिभा इनमें दिखाई नहीं देती । परन्तु वर्णन की स्वाभाविकता तथा सजीवता और कथा-प्रवाह की धारावाहिकता द्वारा पाठक का ध्यान इधर-उधर न भटकने देने की जो कला-क्षमता एक कुशल कहानीकार में होनी चाहिये वह इनमें पूरी-पूरी विद्यमान थी और इस दृष्टि से इनके प्रेमाख्यानों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है ।

इसके अतिरिक्त इनकी भाषा भी देखने योग्य है । वह व्यवस्थित है और विषयानुकूल भी । सरल तो वह इतनी है कि उसे समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती । साधारण पढ़ा-लिखा पाठक भी उसे आसानी से समझ लेता है । उदाहरण—

पदमिन कहै कहा भयौ भेद। नैन सजल तन आवत स्वेद ॥
रतन कह्यौ मो सीस पिरात। प्रगट न करत पैमु की बात ॥
पदमनि कह्यौ सुनहु रतनावति। जौलौ मेरी पीरि न पावति ॥
तौलौ तेरी पीरि न जाइ। मेरी पीरि चढी सिर आइ॥
रतन कह्यौ सुनि पदमनि रानी। हौ तो मोहन हाथ बिकानी ॥
तै मुहि दीनौ कुवर दिखाइ। किधौ दई तै चेटक लाइ ॥
पदमनि कौ भाये ये बैन। कह्यौ चलहु देखहु भरि नैन ॥
रतन कह्यौ अछिरा सब जागै। चल्यौ न जै देखन इन आगै ॥
अरध निसा अछिरा गई सोइ। पदमनि रतन चली ये दोइ ॥
आगै बैठो हौ यहि मोहन। लग्यौ दूरहू तै अति सोहन॥

(२१) जसवंतसिंह—जोधपुर नगरके बसानेवाले राठौड़ राव जोधाजी से दसवीं पीढ़ी में राजा गर्जसिंह हुए जिनके दो पुत्र थे, अमरसिंह और जसवंतसिंह। अमरसिंह को राजा गर्जसिंह ने देश निकाला दे दिया था[2] इसलिये उनके बाद जसवंतसिंह जोधपुर के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनका जन्म स० १६८३ में हुआ था और राज्याभिषेक स० १६९५ में। राजगद्दी पर बैठने के समय इनकी आयु केवल १२ वर्ष की थी। इसलिये मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने इनके राज्य की देखभाल करने के लिए आसोप के ठाकुर राजसिंह कूँपावत को नियुक्त किया क्योकि जोधपुर राज्य उन दिनो मुगल साम्राज्य के अधीन था।

सं० १७१४ में मुग़ल सिंहासन को प्राप्त करने के लिये जब शाहजहाँ के पुत्रों में झगड़ा हुआ तब जसवंतसिंह ने दारा का पक्ष लिया था। इसलिए औरंगजेब इनसे बहुत कुढ़ता था। इनका बिगाड तो वह कुछ न सका पर अपने राज्य से दूर रखने के लिये उसने इनको काबुल का गवर्नर बनाकर उधर भेज दिया। वहीं स० १७३५ मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी मृत्यु का समाचार जब औरंगजेब के पास दिल्ली पहुँचा तब उसके आनन्द का पारावार न रहा और हर्ष से उछलकर उसने कहा—-'दर्वाजए कुफ़्र शिकस्त' अर्थात् आज धर्म-विरोध का दरवाजा टूट गया।

---

2. श्रीगजसिंघ नरिंद के, अगनित महल समाजु।
पटरानी रुकमावती, जिहि जनम्यौ जसराजु ॥
सोनिगरी उर औतरयौ, महाराउ अमरेसु।
आपु जीय गजसिघ नृप, जा कहँ दयौ विदेसु ॥
—जसवत-उद्योत, पद्य ५१४–५१५

महाराजा जसवंतसिंह बड़े वीर, देशाभिमानी और नीति-निपुण नरेश थे। ये हिंदूधर्म के बड़े पक्षपाती और उन्नायक थे। जब तक ये जीवित रहे इन्होंने औरंगजेब को हिंदुओ पर जजिया नहीं लगाने दिया और बराबर उसका विरोध करते रहे। परन्तु इनके मरते ही उसने जजिया प्रचलित कर दिया[3] और हिंदुओ को नाना प्रकार की यातनाएँ देने लगा।

महाराजा का साहित्यिक जीवन उनके राजनीतिक जीवन से किसी अंश में कम महत्वपूर्ण न था। ये जैसे वीर थे, वैसे कवि भी थे और कवियों आदि का बडा मान करते थे। एक बार लाहौर में उपस्थित १४ कवियो में से प्रत्येक को इन्होंने डेढ-डेढ़ हजार रुपया एक ही दिन में दान दिया था।[4] इनका मत्री मुहणोत नैणसी इतिहास का भारी पंडित था। उसका रचा हुआ 'नैणसी री ख्यात' नामक ग्रथ इतिहास की एक अमूल्य निधि है। इनके आश्रित दलपति कवि ने 'जसवंत-उद्योत' नामक एक ऐतिहासिक काव्य लिखा था जिसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में जसवंतसिंह का एक विशिष्ट स्थान है जिसका कारण इनका 'भाषाभूषण' ग्रथ है। इसकी रचना संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध आचार्य जयदेव कृत चन्द्रालोक और अप्पय दीक्षित कृत कुवलयानंद की पद्धति और आधार पर हुई है। इसमें २१० दोहे हैं। आदि के ४२ दोहों में मंगलाचरण के बाद संक्षेप में नायक-नायिका-भेद तथा रसांगों का परिचय कराया गया है। तदंतर अलंकारो का वर्णन प्रारंभ होता है। 'भाषाभूषण' की सबसे बडी विशेषता है वर्णन की सक्षिप्तता। एक ही दोहे मे लक्षण और उदाहरण दोनो दिये गये है। इससे विषय बहुत सरल हो गया ह और उसे कठाग्र करने में विशेष कठिनाई नही होती। इसमें सदेह नही कि यह ग्रंथ उल्लिखित सस्कृत ग्रंथों की छाया पर रचा गया है पर साथ ही इसमें मौलिकता का सर्वथा अभाव भी नही है, बल्कि कुछ अलंकार तो इसमें ऐसे है जिनके लक्षण-उदाहरण चन्द्रालोक से बहुत भिन्न है। उदाहरण के लिए असंगति अलंकार को लीजिए। चद्रालोक में इसका लक्षण-उदाहरण इस प्रकार दिया गया है —

आख्याते भिन्नदेशत्वे कार्यं हेत्वो रसगतिः।
त्वद्‌भक्ताना नतत्व ङ्ग भ ङ्गमेति भवक्लम।

3. वी० ए० स्मिथ, ऑक्सफार्ड हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृ० ४३८

4 विश्वेश्वरनाथ रेउ, मारवाड का इतिहास, पृ० २४३

परंतु भाषाभूषण में इसकी व्याख्या इस भाँति की गई है—.

औरे काज आरभिए, औरे करिए दौर ।
कोयल मदमाती भई, झूलत अबा मौर ।।

'भाषाभूषण' के सबन्ध में थोडासा मत-भेद है । डा० ग्रियर्सन का कहना है कि यह ग्रंथ जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह का नही, बल्कि तेरवाँ के बघेला राजा जसवतसिह का बनाया हुआ है ।[5] परन्तु उनका यह कथन अनुचित है । बघेला राजा जसवतसिह का रचना-काल सं० १८५६ माना गया है ।[6] लेकिन 'भाषाभूषण' की रचना इससे भी बहुत पहले हो चुकी थी जैसा कि दलपतिराय और बंसीधर के 'अलंकार-रत्नाकर' से स्पष्ट है । 'अलकार-रत्नाकर' भाषाभूषण की टीका है । यह सं० १७९८ में लिखी गई थी ।

इसके अतिरिक्त 'भाषाभूषण' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी अनेक मिलती है जिनमें कुछ स० १८५६ के पहले की भी है । इनकी पुष्पिकाओ मे 'राठौर जसवतसिह' साफ लिखा हुआ है । उदाहरण स्वरूप सं० १७९५ की लिखी हुई एक प्रति की पुष्पिका के आवश्यक अंश को हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"इति श्रीमन्महाराजाधिराज राठौर वसावतस जसवतसिह विरचितायाँ भाषाभूषण ग्रथ सपूर्ण ।"[7]

कहने का अभिप्राय यह कि 'भाषाभूषण' ग्रथ वास्तव में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिह ही का रचा हुआ है और डा० ग्रियर्सन ने इस संबन्ध में जो शंका उठाई है वह निर्मूल है ।

भाषाभूषण के सिवाय महाराजा जसवंतसिह के कुछ ग्रंथ और भी मिलते है जिनके नाम ये हैं—

(१) सिद्धातबोध (२) सिद्धातसार (३) अनुभवप्रकाश (४) अपरोक्ष सिद्धात (५) आनन्दविलास (६) चन्द्रप्रबोध (नाटक) और (७) पूली-जसवत सवाद ।

परन्तु ये ग्रंथ वेदान्त विष्यक है । इनका साहित्यिक मूल्य प्रायः नगण्य है ।

---

5. दि मॉडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० १००
6. मिश्रबधु-विनोद, पृ० ८४२ (द्वितीय भाग)
7. स० भ० उ० की हस्तलिखित प्रति, पृ० ९

इनके एक और ग्रथ का पता हाल ही में लगा है। इसका नाम 'इच्छा विवेक' है।[8] यह भी वेदान्त का ग्रथ है।

(२२) बिहारी—कविवर बिहारीलाल धौम्य गोत्री सोती घरबारी माथुर चौबे थे और ग्वालियर में पैदा हुए थे। 'बिहारी-बिहार' के अनुसार इनका जन्म स० १६५२ मे हुआ था[9]—

सवत जुग सर रस सहित, भूमि रीति जिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुध अष्टमी जन्म हमहि विधि दीन्ह।।

इनकी बाल्यावस्था बुदेलखण्ड में व्यतीत हुई थी और तरुणावस्था मे ये अपनी ससुराल मथुरा में रहे थे। ये आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह (सं० १६६८-१७२४) के आश्रित थे। इनका देहान्त सं० १७२१ के लगभग हुआ था।[10]

बिहारीलाल के पिता का नाम अज्ञात है। इनकी 'सतसई' में एक स्थान पर 'केशवराय' शब्द आया है—

जनम लियो द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब, केसव केसवराय।।

इसके आधार पर हिंदी के कुछ साहित्यान्वेषकों ने हिंदी के सुविख्यात ग्रंथ 'रामचन्द्रिका' के कर्त्ता महाकवि केशवदास को इनका पिता माना है। इसमें संदेह नहीं कि केशवदास ने अपनी कुछ रचनाओ में अपना नाम 'केशव दास' और 'केशवराय' दोनो लिखा है। जैसे—

(१) (क) बाँधिबे के नाउ ताल बाँधियत **केसौदास**,
मारिबे के नाउ नौ दलिद्र मारियत है।
—विज्ञानगीता[11]

(ख) काम क्रोध लोभ मोह दभादिक **केसौराइ**
पाखडु अखड झूठ जीतिबे के रुचि जाहि
पाप के प्रताप ताके **केसौराइ** भोग जोग
सोध्यौ चाहै आधि व्याधि भावना असेस दाहि।।

---

8. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, प्रथम भाग, पृ० १२
9. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अक २, पृ० १२६–१३०
10. वही, पृ० १५३।
11. स. भं. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

जीत्यौ चाहै इन्द्रीगनु भाति भाति नाया मनु
लौपि कै अनेक भाव देख्यौ चाहै एकताहि।
जीत्यौ चाहै काल इहि देह रच्यौ चाहै गेह
सोई तौ सुनावै सुनै ज्ञान गीतिकाहि॥

—विज्ञानगीता[12]

(२) (क) एक थल थिति पै बसत जग जन जीय
द्विकर पै देस देस कर कौ धरतु है।
त्रिगुन बलित बडु बलित ललित गुन
गुननि के गुन तरु फलित करतु है॥
चारि ही पदारथ कौ लोभु **केसौदास** जिहि
दीबे पदारथ समूह को भरतु है।
साहिन कौ साहि जहाँगीर साहि आहि पच
भूत की प्रभूत भवभूत कौ सरतु है॥

—जहाँगीरचद्रिका[13]

(ख) जहाँगीर जू जगतपति, दे सिगरो सुख साजु।
केसवराइ जहाँनु में, कियो राय तैं राजु॥

—जहाँगीरचद्रिका[14]

परन्तु ये 'केसवदास' अथवा 'केसवराय' बिहारी के पिता थे ऐसा मानने के लिये कोई दृढ़ आधार नहीं है। बिहारीलाल जाति के माथुर चौबे थे यह निर्विवाद है। और केशवदास जाति के सनाढच ब्राह्मण थे, जैसा कि वे स्वयं लिख रहे है—

(१) **सनाढ्य जाति** गुनाढ्य है, जगसिद्ध सुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध है महि, मिश्र पंडितराव॥
गणेश सो सुत पाइयो, बुध काशीनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै, जिन जानियौ मत साध॥

---

12. वही, पत्र २
13. स. भ. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र २१२
14 वही; पत्र २२१

उपज्यो तेहि कुल मदमति, शठ कवि केशवदास ।
रामचद्र की चद्रिका, भाषा करी प्रकास ।।
—रामचद्रिका[15]

(२) तहाँ प्रकास सौ निवास मिश्र कृष्णदत्त कौ ।
असेस पडिता गुनी सुदासु विप्र भक्त्त कौ ।।
सुकासिनाथ तस्य पुत्र विग्य कासिनाथसौ
सनाढ्य कुभकार बसु असु वेदव्यासकौ
*   *   *

तिनकै केसवराय सुतु, भापा कवि मतिमदु ।
करी ग्यानगीता प्रगट, श्रीपरमानदु कदु ।।
—विज्ञानगीता[16]

ऐसी स्थिति मे केशव-बिहारी का पिता-पुत्र का सबन्ध स्थापित करना असगत है ।

कुछ विद्वानो का अनुमान है कि 'सतसई' के उक्त दोहे मे बिहारी-लाल ने 'केशवराय' नाम का जो प्रयोग किया है वह उनके पिता का नाम नही बल्कि उनके गुरु का नाम है । यह अनुमान ठीक मालूम पड़ता है । कवि-परिपाटी के अनुसार बिहारी ने भी अपने आराध्य केशव की वदना के पश्चात् अपने गुरु केशवराय की वदना की है । परंतु ये केशवराय 'रामचद्रिका' के रचयिता महाकवि केशवदास थे अथवा कोई अन्य व्यक्ति इस सबध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है । दोनो ही संभावनाएँ है । महाकवि केशवदास की मृत्यु स० १६७४ के आसपास हुई थी । उस समय बिहारीलाल २२ वर्ष के थे । अतएव बहुत सभव है कि कुछ काल तक केशवदास बिहारीलाल के काव्य-गुर रहे हो । दूसरी सभावना यह है कि केशवराय महाकवि केशवदास से भिन्न कोई दूसरे ही व्यक्ति हो जिन्होने बिहारी को विद्याभ्यास कराया हो । परन्तु इस विषय में अधिक कुछ कहने के लिये प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री की आवश्यकता है जो प्राप्त नहीं है ।[17]

15. पहला प्रकाश, पद्य ४—५

16 स. भ. उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १

17. प. विश्वनाथप्रसाद मिश्र का अनुमान है कि बिहारी के उपर्युक्त दोहे मे 'केसव केसवराय' पद जो आया है वह पूरा का पूरा पद किसी एक व्यक्ति का नाम है और सभवत यही बिहारी के पिता रहे हो । देखिये 'बिहारी की वाग्विभूति', पृ० ६—१० (उपक्रम) ।

अपने जीवनकाल में बिहारी ने केवल एक ही ग्रथ 'बिहारी-सतसई' बनाया जो हिंदी-साहित्य-भंडार का अनमोल रत्न और हिन्दी भाषा-भाषियो के गौरव की वस्तु माना जाता है । यह आमेर के मिर्जा राजा जयसिह की आज्ञा से लिखा गया था --

हुकुम पाइ जयसाहि को, हरि राधिका प्रसाद ।
करी बिहारी सतसई, भरी अनेक सवाद ।।

इसका रचना-काल स० १७०४ के लगभग है ।[18] यह हिंदी की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है । इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से हो सकता ह कि इस पर पचास से अधिक टीकाएँ लिखी जा चुकी है और अभी भी यह क्रम जारी हे ।[19] ये टीकाएँ सस्कृत, हिंदी, राजस्थानी, गद्य, पद्य सभी में है । डा० अमरनाथ झा ने इसके ३०० दोहो का अग्रेजी अनुवाद भी किया है ।

किंतु खेद है कि ऐसे अद्वितीय ग्रथ का वैज्ञानिक ढग से तैयार किया हुआ कोई प्रामाणिक सस्करण अभी तक नही निकला । जितने भी सस्करण अब तक प्रकाशित हुए है उनमे स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का 'बिहारी-रत्नाकर' सर्वश्रेष्ठ माना गया है । यह सस्करण वास्तव में बहुत उत्तम कोटि का है और इसके पाठ-निर्णय, पाठ-सशोधन इत्यादि पर यथेष्ट श्रम किया गया है जो रत्नाकरजी जैसे विद्वान, ब्रजभाषा-पटु और काव्य-मर्मज्ञ ही का काम है । परन्तु इसमें भी दो-एक दोष आ गये है । एक तो यह कि इसकी भाषा को रत्नाकरजी ने इतना माँज दिया है कि वह बिहारी की भाषा न रहकर एक तरह से रत्नाकरजी की भाषा हो गई है । अतः व भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह संस्करण विशेष उपयोगी नही है ।

दूसरे, जिन पाँच हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर 'बिहारी-रत्नाकर' का सपादन किया गया है वे न बहुत प्राचीन है, न प्रामाणिक । सबसे प्राचीन प्रति जो रत्नाकरजी को मिली वह सं० १७७२ की थी[20] । जिन

18. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ८, अक२२, पृ० १५१

19 स्वर्गीय रत्नाकरजी ने नागरीप्रचारिणी-पत्रिका मे 'बिहारी-सतसई' की ५० टीकाओ का उल्लेख किया है । इनके अतिरिक्त श्रीकृष्ण भट्ट, उमेदराम तथा परमानद नामक तीन और कवियो की टीकाओ का पता लगा है। इनमे से प्रथम दो कवियो की टीकाएँ हिंदी मे और तीसरे की सस्कृत मे है ।

20. बिहारी–रत्नाकर, पृ० २३ (भूमिका)

दो प्रतियो को उन्होने सं० १७७२ के पूर्व की बतलाया है वे सदिग्ध हैं।[21] क्योकि उनका लेखन-काल कुछ सुनी-सुनाई बातो तथा अनुमान के आधार पर स्थिर किया गया है । परन्तु 'बिहारी-सतसई' की कुछ ऐसी प्रतियाँ हमारे देखने में आई है जो काफी पुरानी होने के साथ साथ विश्वास योग्य भी है । एक प्रति बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में वर्तमान है जो अब तक की प्राप्त प्रतियो में सबसे प्राचीन है । इसका लेखन-काल स० १७२४ हैं ।[22] दूसरी प्रति उदयपुर के सरस्वती भडार में है । यह स० १७४३ में लिपिबद्ध हुई थी ।[23] ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रतियो का उपयोग न हो सकने के कारण रत्नाकरजी का सस्करण पूर्ण और प्रामाणिक होने से वंचित रह गया है । और तो और, बिहारी के सभी दोहे ही उसमें सकलित नही हो पाये है । उदाहरण के लिए बिहारी के पॉच दोहे हम नीचे उद्धृत करते है । ये उदयपुरवाली उल्लिखित प्रति में पाये जाते है पर 'बिहारी-रत्नाकर' में नही आये है :—

अनब्याही हौसे मरै, ब्याही लेहिँ उसास।
गौने की मौने रही, देखि राम मृदु हास ।।
यह छिन सत-नगु राखि कै, जगत बडौ जसु लेहु ।
जरी बीषम जुर ज्याइयै, आइ सु दरसन देहु ।।
हरि मुँह फेरि कि हेरि इत, हित चिनि समुहो नारि ।
डीठि परस उठि पीठि कै, पुलकै कहै पुकारि ।।
चारौ बलि तो दृगनि पर, अलि खजन मृग मीन।
आधी दीठि चितौनि जिहि, कियै लाल आधीन ।।
जो जिय जैहै जाउ, काम न मेरे है कछू।
इतीक लौ ठहराउ, पिय हिय सुख दुख की सुनहु ।।

उपर्युक्त दो प्रतियो के अतिरिक्त 'बिहारी-सतसई' की सैकडो प्रतियाँ और भी राजस्थान में इधर-उधर देखने को मिलती है । यहाँ के राजकीय

21. वही, पृ० २०–२३

22. "सवत् १७२४ विर्षे कृष्ण पषे ११। गुरुवार। बीकानेर मध्ये। श्री प० श्री श्रीआणदजी सिष। खेमराज। लिखत वाचनारथँ । श्री। शुभ भवतु।"

23. राजस्थान मे हिदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, प्रथम भाग, पृ० ७३।

पुस्तकालयों, जैन-भाँडारो आदि में कदाचित ही कोई ऐसा देखने में आवे जहाँ इसकी दो-चार प्रतियाँ सुरक्षित न हो। इन प्रतियो में कुछ चित्रित[24] तथा कुछ सादी है और कुछ पर्याप्त प्रामाणिक भी है। इन सबको एकत्र कर इनके आधार पर 'बिहारी-सतसई' का एक नवीन संस्करण निकालने की बडी आवश्यकता है जैसा कि भडारकर ओरियंटल रिसर्च इस्टीटयूट, पूना, ने महाभारत का और भारतीय विद्याभवन. बम्बई, ने भर्तृहरि-शतक का निकाला है। यह कार्य व्यय-साध्य और कठिन अवश्य है पर उतना ही आवश्यक भी है।

बिहारीलाल ने कुल दोहे कितने लिखे थे इसका ठीक ठीक पता नही लगता। 'बिहारी-सतसई' की जो अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियाँ देखने में आती है उनमें ७०१ से लेकर ७५३ तक दोहे मिलते है। उक्त बीकानेर वाली प्रति में ७२६ और उदयपुरवाली प्रति में ७२१ दोहे है। चन्द्रमणि उपनाम कोविद कवि, जैन टीकाकार मानसिंह और प्रेम कवि ने 'बिहारी-सतसई' के दोहो की संख्या क्रमश· ७००,[25] ७१३[26] और ७५०[27] बतलाई है। स्वर्गीय रत्नाकरजी ने इनमें से मानसिंह की संख्या को ठीक माना है जिसका कारण उन्होने यह बताया है कि यह टीका सं० १७३४ से पूर्व अर्थात् बिहारी के जीवन-काल में रची गई थी।[28] इसी आधार पर उन्होने अपने 'बिहारी-रत्नाकर' में ७१३ दोहे रखे है। परन्तु यहाँ उनसे भूल हुई है। इस भूल का कारण यह है कि उन्होने 'राजविलास' के कर्त्ता मानसिह और 'बिहारी-सतसई की टीका' के रचयिता मानसिह इन दोनो को एक व्यक्ति मान लिया है और 'राजविलास' का जो रचनाकाल (स० १७३४) है लगभग वही 'बिहारी-सतसई' की टीका का भी स्थिर किया है। परन्तु असल में ये दो भिन्न व्यक्ति है जैसा कि मिश्रबन्धु-विनोद से पाया जाता है।[29] इनका रचनाकाल क्रमशः सं० १७३४ और सं० १७७० है। इस विषय में अधिक विस्तारपूर्वक यथास्थान आगे लिखा जायगा। अतएव मान-

---

24. ए कैटेलॉग ऑव मैनुस्क्रिपट्स इन दि लाइब्रेरी ऑव हिज हाईनेस दि महाराना ऑव उदयपुर, पृ० २३८
25. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, अक १, पृ० ७१
26. वही, पृ० ६६
27. वही; पृ० ८५
28. नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ६, अक १, पृ० १०१–१०३
29. वही; पृ० ४६२ और ४७२

मिह की जिस टीका को रत्नाकरजी ने बिहारी के जीवन-समय की लिखी हुई तथा प्रामाणिक कहा है वह बिहारी की मृत्यु से लगभग पचास वर्ष बाद की लिखी हुई है और उतनी प्रामाणिक नही है जितना कि उसे माना गया है ।

अत जहाँ तक दोहो की सख्या का प्रश्न है हमारी समति मे बीकानेरवाली उल्लिखित प्रति को आदर्श मानना उचित होगा । क्योकि यह प्रति बिहारीलाल की मृत्यु से केवल तीन-चार वर्ष बाद की लिखी हुई है और अब तक की प्राप्त प्रतियो में सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक है । यदि इस आधार को स्वीकार किया जाय तो फिर बिहारी के दोहो की सख्या ७३० के लगभग निश्चित होती है ।

बिहारीलाल जन्मसिद्ध कवि थे । ब्रजभाषा पर इनका असाधारण अधिकार था । इन दोनो गुणो का पूर्णोत्कर्ष इनकी सतसई मे देखने को मिलता है । इनकी भाषा बहुत प्रौढ और वाक्य-रचना बहुत गठी हुई है । उसमें एक भी शब्द कही भरती का नहीं पाया जाता । प्रत्येक शब्द किसी विशेष अभिप्राय से व्यवहृत हुआ है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है । इनकी भाषा मे अर्बी, फारसी, आदि विदेशी भाषाओ तथा पूर्वी, बुदेलखडी और खडी बोली के शब्द एव प्रयोग भी मिलते है । कही-कही राजस्थानी का भी रग दिखाई देता है । जैसे—

"पटु पाँखै भखु **काँकरे**, सपर परेई सग" ।[30]
"मरुधर पाय **मतीरहीं, मारू** कहत पयोधि" ।[31]
"नहिँ जानत इहिँ पुर बसै धोबी **औड़** कुँभार" ।[32]
"**गाहिली** गरबु न कीजियै, समै-सुहागहिँ पाय" ।[33]
"**थाकी** जतन अनेक करि, नैक न छाडति गैल" ।[34]
"तौ **ग्वैंड़ौ** घर कौ भयौ पैडौ कोस हजार" ।[35]

बिहारी की कविता में शृगार रस का प्राधान्य है और उसमें दो गुणो की मुख्यता है । वे दो गुण है, भाव की गभीरता और वर्णन की सक्षिप्तता । दोहा जैसे छोटे छंद में जो विपुल भाव इन्होने भरा है वह वास्तव में अद्भुत है । इन्हीं दो विशेषताओ को लक्ष्य में रखकर किसी कवि ने यह दोहा कहा है—

---

30 बिहारी-रत्नाकर, पृ २५६
31. वही, पृ० १५१
32. वही, पृ० १८०
33. वही, पृ० १३१
34. वही; पृ० ५६
35. वही, पृ० ६४

मनसैया के दोहरा, ज्यौ नावक के तीर।
देखन मे छोटे लगै, घाव करै गभीर।।

बिहारीलाल बडे सूक्ष्मदर्शी कवि थे । इनकी दृष्टि बडी पैनी थी । मानव-प्रकृति का इनको गहरा ज्ञान था जिसका निदर्शन सतसई में स्थाल-स्थान पर मिलता है । विशेषकर नायक-नायिकाओ के मनोभावो का जैसा चित्रोपम वर्णन बिहारी ने किया है वैसा हिदी का दूसरा कोई कवि नही कर सका । इस विद्या में अग्रेज कवि शेक्सपियर बहुत निपुण माने गये है । अत उनकी तुलना मे बिहारी का काव्य-कौशल देखिए ।

रोजेलिड की सखी सीलिया उसके प्रेमी ऑरलेडो से मिलकर वापस आती है । उस समय प्रिय-सदेश के सुनने मे आतुर रोजेलिड पागल-सी हो जाती है और सीलिया से कहती है कि यदि ऑरलेडो से मिलने के सब समाचार उसने शीघ्र न कहे तो वह उससे इतने प्रश्न करेगी कि जिनसे सारा उत्तरी सागर भर जायगा । पर उसकी आतुरता को बढाने के लिये सीलिया फिर भी मौन ही रहती है । इस पर रोजेलिड प्रश्नो की झड़ी लगा देती हैं । वह पूछती है—

What did he when thou saw'st him ? What said he ? Wherein went he ? What makes he here ? Did he ask for me ? Where remains he ? How parted he with thee ? And when shalt thou see him again ? Answer me in one word "[36]

ऐसी ही दुविधावस्था में बिहारी की नायिका भी है । नायिका, राधा, की सहेली श्रीकृष्ण से मिलकर घर आती है । इस पर बिहारीलाल लिखते है —

फिरि फिरि बूझनि कहि कहा, कह्यौ साँवरे गात ।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यो बात ।।

प्रसग दोनो का एक है । बिहारी के समान शेक्सपियर ने भी स्त्री-हृदय के उस स्थल पर हाथ डाला है जो सबसे निर्बल है । पर जिस समय शेक्सपियर रोजेलिड के मुँह से प्रश्न करवाते है उनकी कल्पना-शक्ति कुठित हो जाती है और उनके मस्तिष्क से कुछ ऐसे प्रश्न निकलते है जिनमें रस, चमत्कार, विदग्धता इत्यादि कुछ नहीं है । वस्तुत. शेक्सपियर के ये प्रश्न परीक्षा-पत्रो में दिये हुए प्रश्नो के सदृश जटिल और शुष्क प्रतीत होते है ।

36. एज़ यू लाइक इट, अक ३, दृश्य २

इसके विपरीत बिहारीलाल नारी-हृदय को टटोलकर बाहर निकल आते हैं और सारी बात को बड़े हृदयग्राही ढग से प्रस्तुत करते हैं जिसमे व्यग्य हैं, व्यजना हैं और हैं मार्मिक भाव। नि'सदेह अंग्रेज कवि के प्रश्न सख्या में अधिक हैं पर सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न को तो वे भूल ही गये हैं जिसका उल्लेख बिहारी ने अपने दोहे के अन्तिम चरण में किया है—'अली चली क्यो बात।' हे सखी! मेरी बात चली कैसे? मेरा प्रसंग आया क्यो? सच पूछिये तो यही कवि-हृदय की मार्मिक अनुभूति है। काव्य-कौशल की अतिम सीमा है।

बिहारी ने प्रेमभरी चेष्टाओं एव प्रेमोन्माद के भी अनेक चित्र अकित किए हैं जो एक से एक बढ़कर सुन्दर है और ऐसे है कि उनके जोड़ के हिंदी-साहित्य में अन्य नहीं मिलते—

छला छबीले लाल कौ, नवल नेह लहि नारि।
चूँबति चाहति लाइ उर, पहिरति धरति उतारि॥
उडति गुडी लखि ललन की, अँगना अँगना माँह।
बौरी लौ दौरी फिरति, छुवति छबीली छाँह॥
भेटत बनै न भावतौ, चितु तरसतु अति प्यार।
धरति लगाइ लगाइ उर, भूषन बसन हथ्यार॥
कर लै चूमि चढाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि॥

बिहारी की कविता का भाव-पक्ष जितना पुष्ट है उतना ही पुष्ट उसका कला-पक्ष भी है। काव्य-रीति का कोई ऐसा अंग नहीं जिसकी विशेषताएँ बिहारी की कविता में न मिलें। कहीं-कहीं तो एक ही दोहे में रस की मधुर व्यंजना, अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग और शब्दो का मधुर विन्यास साथ-साथ देखने को मिलता है—

जुरे दुहुनु के दृग झमकि, रुके न झीने चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौ, परै गोल पर भीर॥
लाज-लगाम न मानही, नैना मो बस नाहिँ।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यौ, ऐचत हूँ चलि जाहिँ॥

बिहारी-सतसई के अतिरिक्त बिहारी के रचे कुछ फुटकर कवित्त भी मिले है जो ब्रजभाषा में है।[37] परन्तु इनमें चमत्कार विशेष नहीं है।

37. राजस्थानी भाषा और साहित्य. पृ० १५०–१५१

(२३) **डूँगरसी**—ये बूदी-निवासी जाति के राव थे । इनका रचना-काल अनुमानतः स० १७१० है । ये बूदी के रावराजा शत्रुसाल के आश्रित थे जिन्होने इनको नैणवा नामक एक गॉव जागीर में दिया था ।[38] वह गॉव अभी तक इनके वशवालो के अधिकार में है । इन्होने 'शत्रुसाल रासौ' नामक एक ग्रथ बनाया जिसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता के 'सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय' में उपलब्ध है । यह फुलस्कैप साइज के ११८ पृष्ठो का एक बडा ग्रथ है । इसमें बूदी के रावराजा शत्रुसाल (छत्रसाल) का जीवन-चरित्र वर्णित है जिनकी वीरता-वदान्यता का बखान कवि भूषण[39], मतिराम तथा लाल[40] ने भी अपने ग्रथो में किया है ।

रावराजा शत्रसाल गोपीनाथ के पुत्र और रत्नसिह के पौत्र थे । ये सं० १६८८ में बूदी के राजसिहासन पर बैठे थे ।[41] उस समय इनकी आयु २५ वर्ष के लगभग थी । ये मुगल साम्राज्य के प्रधान स्तभो मे से थे और शाहजहॉ के समय मे एक स्वतन्त्र सूबे के अधिकारी थे । दक्षिण के सूबे में शाहजादे औरगजेब के अधिकार में जितने युद्ध हुए उनमें इन्होने असाधारण वीरता प्रदर्शित कर दौलताबाद, बीदर आदि पर बादशाह का अधिकार करा दिया था । जिस समय धौलपुर में चबल नदी के किनारे दिल्ली के राजसिहासन के लिये औरगजेब की दारा से लड़ाई हुई इन्होने दारा की सेना को निर्बल और औरगजेब का प्रपच सबल देखकर भी शाहजहॉ की आज्ञा से दारा का साथ दिया था । केवल साथ ही नहीं दिया, बल्कि दारा जब रणक्षेत्र से

---

38 डूगर कियो है डूगरचौ, मॉमत राव सत्ते ।
हाथी दियो रग बावळौ, नैणा गॉंव पट्टे ॥

—प्राचीन पद्य

39 "हाथी तै उतरि हाडा जूझो लोह लगर दै, एती लाज का मे जेती लाज छत्रसाल मे । तन तरवारिन मे मन परमेश्वर मे, प्रान स्वामि कारज मे माथो हरमाल मे ॥"

—छत्रसाल दशक

40. "गोपीनाथ नंद चित चाही बकसीसन सौ, जाचक धनेस कीन्हे सकल जहान मे । ज्ञान मे दिवान शत्रुसाल सुरगुरु साहिबी में सुरपति सुरतरु वरदान मे ॥"

—ललितललाम

41. "दारा सार बाजत रन छाज्यौ, जवन पातसाही को भाज्यौ ।
हाडा सार धार मे पैठ्यौ, सूरज भेदि विमाननि बैठ्यौ ॥"

—छत्रप्रकाश

भाग गया तब इन्होने उसकी सेना का सचालन किया और लडते-लडते प्राण दे दिये।

शत्रुसाल केवल रणवीर ही न थे, दानवीर भी थे। इन्होने अपने हाथ से अतुल धन-सपत्ति ब्राह्मणो एव चारण-भाटो को दान मे दी थी।

डूँगरसी ने अपने 'शत्रुसाल रासौ' में इन्हीं बातो का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

इसमे दूहा, साटक, कवित्त (छप्पय), भुजगी, मोतीदाम इत्यादि कुल मिलाकर पाँचसौ से कुछ ऊपर छंद है। इसकी वर्णन-शैली सजीव और कविता सशक्त है और उससे डूँगरसी की जन्मसिद्ध काव्य-प्रतिभा का पता लगता है। ग्रथ वर्णनात्मक है और इसमें वीर रस का प्राधान्य है। परन्तु इसमें शृगार आदि दो-एक अन्य रसो का भी प्रसगानुसार अच्छा निरूपण हुआ है।

(२४) केहरी—इनका पूरा और प्रामाणिक इतिवृत्त नही मिलता। अपनी रचना 'रसिकविलास" में इन्होने राजा शत्रुसाल का बखान किया है—

सकल देह मे केहरी, जैसे मनु परवान।
त्यो भूपनि मनि जानिये, सत्रसालु अति जान॥
सत्रसालु ज्यो केहरी, भूपनि को सिरताजु।
त्यो बरनत सब रसिक जन, है सिगारु रसराजु॥[42]

इससे जान पड़ता है कि ये शत्रुसाल नामक किसी राजा क आश्रित अथवा समकालीन थे। लेकिन ये शत्रुसाल कौन थे और कहाँ के थे इसका ठीक-ठीक पता नही लगता। परन्तु अनुमान ऐसा होता है कि ये बूदी-नरेश राव शत्रुसाल थे। इस अनुमान की पुष्टि दलपत मिश्र कृत 'जसवत-उद्योत' से भी होती ह जिसमें इन्होने शत्रुसाल नाम के आगे 'रावु' पदवी लगाई है और उनके द्वारा कवि केहरी का निहाल होना बताया है—

आलमपनाह साहिजहाँ नरनाह दिजु,
सुदरनि निवाज्यौ मही महा कविराइ कै।
बिदित बूँदेला इद्रजीत कौ बढायौ कैसौ-
दास सु सिरै गायौ गुनि गनना गनाइ कै॥

---

42. अ० स० पु० बीकानेर की प्रति, पत्र १२६–१२७

राव सत्रसाल सौ निहाल भयौ सुकवि
केहरी कनौजिया कविंदु पद पाइ कै ।
गरीबनिवाज महाराजा जसराज त्यौ,
तिहारै बाट पर्‌यौ दलपति कवि आइ कै ।।[43]

'राव' पदवी उन दिनो बूदी के राजाओ की थी । अतएव केहरी और दलपत ने अपनी रचनाओ मे जिन शत्रुसाल का नामोल्लेख किया है वे बूदी के राव शत्रुसाल मालूम पडते है जिनका शासन-काल स० १६८८-स० १७१० है ।

कवि केहरी का उपरोक्त 'रसिकविलास' नायक-नायिका-भेद का एक बडा ग्रथ है । इसकी एक ही प्रति अभी तक मिली है जो बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में है । इसमें सात प्रभाव (अध्याय) हैं । इसका छठा प्रभाव विशेषकर बडे महत्त्व का है जिसमें शृगार रस के विविध अगो का विशद और मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचन किया है । रचना का नमूना देखिये--

भौन के कौन मे भीतर भावनु लोग जगै पर के बहरावै ।
ब्यौत बनै न निकासन कौ खिनु ही खिनु बाहिर भीतर आवै ।।
केहरि ज्यौ जग्यौ उज्यारौ चहै तिनु लेकर जोति जिठानी जगावै ।
बैनी बनाइ कै सौहे ह्वै आइ कै त्यौ त्यौ निया हो दिया अचरावै ।।

(२५) **वृन्द कवि**--इनके व्यक्तिगत जीवन और इनकी कृतियो आदि के विषय मे हिंदी-ससार प्राय अधकार मे है । हिंदी-साहित्य के इतिहास-कार इनको केवल एक सूक्तिकार मानते है[44] और 'वृन्द-सतसई' के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओ से प्राय अपरिचित है । परन्तु वृन्द ने और भी ग्रथ लिखे है जो काव्य और इतिहास की दृष्टि से बहुत उत्तम कोटि के है और उनके आधार पर इनको भी हिंदी भाषा के प्रथम पक्ति के कवियो में रखा जा सकता है । ये ग्रथ किशनगढ में इनके वशजो के पास विद्यमान है जहाँ 'वृन्दरत्नावली' आदि कुछ ग्रथ अन्य कवियो के भी पाये जाते हैं जिनसे वृन्द के जीवन-चरित्र पर अच्छा प्रकाश पडता है ।

वृन्द का वास्तविक नाम वृन्दावनदास था । ये जाति के सेवक अथवा

43 जसवत-उद्योत, पद्य ७१७

44 पडित रामचन्द्र शुक्ल; हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २९५

भोजक थे । इनके पूर्वज बीकानेर के रहनेवाले थे[45]। परन्तु किसी कारण विशेष से इनके पिता रूपजी जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़ते में जा बसे थे जहाँ स० १७०० में इनका जन्म हुआ था[46]। इनकी माता का नाम कौशल्या और पत्नी का नवरगदे था । ये जब दश वर्ष के थे तब इनके पिता ने इनको विद्योपार्जन के लिये काशी भेज दिया । वहाँ ताराजी नामक एक पडित के पास रहकर इन्होने साहित्य, दर्शन इत्यादि विभिन्न विषयो का ज्ञान प्राप्त किया और कविता करना भी सीखा । काशी से लौटकर जब ये अपने जन्मस्थान मेडते आये तब वहाँ पर इनका बडा सम्मान हुआ और जोधपुर के महाराजा जसवतसिह (प्रथम) ने कुछ भूमि पुण्यार्थ देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई । कालान्तर में महाराजा जसवतसिह ने इनका परिचय मुगल सम्राट औरगजेब के कृपापात्र वजीर नवाब मुहम्मद खा से भी करा दिया जिससे आगे जाकर इनका शाही दरबार में प्रवेश हो गया।

कहते है कि पहले पहल जिस समय नवाब मुहम्मद खा वृन्द को शाही दरबार में ले गया उस समय इनकी परीक्षा लेने के हेतु बादशाह औरगजेब ने इन्हें एक समस्या दी और उसकी पूर्त्ति करने को कहा । वह समस्या थी, 'पयोनिधि पैरचो चाहै मिसरी की पुतरी' ।

बादशाह औरगजेब का झुकाव ईश-भक्ति की ओर विशेष सुना जाता था । इसलिए वृन्द ने तुरन्त ईश-महिमा विषयक यह कविता रचकर सुनाई—

पूरन परम परब्रह्म को भरोसो धारि
सुर मुनि साख जिन डोलै इत उतरी ।
थिरचर जीवन की जीवन की वृत्ति जाकै
ता ही सू रुचि-रुचि राच प्रीति जुतरी ।।
वृ द कहै साहिब समरत्थ सब बातन मे
उनकी कृपा तै ऐसी बात अदभुत रो ।

45. माधुरी, सख्या २, अगस्त १९२३, मे प्रकाशित 'महाकवि वृन्द' शीर्षक अपने एक लेख मे गोस्वामी किशोरीलाल ने लिखा है कि वृन्द गौड ब्राह्मण-कुल मे मथुरा प्रान्त के किसी गाँव मे पैदा हुए थे । परन्तु उनका यह कथन सर्वथा निराधार है ।

46 मिश्रबन्धुओ ने इसका जन्म स० १७४२ और प० रामनरेश त्रिपाठी ने सं० १७३४ बताया है । ये दोनो ही सवत् अशुद्ध है ।

पगु गिरि गाहै मूक निगम निबाहै क्यौ न
पयोनिधि पैर्‌यौ चाहै मिसरी की पुतरी ।।[47]

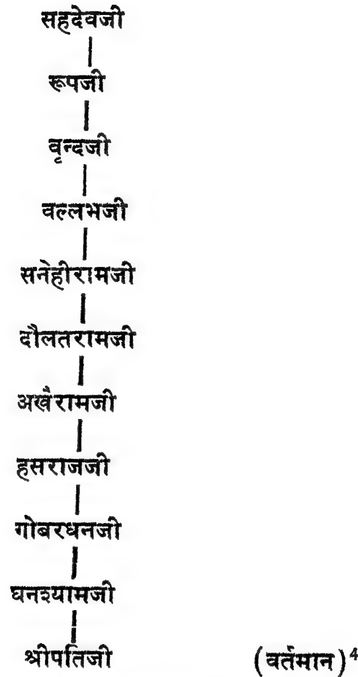
परन्तु बादशाह को यह रचना कुछ कम पसन्द आई । उसने कहा कि ईश-महिमा की जो बात इस कविता में कही गई है वह यथार्थ है । परन्तु कोई ऐसी कविता बनाओ जिसमें काव्य-चमत्कार हो । इसलिए वृन्द ने उक्त समस्या को लेकर उसकी पूर्त्ति दूसरी प्रकार से फिर की—

कुभज करूर ता की कठिन करूर दीठि,
देखि कै डरानौ न हलानौ इत उतरी ।
परिहरि लहर गहर गाज छॉड दई
वृन्द कहै भई गति अदीठि अश्रुत री ।।
अमल मुकुर कैसो अचल सुभाव रह्यौ
रह्यौ दबि भई बात ऐसी अद्‌भुत री ।
होकर निसक अक ऐसो दाव पाय क्यो न
पयोनिधि पैर्‌यौ चाहै मिसरी की पुतरी ।।[48]

औरंगजेब काव्य का विरोधी था । कवियो को वह न धन देता था, न प्रोत्साहन । परन्तु वृन्द की यह अनूठी उक्ति उस पर भी वार कर गई और उसके मुँह से सहसा निकल पडा "खूब ! खूब ! !" । बादशाह ने वृन्द को बहुत सा धन दिया । उन्हे अपना दरबारी कवि बनाया और अपने पौत्र अज़ीमुश्शान का अध्यापक नियुक्त कर गौरवान्वित किया । कालान्तर में जब अज़ीमुश्शान बंगाल का सूबेदार होकर उधर गया तब वृन्द को भी अपने साथ ले गया । तभी से ये उसके पास रहने लगे ।

अनुमानतः स० १७६४ मे किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह ने वृन्द को अज़ीमुश्शान से माँग लिया और अच्छी भू-संपत्ति देकर स्थायी रूप से किशनगढ़ में बसा दिया । वही सं० १७८० में इन्होने अपनी इहलोक-लीला संवरण की । इनके वंशज अभी तक किशनगढ में विद्यमान है । वंश-वृक्ष इस प्रकार है:—

47. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति, पृ० ५
48 वही; पृ० ६



वृन्द ब्रजभाषा के कवि थे। इन्होने ब्रजभाषा में ग्यारह ग्रंथ बनाये जिनके नाम निम्न हैं—

(१) समेतसिखर छद (२) भावपचाशिका (३) शृगारशिक्षा (४) पवनपचीसी (५) हितोपदेशसधि (६) वृन्द-सतसई (७) वचनिका (८) सत्य-स्वरूप (९) यमक सतसई (१०) हितोपदेशाष्टक और (११) भारत कथा।

(१) समेतसिखर छद। यह वृन्द की सर्वप्रथम रचना है। इसका प्रणयन स० १७२५ में हुआ था। इसमे ८ छप्पय है जिनमे जैन सप्रदाय के प्रसिद्ध तीर्थ 'समेतसिखर' का माहात्म्य कहा गया है।

(२) भावपचाशिका। यह ग्रथ औरगाबाद मे लिखा गया था। इसका रचना-काल स० १७४३ है। इसमें पचीस दोहे और पचीस सवैये है जिनमें शृगार रस के विभाव, अनुभाव, सचारी भाव आदि का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है। यद्यपि यह ग्रथ छोटा है तथापि इसकी रचना सरस एव हृदय-ग्राहिणी है और वृन्द की विलक्षण कवित्व शक्ति का परिचय देती है। भाषा भी इसकी बहुत प्रौढ, परिष्कृत और श्रुतिमधुर है। इसकी रचना के संबंध में एक

49. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति, पृ० १

कथा प्रसिद्ध है। जब वृन्द औरगाबाद में थे तब वहाँ के किसी काव्य-प्रेमी एक सज्जन ने कवियो की एक सभा बुलाई और वृन्द को भी उसमें सम्मिलित होने का निमत्रण दिया। जिस समय सब लोग एकत्र हो गये, वहाँ यह प्रश्न उठा कि इस सभा में सबसे अच्छा कवि कौन है और किसको उसका सभापति बनाया जाय। बहुत देर तक वाद-विवाद होता रहा। जब कुछ भी तय नही हो पाया तब उस सज्जन ने कहा कि आज की रात में जो व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ कविता बनाकर लायगा वही कवि-शिरोमणि समझा जायगा और उसी को सभापति का पद मिलेगा। रात भर में वृन्द ने यह ग्रथ बनाया और प्रात.काल होते ही सबो के सामने जाकर पढा। वृन्द के सामने किसी दूसरे कवि का रग न जमा और यही सर्वसम्मति से सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये[50]। वृन्द के शिष्य किशनगढ के मीर मुशी माधौराम ने भी अपने 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश' में इस घटना की ओर सकेत किया है—

कारज औ कारण तूँ विस्व-विस्तारन है
अखिल की पालक सुजोति चिदानद की।
तूँही गति तूँही मति तूँही सुख सपति है
विपति बिहडनी बली है अनद की॥
तेरे गुन गाइबै कौ विधि हू समर्थ नाहि
तो कहा गति मेरी रसना मतिमद की।
भक्तन की पति राखि ताकै सुनै गीत साखी
पति राखी मेरता कै बासी कवि वृन्द की॥

(३) शृगार-शिक्षा। यह नायिका-भेद का ग्रथ है। इसकी रचना मुगल सम्राट औरगजेब के वजीर नवाब मुहम्मद खा के पुत्र मिर्जा कादरी की कन्या को पातिव्रत-धर्म की शिक्षा देने के लिये स० १७४८ में की गई थी। मिर्जा कादरी अजमेर का सूबेदार था। इस ग्रथ में उसकी भी प्रशसा की गई है—

ता को मिरजा कादरी, सब विधि सरस सुजान।
वीर धीर बानैत बर, सुबुधि सरूप निधान॥
कुलमनि मिरजा कादरी, रस चातुर रिझबार।
दाता ज्ञाता भोगता, अति चित परम उदार॥[51]

---

50. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति, प० १०–११
51, वही, पृ० १२

इसके प्रारंभ मे वर-कन्या के गुण-दोषो आदि का वर्णन है । फिर नवोढा, मुग्धा, प्रोषितपतिका, इत्यादि नायिकाओ के लक्षण बताये गये है । अत मे १६ शृंगारो का बहुत ही सरस, व्यवस्थित और काव्य-कलापूर्ण वर्णन किया गया ह । बहुतेरे कवियो के समान न तो इस ग्रंथ में भरती के शब्द एव वाक्य है और न कही भावावेश में आकर कवि ने लोक-मर्यादा का उल्लघन किया ह ।

(४) पवन-पचीसी । इसमे पवन सबन्धी २५ छप्पय है । शृंगार रस की रचना ह । इसका रचना-काल स० १७४८ है । इसकी भाषा मधुर और प्रवाहयुक्त ह । रचना सरस और मनोहारिणी है । इसमे से एक छप्पय यहाँ दिया जाता है—

पटु पराग पट पीत, सुखद सुदर तन सोहत ।
बसी बस बजाय, सुमन खग मृग मन मोहत ।।
करि विलास रस केलि, लता ललिता पुजन मै ।
सदन सदन सचरत, धीर विचरत कुजन मै ।।
जल न्हात पदमिनी बास हर, चढत सुविटप कदब पर ।
माधव स्वरूप माधव-पवन, कहत वृंद आनद कर ।।

(५) हितोपदेशसधि । यह सस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'हितोपदेश' की चतुर्थ कथा का पद्यानुवाद है । इसकी रचना कवि ने स० १७५६ मे किशनगढ के महाराजा मानसिह के ज्येष्ठ पुत्र महाराजकुमार राजसिह के लिये की थी.—

निधि सर मुनि ससि के बरस, माइ बहुल दिव सेस ।
द्वादसि कौ पूरन भयो, भाषा हित उपदेस ।।
मान महीपति कुवर मणि, राजसिह जस नेत ।
वृन्द लिख्यो ढाका नगर, राज सुतन के हेत ।।[52]

(६) वृन्द-सतसई । यह वृन्द की बहुत प्रसिद्ध रचना है । इसी का दूसरा नाम दृष्टान्त-सतसई है । यह मुगल सम्राट औरंगजेब के पौत्र शाह अजीमुश्शान के अनुरोध से लिखी गई थी । इसका निर्माण सं० १७६१ में ढाका शहर में हुआ था जैसा कि कवि ने स्वय ही इसके अत में लिखा है—

52. वृन्दरत्नावली की हस्तलिखित प्रति; पृ० २०

सवन ससि रस वार ससि, कातिक सुदि ससिवार।
सातै ढाका सहर मे, उपज्यौ इहै विचार ॥

इसमें सातसौ से कुछ ऊपर दोहे है । प्रत्येक दोहा सद्विचारपूर्ण एव मार्मिक है और उससे वृन्द के व्यावहारिक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है । नीति-सदाचार सबन्धी बातो को वृन्द ने ऐसे मनमोहक ढग से व्यक्त किया है कि वे तुरन्त पाठक के हृदय मे घर कर लेते है । प्रसाद गुण की बहुलता होने के कारण साधारण पढे-लिखे लोग भी इन दोहो का मर्म समझ लेते है और स्थान-स्थान पर उद्धृत कर अपने पक्ष तथा प्रसग का समर्थन करते है । दोहे लोकोक्तियाँ बन गई है । हिंदी-साहित्य में अधुना सात-आठ सतसइयाँ प्रचलित है । काव्य-प्रेमियो मे सभी का यथेष्ट आदर भी है । परन्तु सर्वप्रियता की दृष्टि से यदि देखा जाय तो बिहारी-सतसई के अनन्तर वृन्द-सतसई ही उत्कृष्ट रचना ठहरती है ।

(७) वचनिका । यह ग्रथ किशनगढ के महाराजा मार्नासह के आदेशानुसार उनके पिता महाराजा रूर्पासह की ख्याति को अक्षय रखने के लिये बनाया गया था । इसका रचनाकाल स० १७६२ है । इसमे उस युद्ध का वर्णन है जो मुगल सम्राट शाहजहाँ के पुत्रो मे दिल्ली के राजसिंहासन के लिये धौलपुर के मैदान मे हुआ था । यह एक ऐतिहासिक ग्रथ है । इसके प्रारभ में कन्नौज के महाराज राव सीहाजी से लेकर महाराजा रूपसिंह तक के राठौड़ नरेशो की वशावली दी गई है । तदतर महाराजा रूपसिंह के शौर्य-पराक्रम का वर्णन किया गया है । इस लड़ाई में महाराजा रूपसिंह ने दारा का पक्ष लिया था । औरगजेब की सेना को काटते-काटते वे उसकी सवारी के हाथी तक जा पहुँचे और वहाँ पैदल होकर हौदे की रस्सियाँ तलवार से काटने लगे । यह देखकर औरगजेब के बहुत से सैनिक एक साथ उन पर टूट पडे और उनके टुकडे-टुकड़े कर डाले[53] । जैसा वीरतापूर्ण इतिहास है वैसी ही वीरतापूर्ण भाषा-शैली मे यह लिखा भी गया है । वीर रस का कवि ने ऐसा सबल, ओजपूर्ण और लोमहर्षण वर्णन किया है कि पढकर भुजाएँ फडकने लगती है ।

(८) सत्यस्वरूप । यह ग्रथ स० १७६४ में रचा गया था । इसमें बादशाह औरगजेब के मरने पर दिल्ली के राजसिंहासन के लिये शाहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह), आज़म, कामबख्श इत्यादि की लडाई का वर्णन है । इस युद्ध में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह बहादुरशाह के पक्ष मे लड़े थे । उनके हाथ से आजम के पक्षवर्त्ती नवाब, राजा-महाराजा इत्यादि

53 मुंशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ५३

लड़नेवालो, के १७ हौदे खाली हुए जिनमे दतिया के राजा दलपत और कोटा के महाराव राजा रार्मासह मुख्य थे । इस युद्ध की विजय का सुयश महाराजा रार्जासह को मिला[54] । इतिहास की लगाम को मानते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा से सत्यस्वरूप को एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रथ बना दिया ह । भाषा, भाव, छद, शब्द-विन्यास सभी का इस में अपूर्व सम्मिलन हुआ है । उदाहरण—

वह षटमुख यह एक मुख कासीस्वर
वा कौ जस कोटिन जपत नर अति है ।
वह महेन्द्र यह सेनापति महेन्द्र ज्यो व
आगरे मे उखड लर्‌यौ अद्‌भुत गति है ।।
तब सिवरानी सिव सोच कर्‌यौ बीत्यौ सुनि
कहै कवि वृन्द बोल गनन गनपति है ।।
दौरि गिरवानन पुकार गिरिजा सौ कही
तेरो यह दलपत नाहि राव दलपति है ।।

(६) यमक सतसई । इसमें कुल सातसौ दोहे है जिनमे अधिकाश दोहे शृगार रस के है । प्रत्येक दोहे में यमक अलकार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । वृन्द-सतसई में कवि ने भाव-प्रदर्शन की ओर विशेष ध्यान दिया है पर इसकी रचना उन्होने कविता के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनो को सामने रखकर की है । अतएव इसमे कला-चातुर्य और भाव-सौंदर्य्य दोनो का सुन्दर सयोग पाया जाता है । उदाहरण-स्वरूप चार दोहे यहाँ दिये जाते है—

कुज-बिहारी कुज मे, छरी छरी दिखराइ ।
चित उचकी चितबत चकी, परतन परतन पाइ ।।
बनी माहि राधे बनी, बनी बनी की भाँति ।
भई देखि सिर उन मनी, सबै उनमनी काति ।।
दही दही बेचन दही, दही दही यह जाति ।
गोरस मिस गोरस हिँ हरि, मग मँडराति डराति ।।
एरी ए कौनै कही, कौनै कही रिसाइ ।
मौनै गहि कौनै रही, अब गौनै तै आइ ।।

54. वृन्दरत्नावली, की हस्तलिखित प्रति, पृ० ३१

(१०) हितोपदेशाष्टक। इसमे आठ घनाक्षरी है । शात रस का ग्रथ है। इसमें रचनाकाल का उल्लेख नही है । परन्तु इसकी प्रौढता को देखते हुए यह वृन्द की वृद्धावस्था की रचना जान पडती है। कविता इस ढग की है--

नैननि की जोति जो लौ नीकै कै निहार हरि
सुन लै पुरान जो लौ सुनै तुव कान है।
रसना रसीली जो लौ रमत रसीले बैन
तो लौ हरि गुन गाय जो पै तू सुजान है।।
कापै नाहि कर तो लौ भली भाँति सेवा कर
पायन प्रदक्षिना दे जो लौ बलवान है।
जरा जकरै तै कहा करि हो कहत वृन्द
भज भगवान जो लौ देह सावधान है।।

(११) भारत-कथा। यह महाभारत की एक कथा का साराश है। यक्ष के प्रश्नो का उत्तर देने के पूर्व नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम जब सरोवर से पानी पीते है और फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हो जाते है तब युधिष्ठिर आकर उनके प्रश्नो का उत्तर देते है। इसी घटना को लेकर यह छोटा-सा ग्रथ लिखा गया है। रचना साधारण है। इसका प्रारभ इस तरह होता है--

एक समय बन सघन मे, बिचरत पाँचो बीर।
भई तृषातुर द्रौपदी, चाहे पायौ नीर ।।
नृप आज्ञा तै जो गये, नीर भरन सर तीर।
सरबर मे बानी सुनी, भये चकित चित धीर ।।

मिश्रबन्धु-विनोद मे 'प्रताप-विलास' नामक एक और ग्रथ को वृन्द रचित बतलाया गया है[55]। परन्तु यह वृन्द की प्रामाणिक रचना नही है। किसी दूसरे कवि की कृति है जिसे भ्रमवश वृन्द की मान लिया गया है[56]।

(२६) उद्‌यचन्द--ये खरतरगच्छीय जैन यति थे। इनका 'अनूपरसाल' नामक एक ग्रथ उपलब्ध हुआ ह जो बीकानेर के महाराजा अनूपसिह के लिए बनाया गया था;-

55. पृ० ४६६

56 इनके 'बारहमासा' नामक एक और ग्रथ का पता अभी अभी लगा है।

विक्रमपुर पति कर्ण-सुत, श्री अनूप भूपाल ।
राजै गाजै बाजतै, रसिक सिरोमनि माल ।।
ता हित चित करिकै रच्यौ, ग्रथ अनूपरसाल ।
कवि कोकिल कुल सुख सदन, सरस मधुर सुविसाल ।।[57]

यह ११६ छदो का एक छोटा-सा रीति-ग्रथ है । इसका रचना-काल स० १७२८ ह[58] । इसमें तीन खण्ड ह जिनको स्तवक नाम दिया गया है । विषय-विभाजन इस प्रकार हुआ है—

प्रथम स्तवक	नायिका-वर्णन	पद्य सख्या ६१
द्वितीय स्तवक	नायक-वर्णन	पद्य सख्या २०
तृतीय स्तवक	अलकार-वर्णन	पद्य सख्या ३५

अनूपरसाल की भाषा चलती हुई ब्रजभाषा है । विषय-वस्तु की दृष्टि से इसमें कोई विशेष बात नही है, पर रचना सरस और मार्मिक है। उदाहरण—

नैन भौह चितवनि चलनि, बाँकी मुर मुसकानि ।
अगनि अति सुकुमारता , ऐसे ललित बखानि ।।
रम्य वस्तु को देखि सुनि, ह्वै चचल अति चित्त ।
कवि-कोविद जन कै मतै, सोइ कुतूहल मित्त ।।

(२७) **नंदराम**—ये बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह (स० १७२६-५७) के आश्रित थे । इन्होने 'अलसमेदिनी' नामक एक रीति-ग्रथ बनाया था जिसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में है । इसकी पुष्पिका मे इसे महाराजा अनूपसिंह की रचना बताया गया है[59] पर वास्तव मे यह नंदराम की कृति है जैसा कि इसके एक दोहे से स्पष्ट है—

नृप अनूप के हुकुम ते, कोविद कवि नदराम ।
रस-ग्रथन को सार ले, करत ग्रथ अभिराम ।।[60]

---

57. अ० सं०पु० बीकानेर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १, पद्य ३ और ५
58 "सवत सतरै सै अठइसै", तृतीय स्तवक, पद्य ३५
59. इति श्रीमन्महाराजा श्रीअनूपसिंह विरचितायामलसमेदिन्यामलकार निरूपण तृतीय प्रमोद सपूर्ण (हस्तलिखित प्रति पत्र ११)
60. अ० स० पु० की हस्तलिखित प्रति, प्रथम प्रमोद, पद्य ५०

अलसमेदिनी मे तीन प्रमोद (खड) है, और ११५ पद्य । इसके प्रथम प्रमोद में नायिका-वर्णन, द्वितीय प्रमोद मे नायक-वर्णन और तृतीय प्रमोद मे अलकार-वर्णन है । ग्रथ की रचना जैन कवि उदयराज के उल्लिखित 'अनूपरसाल' के अनुकरण पर हुई प्रतीत होती है पर उसकी उपेक्षा विषय की गहराई इसमे कुछ अधिक है । इसके उदाहरण भी अपेक्षाकृत सुन्दर है । भाषा का नमूना यह है ।

पिय आवन सुनि हरष हिय, भूषन बसन सबार।
होइ और की और जहँ, सो बिभ्रम रस सार ।।
जानबूझ अनजान ज्यौ, पिय स्यौ बूझै तीय।
यहै मुग्धता कबि कहै, सुनि राखौ धरि हीय ।।

(२८) **नरहरिदास**—ये रोहडिया शाखा के चारण लक्खाजी के पुत्र थे । इनका जन्म सवत १६४८ में और देहान्त स० १७३३ में हुआ था[61] । ये जोधपुर-नरेश महाराजा गजसिह के आश्रित थे जिन्होने इनको टहला नामक एक ग्राम प्रदान किया था । ये दो भाई थे । छोटे भाई का नाम गिरधरदास था । नरहरिदास के कोई सतान नही थी । इस सबन्ध में इनकी भावज ने इन्हें एक दिन जब ताना दिया तब क्रुद्ध होकर इन्होने उसे कहा कि सतान तो मेरे नही है जिससे मेरे मरने के पश्चात् मेरा नाम दुनियाँ में रह सके । परन्तु विधाता ने मुझे कविता करने की अलौकिक शक्ति प्रदान की ह जिसके द्वारा मै अपने नाम को अमर कर दूँगा । इसी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए इन्होने अपने विख्यात ग्रथ 'अवतारचरित्र' की रचना की जिससे अभी तक इनका नाम चला आता है ।

'अवतारचरित्र' चारण जाति का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रंथ है । इसको पढे बिना एक चारण कवि की शिक्षा अपूर्ण समझी जाती है । इसकी चित्रित और अचित्रित दोनो प्रकार की हस्तलिखित प्रतियाँ एक भारी संख्या में राजस्थान के चारण-भाटो के घरो, राजभडारो आदि में पडी मिलती है । यह ग्रंथ ज्ञानसागर प्रेस, बंम्बई से प्रकाशित भी किया जा चुका ह । इसमें रॉयल अठपेजी आकार के ५२० पृष्ठ है । छपाई बहुत अशुद्ध हुई ह ।

यह ग्रंथ १७३३ मे लिखा गया था जैसा कि इसके अतिम पद्य से विदित होता है—

61. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ५१६

सतरह सै तैतीस नियत सवत उतरायन ।
रितु ग्रीषम आषाढ मास पक्ष कृष्ण सुपायन ।।
बनि आठै तिथि भौमवार मिधि जोग समगल ।
पुहकररन्य प्रसिद्ध मध्य पूजित भुवमडल ।।
अवतारचरित्र चोईस ए विजय सुजस जग बित्थरचौ ।
कवि दास दाम नरहरि सुकवि कृत उधार अपनो करचौ ।।[62]

इसमे चौबीस अवतारो का सविस्तार वर्णन ह । इसकी छद सख्या १६००० से ऊपर है—

सोर सहृस अरु आठ सै, इकसठ ऊपर आनि ।
छद अनुष्टुप करि सकल, पूरन ग्रथ प्रमानि ।।[63]

इसमें साटक, कवित्त, दोहा इत्यादि कई प्रकार के छदो का प्रयोग हुआ ह पर पद्धरि छद सबसे अधिक देखने मे आता है । इसकी भाषा बहुत सीधी-सादी ब्रजभाषा है जिसमे कही-कही राजस्थानी का भी पुट दृष्टि-गोचर होता है । इसकी वर्णन-शैली इतनी सरस और रोचक है कि पढने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती । पाठक बडी सरलतापूर्वक विषय-वस्तु को हृदयंगम करता हुआ आगे बढता चला जाता है और उसे इस बात का भान ही नही रहता कि वह सैकड़ो छदो को पारकर आगे निकल गया है । भाषा की ऐसी सरलता और वर्णन की ऐसी स्वाभाविकता बहुत कम चारण कवियों की रचनाओ मे पाई जाती है ।

परन्तु 'अवतारचरित्र' में भावो की मौलिकता का प्रायः अभाव-सा है । इसमें दिया हुआ रामावतार का वर्णन तो एक प्रकार से तुलसी कृत रामचरित-मानस का अनुवाद ही प्रतीत होता है । उदाहरण—

चाप चढावन कौ गनै, सकै न अबनि छुडाइ ।
भई उर्व्वी निर्बीर अब, कह्यौ जनक अकुलाइ ।।
जौ जानत निर्बीर भुव, तौ न करित पन एहु ।
पावक प्रजलत गेह अब, तब कहँ पइयत मेहु ।।
रहो कुँवारी कन्यका, लिखत बिरच ललार ।
पन कीनौ जौ परिहरौ, तो उपहास ससार ।।[64]

—अवतारचरित्र

62 अवतारचरित्र, पृ० ५६६
63 वही, पृ० ५६६
64. वही, पृ० १२५

रहा चढाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकै छुडाई ।।
अब जनि कोउ माखै भट मानी। वीर विहीन मही मै जानी ।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिवाहू ।।
सुकृत जाय जो प्रन परिहरऊँ। कुँवरि कुँवारि रहै का करऊँ ।।
जो जनतेउँ बिन भट महि भाई। तो प्रन करि करतेउँ न हँसाई ।।

—रामचरितमानस

और भी—

इहाँ रघुबीर सरित तट आए। बोहित लावहु कीर बुलाए ।।
आनत नाहि नाव इहि ओरा। किरिवा राम अग्र कर जोरा ।।
बोले कीर तहाँ मृदु बानी। जगत प्रसिद्ध हमहुँ पुनि जानी ।।
राम-चरन-रज परस पुनीता। उडी सिला जब गगन अभीता ।।
द्विज सराप त्रिय पाहन देही। सो रज परसत मिली सनेही ।।
उपल तै तोल कछु अधिकाई। गनियत काठ माँझ गरुवाई ।।
वहि गति जौ मम नाव उडाई। बामा पुत्र मरहि बिललाई।
पुनि हौ दीन नाव कहँ पाऊँ। जन कुटुब किहि आस जिवाऊँ ।।[65]

—अवतारचरित्र

मागी नाव न केवट आना। कहै तुम्हार मर्म मै जाना ।।
चरण-कमल-रज कहँ सब कहई। मानुस करणि मूरि कछु अहई ।।
छुवत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई ।।
यह प्रति पालहुँ सब परिवारू। नहि जानहुँ कछु आन कबारू ।।
तरणिहु मुनि घरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उडाई ।।

—रामचरितमानस

जहाँ कही तुलसी कृत रामचरितमानस से भिन्नता ह वहाँ केशव कृत रामचन्द्रिका को आधार बनाया गया है। जैसे—

मुहि देख कहा कृत मन मलीन। लै करै अग ही अग लीन ।।
मम बचन सुनहु सीता समोह। कहा राम काज एतौ अदोह ।।
आकास बास देखै न कोइ। सपेखै बातुल होइ सोइ ।।
कृतघ्न कुदानि कुकन्या कुकत। अपँस सर्व तिहि छलै अत ।।

---

65. अवतारचरित्र, पृ० १६१

मुडी जटीनि कौ महा मित्र । चाहै अनाथ रीझै चरित्र ।।
दूखै जु तुमहि तिहि लोक देइ । अतर उदास उहि चरित एहि ।।
निर्गुण अनाथ लीजे न नाम । ठिक नाहि न जाकौ ठौर ठाम ।।
जाकै न मात कोउ पिता जान । नित खोज करत सुनि मुनि निदान।।[66]

—अवतारचरित्र

सुनौ देवि मोपै कछू दृष्टि दीजै । इतो सोच तो राम काजे न कीजै ।।
बसै दडकारण्य देखे न कोऊ । जु देखे महा बावरो होय सोऊ ।।
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै । हितू नग्न मुडीन ही को सदा है ।।
अनाथै सुन्यौ मै अनाथानुसारी । बसै चित्त दडी जटी मुडधारी ।।
तुम्हे देवि दूखै हितू ताहि मानै । उदासीन तो सो सदा ताहि जानै ।।
महा निर्गुणी नाम ताकौ न लीजै । सदा दास मौपै कृपा क्यो न कीजै ।।

—रामचद्रिका

कहते है कि अवतार-चरित्र के अतिरिक्त नरहरिदास ने १६-१७ ग्रंथ और भी बनाये थे पर उन सबका पता नही लगता । केवल नीचे लिखे छह ग्रंथ मिलते है—

(१) दसमस्कंध भाषा (२) रामचरित्र कथा (३) अहिल्या-पूर्व-प्रसंग (४) वाणी (५) नरसिंह-अवतार-कथा और (६) अमरसिंह रा दूहा[67] ।

(२९) मानजी—हिंदी-साहित्य मे कवि मान का नाम बहुत प्रसिद्ध है । परन्तु इनका जीवन-वृत्तान्त अभी तक अधकार मे है । मिश्रबधुओ ने इनका कविता-काल सं० १७१७ माना है और लिखा है कि इन्होने 'राजविलास' नाम का एक ग्रंथ बनाया जिसमें महाराणा मानसिंह का वर्णन है[68] । लेकिन उनके ये दोनो ही कथन निर्मूल है । मानजी का कविता-काल सं० १७१७ नही है, न 'राजविलास' में महाराणा मानसिह का वर्णन है । मेवाड़ में मानसिह नाम का कोई राजा हुआ ही नही । इसी प्रकार इनकी जाति के सबन्ध में भी बहुत भ्रम फैला हुआ है । कोई भाट और कोई चारण बताते है । वास्तव में ये जैन यति थे जैसा कि कविराजा बॉकीदास ने लिखा है: "मानजी जती राजविलास नांव रूपक राणा राजसिह रौ बणायौ"[69] ।

66. अवतारचरित्र, पृ० २६१
67. यह अन्तिम ग्रथ डिगल का है ।
68. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ४६२ (भाग दूसरा)
69 राजस्थानी वाता, सूरजमल-नागरमल पुस्तकालय कलकत्ता की हस्तलिखित प्रति; वात-सख्या १११

उदयपुर के सरस्वती भडार मे 'राजविलास ' की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है । वह स० १७४६ की लिखी हुई ह और इस ग्रथ की मूल अथवा प्राचीनतम प्रति है । उसकी पुष्पिका मे इनका नाम मानसिह लिखा हुआ ह[70] । इससे मालूम पडता है कि इनका पूरा नाम मानसिह था और कविता मे ये अपना नाम कवि मान लिखा करते थे ।

कवि मान कृत राजविलास नागरीप्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है । इसमें मेवाड के महाराणा राजसिह (प्रथम) का जीवन चरित्र वर्णित है । इसकी रचना का प्रारभ स० १७३४ मे हुआ था——

सुभ सवत दस सात बरस चौतीस बधाई ।
उत्तम मास असाढ दिवस सत्तमि सुखदाई ।।
बिमल पाष बुधवार सिद्धि बर जोग सपत्तौ ।
हरषकार रिषि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ ।।
तिन द्यौस मात त्रिपुरा सुतवि कीनौ ग्रथ मडान कवि ।
श्रीराजसिह महाराण कौ रचियहिं जस जौ चद रवि ।।[71]

इसमे अठारह खड है । ये विलास कहे गये है । इसकी छद-संख्या १५२७ है । प्रथम विलास मे सरस्वती-वदना के अनतर चित्तौड के मोरी राजा चित्रागद और बापा रावल् का सक्षिप्त इतिहास दिया गया हे जो दतकथाओ पर आधारित है । द्वितीय विलास में बापा रावल से लेकर महाराणा राजसिंह तक के मेवाड़ के राजाओ की वंशावली दी गई है । यह वंशावली अशुद्ध है और इतिहास में दी हुई वशावली से मेल नही खाती । तदुपरात १४८ वें छंद से महाराणा राजसिंह का जीवन-वृत्तान्त प्रारभ होता है जो ठेठ अतिम विलास तक चला गया है । यह समूचा वृत्तात बहुत रोचक एव काव्य-गुणो से ओत-प्रोत है और इसमें ऐतिहासिक तथ्यो का बहुत सरक्षण किया गया है । महाराणा राजसिह की प्रशसा मे कही-कही अत्युक्ति अवश्य हुई है । जैसे——

अजमेरह अग्गरौ धाक दिल्ली धर धुज्जै ।
रिनथभह रलतलै लच्छि लाहौर लुटिज्जै ।।

---

70 इति श्री राजविलास ग्रथ सपूर्ण श्रीरस्तु । लिखित कवि श्रीमानसिहजी । श्रीचित्रकूटाधिपति राणा श्रीजयसिहजी विजयमान राज्ये स० १७४६ कार्तिक दीपमालिका बुधवासरे ·· ·· ।

71. राजविलास, पृ० ८

खुरासान खधार थाट मुलतान थरक्कै।
चदेरी चलचलय भीति उज्जैनि भरक्कै ॥
मडवह धार धरनी मिलय डुलय देस गुजरात डर।
औदकै साहि औरग अति राण सबल राजेस वर ॥[72]

परन्तु यह राजाश्रित कवियो की परम्परागत काव्य-शैली का अनुकरण मात्र है। इस प्रकार का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन चद, भूषण इत्यादि हिंदी के और भी कई कवियो ने किया है ।

राजविलास की भाषा ब्रजभाषा है। परन्तु इसमे डिंगल भाषा के शब्दो का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है । इसी लिये कुछ लोग इसे डिंगल का ग्रथ मानते हैं। परन्तु यह डिंगल का ग्रथ नही है; पिगल का है। क्योकि इसके व्याकरण का ढाँचा ब्रजभाषा का है ।

इसकी भाषा बहुत प्रौढ, परिमार्जित एव अलकार-बहुल है । उसमें थोडी-सी कठोरता अवश्य है जो वीर रस के वर्णन मे तो अरुचिकर प्रतीत नही होती पर शृगार रस के वर्णन में कानो पर हलका-सा आघात करती है। यथा—

कहियै श्री राजकुँआरी अच्छी अपछरि अनुहारी।
बपु सोभा कचन बरनी हरिहर ब्रह्मा मनहरनी ॥
सचि सुरभि सकोमल सारी कच्छरि मनु नागिनि कारी।
सिर मोती माग सुमाजै रखरी कनकमय राजै ॥
लखि सीस फूल रवि लोपै अष्टमि ससि भाल सु ओपै ।
बिन्दुली जराउ बखानी अलि भृकुटि ओपमा आनी ॥
छबि अजन दृग मृगछौना तपनीय श्रुति जरित तरौना।
नकबेसरि सोहति नासा पयनिधि सुत लाल प्रकासा ॥[73]

राजविलास में प्रसाद एव माधुर्य्य की मात्रा न्यून और ओज की अधिक है। वर्णन की स्वाभाविकता, कथा का सगठन, इतिहास की सत्यता आदि गुणो का जो सुन्दर स्वरूप इसमें प्रस्तुत किया गया है वह बहुत ही प्रभावपूर्ण और प्राजल है। महाराणा राजसिंह अपने समय के विख्यात हिंदू नेता थे । ऐसे वीर सेनानी का जीवनचरित्र जिस तल्लीनता से लिखा जाना

72. वही; २६२
73, वही, पृ० १०४

चाहिये वैसी ही तल्लीनता से इसमें लिखा गया है । सचमुच यह हिंदी का गौरव ग्रथ है ।

(३०) कुलपति मिश्र—ये जयपुर के महाराजा रामसिंह (प्रथम) के आश्रित कवि जाति के माथुर चौबे थे। ये आगरा के रहनेवाले थे जहाँ से आकर जयपुर में बस गये थे । अपने 'सग्रामसार' ग्रथ मे इन्होने अपना थोडा-सा परिचय दिया है जिसके अनुसार इनका वश-क्रम इस प्रकार बनता ह अभयराम-तारापति-मयालाल-हरिकृष्ण-परशुराम-कुलपति[74]

कहा जाता है कि कुलपति मिश्र 'बिहारी-सतसई' के रचयिता कविवर बिहारीलाल के भानजे थे[75] । यह भी प्रसिद्धि है कि जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह ने इनको जागीर और कविवर की पदवी प्रदान की थी । परन्तु इन बातो का कोई विश्वसनीय प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ । ये तैलग भट्ट पडितराज जगन्नाथ के शिष्य थे जिनसे इन्होने संस्कृत और भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था । इनका रचना-काल सं० १७२४-४६ है । इनके वशज जयपुर में विद्यमान है। कुछ अलवर में भी पाये जाते हैं ।

कुलपति के वशवालो का कहना है कि इन्होने ५० ग्रंथ बनाये थे । परन्तु इस समय इनके सभी ग्रथ नही मिलते । केवल १० ग्रथों का पता है जिनके नाम ये हैं—

(१) रसरहस्य (२) दुर्गाभक्तिचन्द्रिका (३) सग्रामसार (४) युक्ति-तरगिणी (५) नखशिख (६) दुर्गासप्तसती का अनुवाद (७) सरूप-कुरूप-सवाद (८) आसाम की बाढ (९) सेवा की बाढ़ और (१०) विष-अमृत का झगड़ा ।

इनमें रसरहस्य, सग्रामसार, और युक्तितरंगिणी ये तीन कुलपति मिश्र की अत्युत्कृष्ट रचनाएँ है । शेष सामान्य कोटि की है । रस-रहस्य एक-रीति ग्रंथ है । यह सं० १७२७ में रचा गया था । इसमें आठ अध्याय है जिनमें काव्य के विभिन्न अगो का अत्यन्त मौलिक एवं शास्त्रीय विधि से विवेचन किया गया है । 'संग्रामसार' महाभारत के द्रोण-पर्व का पद्यानुवाद है । इसका निर्माण महाराजा रामसिंह की आज्ञा से सं० १७३३ में हुआ

74. प्रथम परिच्छेद, पद्य १५-१९

75 मिश्रबधु-विनोद, पृ० ४७२ (दूसरा भाग)

था । यह राजस्थान का बहुत लोकप्रिय ग्रंथ है । 'युक्तितरंगिणी' में सात सौ दोहे हैं । ग्रंथ शृंगार रस की उक्तियों से लबालब भरा हुआ है ।

कुलपति मिश्र की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है । मँजाई उसकी अवश्य कुछ कम हुई है परन्तु है वह बहुत व्यवस्थित और विषयानुकूल । इनकी कविता ललित, कलापूर्ण और प्रसाद गुण-समन्वित है ।

(३१) दयालदास—ये मेवाड-निवासी जाति के राव थे । इनका लिखा हुआ 'राणारासौ' नाम का एक ग्रथ मिला है जिसमे मेवाड़ का इतिहास वर्णित है । इस ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जो स० १६४४ की लिखी हुई है । यह उदयपुर के महता जोधसिंह के पुस्तकालय में वर्तमान है । इसकी पुष्पिका में इसको स० १६७५ की लिखी हुई प्रति की प्रति-लिपि बताया गया है:—

"सं० १६७५ का माहा विद ५ सुभं लिखता भाई सोभजी । यह राणा-रासा की पुस्तक जिला रासमी के परगना गलूंड के फूलेस्या मालियो के राव दयाराम की पुस्तक स० १६७५ की लिखी हुई से राजस्थान उदयपुर में गोलवाल विष्णुदत्त ने सं० १६४४ का मगसर विद ४ के दिन पंडितजी श्रीमोहनलालजी-विष्णुलालजी पड्या के पुस्तकालय के लिये लिखी ।"

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'राणारासौ' स० १६७५ में अथवा इससे पूर्व लिखा जा चुका था जो असभव है । क्योकि इसके अंतिम भाग में महाराणा कर्णसिह (सं० १६७६-८४) का विस्तारपूर्वक वर्णन दिया हुआ है और इसके प्रारभ में मेवाड़ के महाराणाओ की जो वशावली दी हुई है उसमें महाराणा जगतसिंह (स० १६८४-१७०६) महाराणा राजसिंह (स० १७०६-३७) तथा महाराणा जयसिंह (स० १७३७-५५) का नामो-ल्लेख है जो सब सं० १६७५ के बाद मे हुए हैं:—

सीसोदा जगपति नृपति, ता सुत राजड रानु ।
तिनके निरमल बस कौ, करचौ प्रससु बखानु ।।
जगतस्यघ घर जनमियौ, राजस्यघ अवतार ।
बीस चारि तुम जानियो, कीने ध्रम्म अपार ।।
राजस्यघ के पाट अब, बैठे जैस्यघ रान ।
धरा ध्रम्म अवतार लै, मनौ भान के भान ।।[77]

76. सत्रहसै तैतीस सम, गुन जुत फागुन मास ।
कृष्ण पक्ष तिथि सप्तमी, कियो ग्रंथ परकास ।।

77 हस्तलिखित प्रति, पत्र १ और ६

यदि यह ग्रथ स० १६७५ से पूर्व लिखा गया होता तो इसमें उपरोक्त महाराणाओ का उल्लेख होना असभव था । अतः पुष्पिका में जो सवत् दिया गया है वह भ्रमात्मक है और राव-भाटो की करतूत जान पड़ती है । वास्तव में यह ग्रथ महाराणा जयसिंह के शासन-समय में लिखा गया है और इसका रचना-काल स० १७३७ और स० १७५५ के मध्य में है । मिश्रबधुओ ने इसका प्रणयन-काल सं० १६७७ लिखा है[78] । परन्तु उल्लिखित कारणो से वह भी अशुद्ध है ।

राणारासौ के अतिरिक्त दयालदास का लिखा हुआ दूसरा कोई ग्रंथ नही मिलता । 'मिश्रबधु-विनोद' में इनके रचे दो ग्रथ और बताये गये है— (१) अकल को अग और (२) रासौ को अग[79] । परन्तु ये ग्रथ इनके नहीं हैं । दयालदास नामक एक रामसनेही सत के लिखे हुए है जिनको भ्रम से इनका मान लिया गया है ।

पृथ्वीराज रासौ की रचना के पश्चात् उसकी वर्णन-शैली पर ऐतिहासिक काव्य लिखने की राजस्थान के चारण, भाट, राव आदि जातियों के लोगो में एक प्रथा-सी चल पडी थी । यह राणारासौ उसी का नमूना है । इसमें मेवाड का इतिहास दिया गया है जो ८७५ छंदों में समाप्त हुआ है । इसके आदि में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर महाराणा जयसिंह तक के राजाओं की वंशावली दी गई है जिसमें अनेक नाम कपोल-कल्पित हैं । तदंतर बापा, कुभा, प्रताप इत्यादि कुछ मुख्य-मुख्य राजाओ का सविस्तर वृत्तान्त दिया है । विशेषकर इनकी लडाइयो का वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ हुआ है । एक नई बात इसमें यह मिलती है कि बापा रावल् को एकलिंग का पुत्र बताया गया है—

एकलिग के एक सुतु, ताकौ बापा नामु ।
रावल बखत बिलूद हुव, अपूरब आठौ जामु ।।[80]

इसी प्रकार की और भी अनेक त्रुटियाँ इसमें पाई जाती हैं । अतएव इतिहास की दृष्टि से यह एक बिलकुल भ्रष्ट रचना है ।

परन्तु साहित्य की दृष्टि से यह ग्रथ पढने योग्य है । इसकी भाषा में सरसता और प्रवाह है । वर्णन में गति और वेग है—

---

78 मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ३६०

79 वही, पृ० ३६०

80. हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

धमक धसति धर धरति, धुकनि धरनी धीरजु तजि।
फटति फुटति छबि छुटति, टुटति खुर खुटति जुटति लजि ।।
चँपति कँपति तन तपति, ढपति जल छपति उछरति ।
ठिलति खिलति विलविलति,मिलति तल वितल तुच्छ भति।।
पायान रान अमरेस दल, कवि दयाल कल किति कहि।
छिन छिन छिपत कच्छप छकहु उत्तार हत्थ जिमि मत्थ अहि ।।[81]

(३२) हरिनाभ—ये जयपुर राज्यांतर्गत खडेला (बडा पाना) के निवासी और वहाँ के राजा केसरीसिंह के आश्रित थे। ये जाति के पारीक ब्राह्मण थे। शांडिल्य इनका गोत्र था। रचनाकाल सं० १७५४ है।[82] इन्होने 'केसरीसिंह-समर' नाम का एक ग्रंथ बनाया जिसमें शेखावत-वंश-प्रवर्त्तक राव शेखाजी से आरंभ कर राजा केसरीसिंह तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। केसरीसिंह ने औरंगजेब की हिंदू-हित-विघातिनी नीति का विरोध किया था। इस पर वह इनसे नाराज हो गया और सं० १७५४ में अपने सेनापति अब्दुल्ला खाँ को एक बडी सेना देकर इनके विरुद्ध लडने को भेजा। खंडेले के पास हरीपुरे के मैदान में भारी संग्राम हुआ जिसमें केसरीसिंह अपने अनेक योद्धाओ सहित वीरगति को प्राप्त हुए और उनकी चार राणियाँ उनके साथ सती हुईं।

केसरीसिंह-समर में छप्पय, हनूफाल, मोतीदाम, भुजंगप्रयात आदि विविध छंदो का प्रयोग किया गया है। इसकी पद्य-सख्या ५९१ है। ग्रंथ यद्यपि वर्णनात्मक है तथापि मार्मिक स्थलो पर कवि ने अपनी सहज रससिक्त लेखनी से अनेक सुन्दर चित्र उपस्थित किये है। युद्ध-वर्णन, सतीचरित्र-वर्णन आदि बड़े ही मनोहारी है। इसी प्रकार सती-परी-प्रश्नोतरी के वर्णन में भी कवि ने अपनी स्वाभाविक सूक्ष्मदर्शिता और काव्यशक्ति का अच्छा परिचय दिया है। रचना का नमूना यह है—

चढिकै तब राज निसान कियै, हय ऊपर पाखर डारि दियै।
तब ही अग सूरन कौच्र कसै, जमराज भयकर रूप जिसै ।।
जरिकै गज पाखर साज बनै, मनु पाय चलै सु पहार घनै ।
सजिकै सब तोपन अग्ग कियै, उडि खूग्न धूरिन छाय रियै ।।[83]

81. वही, पत्र ८९
82. उपाध्याय प्रगटचौ जबै कुल पारीख उजाल।
नाम क्रत्त साँचौ कह्यौ सवत चौवन साल ।।
—केसरीसिंह-समर, दूसरा प्रकरण, छद २०९
83. केसरीसिंह-समर, पहला प्रकरण, छद २०९

(३३) अभयराम—ये सनाढ्य जाति के कवि केशवदास के पुत्र थे और रणथभौर के समीपवर्त्ती बैहरन गाँव के रहनेवाले थे ।[84] इनके बनाये 'अनूपशृगार' ग्रंथ का पता है। यह स० १७५४ मे रचा गया था[85] । इसके अध्ययन से विदित होता है कि ये बीकानेर के महाराजा अनूपसिह के बडे कृपापात्र थे और उन्होने इनको 'कविराय' की पदवी प्रदान की थी[86] । उन्ही की आज्ञा से इन्होने इस ग्रथ का निर्माण किया था ।

अनूपशृगार रीति-काव्य है । इसमें ५५० से कुछ ऊपर छंद है जिनमें से आदि के ४० छदो में कवि ने अपने आश्रयदाता महाराजा अनूपसिह और उनके पूर्ववर्त्ती राजाओ का वृत्तात दिया है। तदनतर अपना वश-परिचय देकर मुख्य विषय प्रारंभ किया है ।

इसकी भाषा राजस्थानी से प्रभावित ब्रजभाषा है । रचना मधुर और काव्य-कला-पूर्ण है । उदाहरण—

सोहत सुपेत टीकी लगति ललाट नीकी
हँसति कपोल गाड मुख सोत साल की ।
कहै अभैराम कठ मोतिन की माल उर
बीच सुमनि को हार गोरी छबि हाल की ।।
जैसी चद चादनी मे बनी है सुपेत सारी
चली है प्यारी हो बडाई हस चाल की ।
कहाँ लौ बखानौ अभिसार यह रूप चारु
ससि हू की जोति सो मिलि है जोत भाल की ।।

---

84. खाभ पदारथ चद ये, जिनके केसवदास ।
मेर साहि सब विधि भलै, भाषा चतुर निवास ।।
अभैराम जिनकै भयै, सब कवि ताकै दास ।
रणथभौर गढ की तनी, गाव बैहरन वास ।।
जाति सनावड गोति करैया, अभै नाम हरि दीनौ ।
जासो कृपा करि महराजा, जब गिरथ यह कीनौ ।।
—अनूपरसाल, पद्य ४३–४५

85. सवत सतरैसे चौपना, ग्रथ जन्म जग जानि ।
—अनूपरसाल, पद्य ४८

86. कृपा करि महाराज ने, बकस्यौ बहुत बनाय ।
रोग हरे सब दुख गयौ, नाम दियौ कविराय ।।
—अनूपरसाल, पद्य ४७

(३४) मुरली—ये मेवाड राज्य के कोठारिया ठिकाने के रावत उदयभान के आश्रित थे । इनके लिखे 'अश्वमेध-कथा' और 'त्रिया-विनोद' नामक दो ग्रथो का पता है[87] । लेकिन इनसे इनके व्यक्तिगत जीवन पर विशेष प्रकाश नही पडता । केवल इतना ही सूचित होता है कि उक्त ग्रंथो को इन्होने क्रमशः मेवाड के महाराणा जयसिंह और कोठारिया के स्वामी चौहाण उदयभान के लिये बनाया था ।

'अश्वमेध-कथा' कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि विविध छंदो में लिखा हुआ एक वर्णनात्मक ग्रंथ है । इसकी छंद सख्या ७६३ है । यह स० १७५५ में लिखा गया था[88] । इसमें धर्मराज युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन है जो बहुत ही रोचक एवं प्रभावोत्पादक है ।

'त्रिया-विनोद' ग्रंथ बहुत बडा है । इसमें १५८१ छद है । इसका निर्माण-काल स० १७६३ है[89] । इसमें मदनपुरी के श्रीपाल नामक एक सेठ की व्यभि-चारिणी स्त्री की कहानी है । कहानी काल्पनिक है । इसके अतर्गत कई कथा-उपकथाएँ है जिनमें स्वैरिणी स्त्रियो का चरित्रोद्घाटन किया गया है ।

ये दोनो ग्रथ राजस्थानी से प्रभावित ब्रजभाषा में है । विषय की गह-राई इनमें कुछ कम देख पडती है पर है दोनो ही बहुत सरस और मार्मिक ।

(३५) आनन्दराम—नाजर आनन्दराम बीकानेर के महाराजा अनूप-सिंह के मुसाहब थे[90] । इनका रचना काल सं० १७६१ है । ये संस्कृत, ब्रज-भाषा, राजस्थानी आदि कई भाषाओं के विद्वान थे और गद्य एवं पद्य दोनों लिखते थे । इनके रचे तीन ग्रथ मिले है—भगवद्गीता भाषा टीका, गीता माहात्म्य भाषा टीका और एकादशी कथा भाषा ।

उपर्युक्त तीनो ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य में है और इस दृष्टि से बहुत उपयोगी है । गद्य का नमूना यह है—

---

87. राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, भाग १, पृ० १० और ३६

88. सतरैसे पच्चावने, कौतुक उत्तम वास ।
विद पष आठम वार रवि, कीनौ ग्रथ प्रकास ॥
—अश्वमेधकथा, पद्य ७६१

89. समत सत्रे तीरषट, कातिक सुदि सुभ मास ।
वार बुद्ध तिथि सप्तमी, कीनौ ग्रथ प्रकास ।।
—त्रियाविनोद, पद्य १३

90. ओझा; बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० २८५

प्रथम श्रीकृष्ण जू नै विचार किया । अर्जुन कौ देह अरु आत्मा कै विवेक तै सोक उपज्यौ । ऐसे जानि के ज्ञानोपदेस कें निमित्त श्री भगवान कहते है । हे अर्जुन जा वस्तु कौ सोक कर्यो ना चाहीयै ता वस्तु कौ तू सोक करत है । अरु तू बुद्धिवत कैसौ वचन कहत है पै बिन् समझचो हठ करे है । तातै जे बुद्धिवत विवेकी है ते मुए अरु जीवते को सोच नाही करत काहे तै जनम मरन दोनो मिथ्या है ।

(३६) प्रियादास—ये गलता के प्रसिद्ध महात्मा कृष्णदास पैहारी की शिष्य-परपरा में भक्तवर नाभादास के चेले थे । इनके बनाये दो ग्रथ मिलते है (१) भक्तमाल की टीका[91] और (२) भागवत् भाषा[92] । इनमें 'भक्तमाल की टीका' हिंदी साहित्य की बहुत प्रसिद्ध रचना है । इसका नाम 'भक्तिरसबोधिनी टीका' ह । इसका निर्माण इन्होने अपने गुरु नाभादास की इच्छानुसार स० १७६९ में किया था जैसा कि इनके अंतिम छंद से विदित होता है—

नाभा जू को अभिलाष पूरण लै कियो मै तो
ताकी साखी प्रथम सुनाई नीकै गाई कै ।
भक्ति विख्यात जाके ता ही को प्रकास कीजै
भीजै रग हियौ लीजै तनक लडाई कै ।।
सवत प्रसिद्ध दस सात सत उनहतर
फालगुण मास वदी सप्तमी बिताई कै ।
नारायणदास सुख-रासि भक्तमाल लै कै
प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाई कै ।।

भक्तिरसबोधिनी टीका में ६२४ छंद है जिनमें प्रायः सभी घनाक्षरी है । मूल ग्रथ में जिन भक्तो का वर्णन बहुत सक्षेप में हुआ है उन्हीं का प्रियादास ने विस्तारपूर्वक कथन किया है और उनके विषय में कुछ नवीन बातें भी लिखी है । इन नवीन बातो में कुछ ठीक है पर अधिकाश ऐसी है जो इतिहास की कसौटी पर खरी नही उतरती । उदाहरण के लिये मीराँबाई के प्रसंग को लीजिये । इसमें इन्होने मुगल सम्राट अकबर और मीराँ की भेंट का वर्णन किया है जिसमें काल-दोष स्पष्ट है । वास्तव में मीराँ-बाई और अकबर समकालीन नहीं थे । कुछ अन्य भक्तो के विषय में भी

---

91. श्यामसुन्दरदास; हस्तलिखित हिन्दी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, पृ० ९२
92. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० ३५९

इसी तरह की कपोल-कल्पित और अनैतिहासिक बातें लिखी मिलती हैं जो उनकी भक्ति की महिमा को बढाकर बतलाने के लिये लिखी गई प्रतीत होती हैं। इतना सब होते हुए भी ग्रथ उपयोगी और पठनीय है।

(३७) मानसिंह—ये उदयपुर के रहनेवाले जैन कवि थे। स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने इनको विजयगच्छ ग्राम का[93] निवासी और मिश्रबन्धुओ ने विजयगढ[94] का रहनेवाला बताया है। इन दोनो का आधार मानसिह कृत 'बिहारी-सतसई की टीका' की एक हस्तलिखित प्रति की यह पुष्पिका है—

"इति श्री बिहारीदास कृत सतसई। दोहरा सम्पूर्ण सतसईरा। टीका कृत विजैगछे कवि मानसिह जू। टीका कीनी उदयपुर मध्ये। ग्रथाग्रथ ४५०५ इति सख्या। सम्पूर्ण। शुभ भवतु। श्री श्री स० १७७२ वर्षे वैशाख वदि कृष्ण पक्षे द्वितीयाया लिखत प्रतापविजय लिपिकृत अजमेर मध्ये। श्रीरस्तु॥ श्री"॥[95]

परन्तु 'विजैगच्छ' किसी ग्राम विशेष का नाम नहीं है। वह जैन समाज के एक गच्छ अर्थात समुदाय विशेष का नाम है। इस प्रकार के गच्छ जैन समाज में ८५ हैं[96]। जैसे, तपागच्छ, खरतरगच्छ, सागरगच्छ, विमलगच्छ आदि। अतएव रत्नाकरजी की भूल तो स्पष्ट ही है। मिश्रबन्धुओ की भूल 'विजयगच्छ' के 'च्छ' को 'ढ' पढने के कारण हुई है। इसलिये इस पर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है।

मानसिंह नाम के एक जैन कवि मेवाड़ में और भी हो गये है जिनका लिखा 'राजविलास' ग्रथ प्रसिद्ध है। उनका परिचय पहले दिया जा चुका है। वे इनसे भिन्न कवि हैं। परन्तु रत्नाकरजी ने इन दोनो को एक व्यक्ति माना है और यह मानकर 'राजविलास' के रचनाकाल (सं० १७३४) को 'बिहारी-सतसई की टीका' का भी रचनाकाल स्थिर किया है[97]। परन्तु यहाँ उन्होंने भूल की है। 'राजविलास' के रचयिता मानसिंह और 'बिहारी-सतसई

---

93. नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग ६ अक १, पृ० १०१
94. मिश्रबधु-विनोद, पृ० ७७२ (भाग दूसरा)
95. नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग ६, अक १, पृ० १०२
96. रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज मारवाड, सन् १८९५ (पृ० १३१) मे ८५ गच्छो के नाम दिये गये है। परन्तु इनके अलावा भी कुछ गच्छ और है।
97. नागरीप्रचारिणी-पात्रिका, भाग ६, अक १, पृ० १०१-१०३

के टीकाकार मानसिह दोनो एक व्यक्ति नही हो सकते । क्योकि इन दोनो की भाषा-शैली सर्वथा भिन्न है । राजविलास की भाषा बहुत प्रौढ एव परिष्कृत है और उसमे सैकडो शब्द राजस्थानी भाषा के प्रयुक्त हुए है। जैसे—खाल, ठाण, सिघाला, पखाला, दुहेली, ककाल, दडबड, पीथल, खेतल, पसाव, अरदास, नाहर, आल, थाट, रिवू, मंगल, अबीह, नेगी, उतबग इत्यादि। इसके विपरीत-'बिहारी सतसई' की टीका की भाषा बहुत शिथिल है पर वह शुद्ध ब्रजभाषा है और उसमे एक शब्द भी कही राजस्थानी भाषा का प्रयुक्त नही हुआ है ।

मिश्रबन्धुओ ने इन दोनो मानसिहो को दो भिन्न व्यक्ति माना है । परन्तु उन्होने एक दूसरा भ्रम पैदा कर दिया है। वह यह कि 'बिहारी-सतसई के टीकाकार मानसिह का रचनाकाल स० १८२३ लिख दिया है[98] जो एक भारी भूल है । क्योकि 'बिहारी-सतसई की टीका' की दो ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ मिली है जो स० १८२३ से बहुत पहले की लिखी हुई है । एक की पुष्पिका ऊपर उद्धृत की जा चुकी है । दूसरी उदयपुर के सरस्वती भडार में है । उसका लिपिकाल स० १७७३ है[99]। अत' मिश्रबन्धुओ का बताया हुआ सवत् ठीक नही है । अनुमानत इनका रचना-काल स० १७७० है।

मानसिह कृत 'बिहारी-सतसई की टीका एक साधारण श्रेणी की रचना है। यह ब्रजभाषा गद्य में है । इसमें बिहारी के ७१३ दोहो की टीका की गई है। टीका क्या है, दोहो के अर्थ अपनी समझ के अनुसार कर दिये गये है जिनसे बिहारी के मर्म को समझने मे विशेष सहायता नहीं मिलती । मालूम होता है कि मानसिह 'बिहारी-सतसई' को नायक-नायिका-भेद का ग्रथ समझते थे। अतएव उन्होने बिहारी के प्रत्येक दोहे के भाव को खीचखाच कर राधाकृष्ण पर घटाने की चेष्टा की है जिससे अनेक स्थानो पर अर्थ का अनर्थ हो गया है। उदाहरण—

कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उडी जाउ कितऊ तऊ, गुडी उडायक हाथ ।।

98 मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ७७२

99. "इति श्री बिहारीकृत सतसही सपूर्ण समाप्त स० १७७३ वर्षे काती सुदि ८ शुक्रवासरे लिखतिया" (पत्र ११८)

टीका

श्रीकृष्ण मथुरा नगर तै श्रीराधाजु कौ सदेस कहि धीरज दिढ़ावै है ॥ कहा० ॥ मो म० ॥ तुम्ह हम्ह विछुरे तो कहा भयो । तुम्हारो हमारो तो मन एक ही सग रहै है ॥ उडी जा० कितहूँ दूर-तर उड़ी जाऊ हूँ ॥ गुडी उ० ॥ गुडी उडायक उडावनहारे के हाथ मैं हैं । गुडी अर उड़ावन हार एकठे ही मानीयै ॥ त्यु आपन मन करी एकठे ही है । बीछुरे नही । इत्यर्थ ॥[100]

और भी—

प्यासे दुपहर जेठ के, फिरे सबे जल सोध ।
मुरधर पाइ मतीर ही, मारू कहत पयोध ॥

टीका

श्रीराधाजु श्रीकृष्ण सौ खडित वै कहै है ॥ प्यासे० ॥ फिरे०॥ काम रूप दुपहर जेठ के प्यासे ॥ सबै सुदर गोपीरूप जल सबै ठौर सो धर फिरै ॥ मुर० ॥ मारू ॥ अहो श्रीकृष्ण तुम मरुधर देस के मारू पासे लोक त्यौ कुबरी मतीर फल मारू मूढ पयोधि ॥ पाइ समुद्र रूप महालक्ष्मी सी कहो हो । इत्यर्थ ॥[101]

फिर भी ग्रंथ महत्त्व का है, क्योकि ब्रजभाषा गद्य के इतिहास सबन्धी अध्ययन के लिये इसका उपयोग किया जा सकता है ।

(३८) अजीतसिंह—ये जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के पुत्र थे और उनकी मृत्यु से कोई तीन माह बाद सं० १७३५ में पैदा हुए थे। इनका जन्म होने के पूर्व ही मुग़ल सम्राट औरंगजेब ने इनके पैतृक राज्य पर अपना अधिकार कर लिया था और फिर इनका जन्म होने के बाद वह इनको मरवाकर इनके राज्य को बिलकुल निगल जाने की चेष्टा में था । परन्तु उसकी इस कुभावना का पता राठौड़ दुर्गादास आदि इनके कुछ स्वामि-भक्त सरदारो को लग गया था । इसलिये उन्होंने इनको जोधपुर के बाहर

100. स० भं० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पृ० १६
101. वही; पृ० ११७

छिपाये रखा और इनकी बाल्यावस्था का अधिकांश मेवाड़ तथा सिरोही राज्यो में व्यतीत हुआ ।

परन्तु औरंगज़ेब के मरते ही इन्होने अपने सरदार-सामंतों की सहायता से जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लिया और मुग़ल अधिकारियो को वहाँ से निकाल बाहर किया ।

महाराजा की मृत्यु एक अत्यन्त करुणाजनक स्थिति में हुई । एक दिन जब कि ये अपने रनवास में सोये हुए थे इनके द्वितीय पुत्र बखतसिंह ने इनको मार डाला । यह दुर्घटना सं० १७८१ आषाढ सुदि १३ को हुई । महाराजा के शव के साथ इनकी कई राणियो, उपपत्नियों, दासियो, नाजिरों आदि ने प्राण दिये[102] । इनका दाह-संस्कार मंडोर में हुआ जहाँ एक थड़ा (स्मारक) अब तक विद्यमान है जो विशाल और दर्शनीय है ।

महाराजा अजीतसिंह बडे वीर और कष्ट-सहिष्णु राजा थे । साथ ही उदारता की मात्रा भी इनमें यथेष्ट पाई जाती थी । समय-समय पर इन्होंने अपने सरदारों, ब्राह्मणो, चारण-भाटों आदि को गाँव तथा भूमि प्रदान कर उनका समुचित सत्कार किया था । परन्तु इनमें एक बहुत बडा अवगुण यह था कि ये कान के कुछ कच्चे थे । इसलिये लोगों के बहकाने में जल्दी आ जाते थे । बहकाने में आकर ही इन्होने अपने सच्चे और स्वामिभक्त सहायक राठौड़ दुर्गादास को अपने देश से निर्वासित कर दिया था जिसके कारण इनकी निंदा अभी तक चली आती है—

(क) महाराज अजमाल री, जद पारख जाणीह ।
दुरगो देसाँ काढियौ, गोलाँ गागाणीह ।।

(ख) अण घर आही रीत, दुरगो देसाँ काढियौ ।

महाराजा डिंगल और पिंगल दोनों में निष्णात थे । इनके बनाये हुए पिंगल भाषा के ग्रंथों के नाम ये हैं—गुणसागर, भाव-विरही और दुर्गापाठ भाषा[103] ।

---

102. ओझा; जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ० ६००

103. मिश्रबंधु-विनोद में इनके बनाये अन्य ग्रन्थो के नाम इस प्रकार मिलते हैं: राजरूप का ख्याल, निर्वाणी दोहा, ठाकुराँ रा दोहा, भवानी सहस्रनाम और फुटकर दोहे ।

इनकी स्वच्छ और चलती हुई ब्रजभाषा पर अच्छा अधिकार था । इनकी कविता बहुत कोमल एवं रसीली है और कला उसमें अपने प्रकृत सौंदर्य के साथ बिहार कर रही है ।

(३६) बुधसिंह—ये हाडा राजपूत बूँदी-नरेश रावराजा अनिरुद्ध-सिंह के पुत्र और भावसिंह के पौत्र थे । इनका जन्म सं० १७४२ में हुआ था और अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् स० १७५२ में बूदी के राजसिहासन पर आसीन हुए थे । ये बडे वीर, समर-पटु और आत्माभिमानी पुरुष थे । मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर उसके बेटो में दिल्ली के राज-सिंहासन के लिये जो संग्राम हुआ उसमें बहादुरशाह (शाहआलम) की विजय इन्हीं के कारण हुई थी । महामति कर्नल टॉड के शब्दो में "केवल बुधसिंह के पराक्रम ही से शाहआलम अपने प्रतिद्वंद्वियो को जीतकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ सका । कोटे का रामसिंह और दतिया का दलपत बुंदेला तोप के गोलो से उड गये और शाहजादा आजम अपने बेटे बेदारबख्त समेत इस लडाई में बुधसिंह की तलवार खाकर सदा के लिये कब्र में सो गया ।" इससे प्रसन्न होकर शाहआलम ने इनको महाराव राजा की पदवी, पाँच हजारी मनसब, बहुत से आभूषण और गागरौन, छबडा, शाहाबाद, शेरगढ आदि ५४ परगने दिये[104] ।

इनका देहान्त स० १७६६ में हुआ था । इनके छह पुत्र थे जिनमें से चतुर्थ पुत्र उमेदसिंह इनके उत्तराधिकारी हुए ।

महाराव राजा बुधसिंह कला एव सौन्दर्य के उपासक और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे । इनका बनाया हुआ 'नेहतरग' हिंदी-साहित्य की एक अनमोल निधि है । यह एक रीति-काव्य है । इसका निर्माण सं० १७८४ में हुआ था जैसा कि इनके अंतिम दोहे से स्पष्ट है—

सतरह सै चौरासिया, नवमी तिथि ससिवार ।
शुक्ल पक्ष भादौ प्रगट, रच्यौ ग्रथ सुखसार ।।

नेहतरंग १४ खंडो में विभाजित है जिनको तरगें नाम दिया गया है । इसमें कुल ४४६ पद्य हैं, लक्षण दोहो में और उदाहरण कवित्त-सवैया में दिये गये है । विषय-वस्तु का विभाजन चौदह तरंगो में इस प्रकार हुआ है—

104. मुशी देवीप्रसाद; राजरसनामृत, पृ० ६६

तरंग	विषय	पद्य सख्या
प्रथम	अनुकूलादि नायक पद्मन्यादि नायिका निरूपण	२७
दूसरी	चतुरविधि दरसन नि०	१३
तीसरी	नायिका मुग्धा, मध्या, प्रौढादि नि०	४५
चौथी	अष्ट नायिका नि०	२०
पाँचवी	मिलन स्थान नि०	२४
छठी	सखी जन कर्म चेष्टा स्वयं दूती नि०	८५
सातवी	मान मोचन विविध नि०	३४
आठवी	प्रवास विरह नि०	५४
नवीं	भाव-हाव नि०	५५
दसवी	रस निरूपण नि०	३६
ग्यारहवीं	चतुरविधि कवित्त वृत्ति आदि नि०	२०
बारहवीं	छह रितु नि०	१३
तेरहवी	पिंगल मत छद नि०	१६
चौदहवी	अलकार नि०	४

ग्रथ अमुद्रित होने से अभी तक प्रकाश में नही आ पाया है। परतु साहित्य की दृष्टि से यह एक निष्कलंक रचना है। भाषा, भाव, काव्य-सौष्ठव सभी का इसमें सुन्दर संयोग हुआ है। बुधसिह के जीवन का अधिकाश भाग रणांगण में और राजनीतिक तथा घरेलू षड्यत्रो में व्यतीत हुआ था। साहित्य-रचना के लिये ऐसे प्रतिकूल वातावरण मे भी उन्होने 'रसतरग' जैसी अमूल्य कृति का निर्माण किया यह उनके लिये कम गौरव की बात नही है। 'रसतरग' में से दो कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

एक समै बलि राधिका नै कुबिजा को प्रसग कह्यौ हितहू से।
बोलि हँसी मिलि सग सखी कछु जाहर कै हरि सगजहू से॥
ता छिन की उपमा इमि भाइ रही मिलि कै उन आननहू से।
सोधि सबे बसुधा की सुधा उपटी मनु सोधि सुधावरहू से॥

ऊधौ एक सुनिबै है अरज हमारी और
एते पर उनहूँ कै मन मै न आती है।
भौन भयौ भाखसी सौ साखसी सौ दिन भयौ
राकसी सी रैनि भई देखै न सुहाती है॥

कहियो जू एती दई मन मे जौ आवै क्यो हू
देखन जो पावूँ केती कहिबे न आती है ।
चढि चढि नेह निधि कढि कढि लाज हम
सूखै पानी सफरी लौ बढि बढि जाती है ।।

(४०) **श्रीकृष्ण भट्ट**—ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मण था। इनका जन्म सं० १७२५ में हुआ था। ये पहले बूँदी के महाराव राजा बुधसिंह (सं० १७५२—९६) के आश्रित थे। परतु बाद में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह (स० १७५६—१८००) इनको उनसे माँगकर आमेर ले आये थे[105]। ये सस्कृत एवं भाषा के परम विद्वान और मत्र-शास्त्र के विचक्षण ज्ञाता थे। इनके मंत्र-चमत्कार सबंधी अनेक कथाएँ लोगो के मुँह से सुनने में आती है। कवि भी ये पूरे थे। इनकी कविता से प्रसन्न होकर महाराजा जयसिंह ने इनको 'कवि कलानिधि' की उपाधि और एक गाँव उदक में दिया था।

भट्टजी सस्कृत और ब्रजभाषा दोनो मे काव्य-रचना करते थे। इनके बनाये हुए ब्रजभाषा के ग्रन्थो के नाम ये हैं—

(१) अलंकारकलानिधि (२) सांभर-युद्ध (३) जाजव-युद्ध (४) बहादुर विजय (५) वृत्तचंद्रिका (६) शृंगाररसमाधुरी (७) विदग्धरसमाधुरी (८) जयसिंह-गुण-सरिता (९) रामचंद्रोदय (१०) रामरासा (११) दुर्गा भक्तितरंगिनी (१२) नखशिख वर्णन (१३) तैत्तरीयादि उपनिषदो का अनुवाद।[106]

(४१) **नंदराम**—ये मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के आश्रित कवि जाति के ब्राह्मण थे। इनके 'शिकारभाव' और 'जगविलास' नामक दो ग्रंथो का पता है जो क्रमशः सं० १७९० और १८०२ में लिखे गये थे।[107]

---

105. बूँदीपति बुधसिह सौ, लाये मुख सौ जाँचि ।
रहे आइ आंबेर मे, प्रीति रीति बहु भाँति ।।
—राधारूप-चद्रिका

106. इनके रचे सस्कृत-ग्रथो के नाम ये है: (१) वेदान्तपंचविंशति (२) सुदरीस्तवराज (३) ईश्वर-विलास महाकाव्य और पद्यमुक्तावली।

107. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, भाग पहला, पृ० १७०

शिकारभाव में ६४ छंद है जिनमें महाराणा जगतसिंह के आखेट का वर्णन किया गया है। जगविलास ४०४ छदो का बडा ग्रथ है। इसमें महाराणा जगतसिंह की दिनचर्या, उनके वैभव, राज-प्रबध आदि का वृत्तान्त है। ये दोनो ग्रंथ ब्रजभाषा में है और साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के साथ-साथ इतिहास की दृष्टि से भी उपयोगी है। नदराम का एक छप्पय यहाँ दिया जाता है :

तिही समय श्रीरान, मान अति मोद महामन।
भूषन बसन मँगाय, पहरि सब तास तेज तन ॥
सर सरूप सोहत, काम कोटिक सम राजै।
नग झगमगत अपार, तेज पूरन गुन साजै ॥
सब भाँति भाँति बानिक बनै, गिनै जात किन पै कबहि।
उद्दित प्रकास जनु उदयगिरि, सहस किरन सोहत सहि ॥

(४२) राजसिंह—ये किशनगढ़ के महाराजा मानसिंह के पुत्र और महाराजा रूपसिंह के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १७३१ में हुआ था। ये बड़े वीर और नीति-निपुण राजा थे। औरगजेब की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली के राजसिंहासन के लिये जब उसके पुत्रो में युद्ध हुआ तब ये मुअज्ज़म के पक्ष में लड़े थे और इस लडाई की विजय का श्रेय इन्ही को मिला था। फिर जब मुअज्ज़म के मरने पर स० १७६६ मे उसके चारो बेटे आपस में लड़ने लगे ये शाहजादे अजीमुश्शान के साथ थे। इन्होने अत समय तक उसका साथ दिया और जब वह अपने हाथी समेत रावी नदी में डूबकर मर गया तब निराश होकर घर लौटे। इनकी मृत्यु स० १८०५ में हुई थी।

महाराजा राजसिंह कवि थे। कविता करना इन्होने अपने आश्रित कवि वृन्द से सीखा था। इनके बनाये दो ग्रथो का पता है—बाहुविलास और रसपायनायक। बाहुविलास में श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है। रसपायनायक में अविवेकिनी और विवेकिनी नामक दो सखियो का संवाद लिखकर नायको के गुणावगुण बताये गये हैं।

मिश्रबधु-विनोद में इनके 'राजप्रकाश' नामक एक और ग्रथ का उल्लेख हुआ है।[108] परतु वह ग्रथ इनका बनाया हुआ नही है। किशोरदास नामक एक भाट का लिखा हुआ है और डिगल भाषा का ग्रथ है। उसमें मेवाड़

---

108. मिश्रबधु-विनोद, पृ० ५४१ (भाग दूसरा)

के इतिहास-प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह (प्रथम) के युद्ध-पराक्रम का वर्णन है।

इनके फुटकर पद भी अनेक मिलते हैं जिनमें बड़ी स्वाभाविकता और तल्लीनता पाई जाती है। एक पद यहाँ दिया जाता है—

ए अँखियाँ प्यारे जुल्म करै।
यह महरेटी लाज लपेटी झुकि झुकि घूमैं भूमि परै।
नगधर प्यारे होउ न न्यारे हा हा तो सौ कोटि करै॥
राजसिंह को स्वामी नगधर बिनु देखे दिन कठिन परै॥

(४३) ब्रजदासी—ये जयपुर राज्य के लिवाण ठिकाने के कछवाहा राजा आनंद राम की पुत्री थी। इनका विवाह सं० १७७६ में किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह के साथ हुआ था।[109] इनका वास्तविक नाम ब्रजकुँवरि था पर कविता में ये अपना नाम ब्रजदासी रखती थी। इन्होंने श्रीमद्भागवत का ब्रज भाषा में अनुवाद किया जो 'ब्रजदासी-भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है। अनुवाद बहुत सुंदर हुआ है और भक्त लोगों में इसका प्रचार भी यथेष्ट है। इसकी भाषा बहुत सीधी-सादी ब्रजभाषा है जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी का भी अंश दृष्टिगोचर होता है।

(४४) जोधराज—ये आदिगौड़ कुलोत्पन्न अत्रि गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम बालकृष्ण था। ये अलवर राज्य के नीमराणा ठिकाने के जागीरदार चंद्रभानु के आश्रित थे जिनके कहने से इन्होंने 'हमीररासौ' का निर्माण किया जिसकी समाप्ति सं० १७८५ में हुई थी:

चंद्र नाग बसु पंच गिनि, संबत माधव मास।
शुक्ल सुतृतिया जीव युत, ता दिन ग्रंथ प्रकास॥

हमीररासौ एक वीर रस-प्रधान काव्य है जो ९६९ पद्यों में समाप्त हुआ है। इसमें रणथंभौर के चौहाण राजा हंमीर और सुलतान अलाउद्दीन खिल्जी की लड़ाई का वर्णन है। यह पृथ्वीराज रासौ की शैली पर रचा गया है और उसी की भाँति ऐतिहासिक त्रुटियों से भरा हुआ है। उदाहरणार्थ इसमें हंमीर का जन्म सं० ११४१ बताया है और कहा गया है कि अलाउद्दीन

109. मुँशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० ६४

का जन्म भी हमीर के साथ ही हुआ था। [110] परतु यह सवत् इतिहास-पुष्ट नहीं है। इसी प्रकार हमीर की आत्म-हत्या तथा अलाउद्दीन का समुद्र में कूद कर मर जाने की कथाएँ भी अनैतिहासिक और निराधार है। अतएव इतिहास की दृष्टि से हमीररासौ का मूल्य नगण्य है।

परतु साहित्य की दृष्टि से यह एक मूल्यवान रचना है। इसकी भाषा-शैली सरस और चित्ताकर्षक है। कविता मनोहर और वीरोल्लासिनी है। इसका मुख्य रस वीर है पर शृगार आदि दो एक अन्य रसो की छटा भी इसमें अच्छी दिखाई देती है।

(४५-४६) **दलपतिराय और बंसीधर**—ये दोनो कवि अहमदाबाद के रहनेवाले थे। इनमे बसीधर जाति के श्रीमाली ब्राह्मण और दलपतिराय महाजन थे:—

मेदपाट श्रीमाल कुल, बिप्र महाजन काय।
बासी अमदाबाद के, बसी दलपतराय ॥ [111]

मेवाड के महाराणा जगतसिह (द्वितीय) की छत्रछाया में इन्होंने 'अलकार रत्नाकर' नामक ग्रन्थ बनाया था। हिंदी के कुछ गण्य-मान्य विद्वानो ने इस ग्रन्थ का निर्माण-काल स० १७९२ बताया है जो अशुद्ध है। [112] वास्तव में यह ग्रन्थ स० १७९८ में लिखा गया था जैसा कि इसी के एक दोहे से सूचित होता ह। वह दोहा इस प्रकार है—

सतरे सै अठयानवै, माह पक्ष सितवार।
सुभ बसत पाचै भयौ, यहै ग्रथ अवतार ॥ [113]

---

110 ससि वेद रुद्र सवत गिनौ, अग खाभ्र खित साक।
दक्षण अयन सु सरद ऋतु, उपजे गए न नाक ॥
गजनी गौरी शाह सुत, भय अलावदी साय।
ताही दिन रणथभ गढ, जन्म हमीर सु आय ॥
—हमीररासौ, पद्य १७२—१७३

111 अलकार-रत्नाकर, पृ० २

112 प० रामचद्र शुक्ल, हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० २४४। डा० भागीरथ मिश्र, हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास, पृ० ४१

113. अलंकार-रत्नाकर, पृ० ३

'अलकार-रत्नाकर' महाराजा जसवर्तासिह कृत 'भाषाभूषण' की एक तरह से टीका है। 'भाषाभूषण' में इन कवियो को कुछ दोष दिखाई दिये जिनके परिहार के लिये यह ग्रन्थ रचा गया था—

कीने रसमय रसिक कवि, सरस बढाय बिबेक ।
छाया लहि गिरिवान की, भाषा ग्रथ अनेक ।।
तदपि अलंकृति ग्रथ कौ, काहू कवि नहि कीन ।
भाषाभूषण है जऊ, कहूँक लच्छन हीन ।।
या तै ताहि सुधारि कै, देख कुबलयानद[114] ।
अलकार-रत्नाकर सु, किय कवि आनँदकद ।।

इसमें कुल ५२३ छंद है जिनको नीचे लिखे अनुसार चार तरंगो में विभक्त किया गया है—

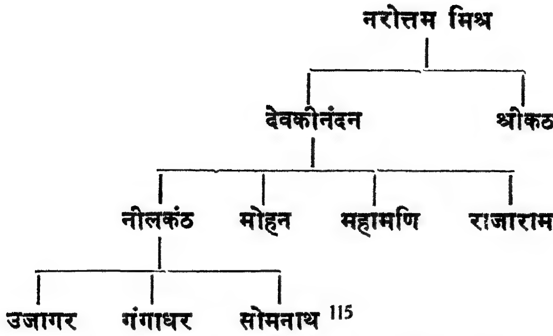
नाम तरग	पद्य सख्या
पीठिका निरूपण	२२
अलंकार सत निरूपण	४३२
रस प्रमाण निरूपण	४२
शकर निरूपण	२७

इन ५२३ छदो में दलपतिराय और बंसीधर के छद बहुत थोड़े है, अधिकाश दूसरे कवियो के है जिनको उदाहरण मे रखा गया है। परतु जितने भी है वे परम उत्कृष्ट एव मनोहर है और इन दोनों कवियो के अलंकार विषयक गहन ज्ञान तथा काव्य-नैपुण्य का परिचय देते है। अपने विषय को स्पष्ट करने के लिये इन्होने स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग किया है। मिश्रबंधुओ ने इनको पद्माकर की कोटि में रखा है जो उचित है। वास्तव में इनकी कविता पद्माकर की याद दिलाती है।

(४७) सोमनाथ—रीतिकालीन कवियो में कवि सोमनाथ का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—

---

114. वही, पृ० २



ये भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह के दरबारी कवि थे और उनके कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के पास रहा करते थे।[116] इनकी रचनाएँ सं० १७९४ से सं० १८०९ तक की मिलती है। अतएव लगभग यही इनका रचनाकाल समझना चाहिये।

सोमनाथ संस्कृत एवं भाषा के उद्भट विद्वान और ज्योतिष के सुज्ञाता थे। इनके बनाये ग्रंथों के नाम ये हैं--

(१) रसपीयूषनिधि (२) सुजान-विलास (३) माधव-विनोद (४) कृष्ण-लीलावली (५) पंचाध्यायी (६) दशमस्कंध भाषा (७) ध्रुव-विनोद (८) रामकलाधर (९) वाल्मीकि रामायण (१०) अध्यात्म रामायण (११) अयोध्याकाँड (१२) सुन्दरकांड [(१३) ब्रजेन्दु-विनोद (१४) रस विलास और (१५) रामचरित्र-रत्नाकर।

इनमें 'रसपीयूषनिधि' इनका बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है और इसी पर इनकी ख्याति अवलंबित है। यह हिंदी के काव्य-शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट ग्रथो में से है। इसकी रचना सं० १७९४ में हुई थी। यह इसके अन्तिम दोहे से प्रकट है--

सत्रहसै चौरानवो, सवत जेठ सुमास।
कृष्ण पक्ष दसमी भृगो, भयो ग्रथ परकास ।।

ग्रंथ बाईस तरंगो में विभक्त है जिनमें काव्य के विविध अंगो का बहुत विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया गया है। ऐसा विवेचन देव, श्रीपति, दास इत्यादि हिन्दी के अन्य दो-चार ही कवि कर पाये है। विशेषकर नायिका-भेद-वर्णन इन्होंने बहुत उत्तम रीति से किया है। उसमें नवीनता है और सरसता भी।

115. मिश्रबंधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६४७

116. वही; पृ० ६४८

हिंदी साहित्य में सोमनाथ कृत 'रसपीयूषनिधि' विशेष प्रसिद्ध है और इतिहास-ग्रंथों में इसी की चर्चा अधिक देखने मे आती है। इसलिये लोग इनको केवल शृंगार रस का कवि समझते है। परतु ये वीर रस के वर्णन में भी उतने ही प्रवीण थे जितने शृगार रस के वर्णन में। यह बात इनके 'सुजान विलास'[117] ग्रथ से स्पष्ट है जिसके प्रारभ में इन्होने अपने आश्रयदाता राजा बदनसिंह और उनके पुत्र सूरजमल आदि की वीरता का अत्यन्त सजीव और फडकता हुआ वर्णन किया है। एक उदाहरण लीजिये--

प्रबल प्रताप दावानल सौ विराजै जोर
अरिन के पारें रोरि धमक निसाने की।
ठट्ठ मरहट्ठा के निघट्टि डारे बाननि सो
पेसकस लेत है प्रचड तिलँगाने की॥
सोमनाथ कहै सिह सूरज कुमार जाकौ
क्रुद्ध त्रिपुरारि कौ सौ लाज बरबाने की।
चढि कै तुरङ्ग जङ्ग रङ्ग करि सेलनि सो
तोरि डारी तीखी तरवारि तुरकाने की॥

(४८) सूरत मिश्र—ये आगरा-निवासी कनौजिया ब्राह्मण सिंहमणि मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७४६ के लगभग हुआ था।[118] ये जहाँनाबाद के नसरुल्ला खां के आश्रित थे और जयपुर, बीकानेर आदि राज्यो के दरबारी कवि भी रहे थे। नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टों इत्यादि में इनके रचे निम्नलिखित १६ ग्रथ बताये गये है--

(१) अलंकारमाला (२) बिहारी-सतसई की अमरचंद्रिका टीका (३) कविप्रिया की टीका (४) नखशिख (५) रसिकप्रिया का तिलक (६) रससरस (७) प्रबोधचद्रोदय नाटक (८) भक्तिविनोद (९) राम चरित्र (१०) कृष्णचरित्र (११) रस-ग्राहक-चद्रिका (१२) रसरत्नमाला

---

117. यह सस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रथ 'सिहासनद्वात्रिंशिका' का अनुवाद है।

118. नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का विवरण' मे इनको जोधपुर के महाराजा जसवतसिह का शिक्षक बताया गया है जो एक भ्रम है। महाराजा जसवतसिंह का देहान्त स० १७३५ मे हुआ था। उस समय तक तो सूरत मिश्र पैदा भी नही हुए थे।

(१३) सरसरस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) बैताल पर्चावसति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला और (१९) शृगारसार।

इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रंथ का पता हाल ही में लगा है जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसक अतिरिक्त अपने 'शृगारसार' ग्रथ मे सूरत मिश्र ने श्रीनाथ विलास, भक्तमाला, कामधनु कवित्त, कवि-सिद्धान्त और छदसार इन पाच और ग्रथो का उल्लेख किया है। परतु इनमे से केवल 'छदसार' अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नही है।

उपर्युक्त ग्रथो मे से कुछ के विषय में जो भ्रांतियाँ हिन्दी के विद्वानो में फैली हुई है प्रसगवश उनका भी उल्लेख यहाँ पर कर देना उचित जान पडता है।

पहली भ्रान्ति यह है कि रससरस और सरसरस, भक्तिविनोद और भक्तविनोद, रसरत्नमाला और रसरत्नाकरमाला, कवि-सिद्धान्त और काव्य सिद्धान्त, दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ माने जा रहे है। परंतु ये दो भिन्न रचनाएँ नही है; एक ही रचना के दो नाम है। ये भूलें कुछ तो हस्तलिखित प्रतियों को ध्यानपूर्वक न पढने के कारण हुई हैं और कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ ही ऐसी है जिनमें एक ही ग्रंथ का नाम दो प्रकार से लिखा मिलता है।

दूसरी भ्रान्ति यह है कि रससरस अथवा सरसरस को सूरत मिश्र की कृति माना जा रहा है। वास्तव मे यह ग्रथ राय शिवदास का लिखा हुआ है जैसा कि इसकी प्राचीन लिखित प्रतियो की पुष्पिकाओ में स्पष्ट सकेत किया गया है।[120] इसके अतिरिक्त इस ग्रथ के अतिम भाग मे राय शिवदास ने

---

119. इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकानेर के वृहत् ज्ञानभडार मे है।

120. "इति श्री राय शिवदास विरचिते सरसरस ग्रथे नाम निरूपणो नाम अष्टमो विलास सपूरन समापृत श्रीरस्तु किल्याणमस्तु ।। सुभभवत् महाराजा धिराज महाराणा श्री जगतसिहजी विजै राजै ग्रथ लिखायत कवि नदराम। तस्य आज्ञा थी लिखत दसपुर ज्ञाति पडित सभु। स० १७९५ रा वर्षे मास प्रथम आस्वीन सुद ६ भृगुवासरे। सुभभुयात्।"

"इति श्री राय शिवदास विरचित सरसरस ग्रथ रस निरूपणो नाम अष्टमा विलास सपूरन समापता। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।। सुभभवत। महाराजाधिराज महाराणा श्रीअरिसिहजी विजै राज्यै लिखत साहा सूरजमल हरपालोत स० १८१९ वर्षे फागुण सुदी १० भोमवासरे लिखत श्री उदेपुर मध्ये ।। सुभभुयात।"

स्वयं लिखा है कि यह ग्रंथ मेरा बनाया हुआ है और इसके प्रणयन में प्रवीन इत्यादि कुछ अन्य कवियो की भी सम्मति रही है तथा सूरत मिश्र के तो कुछ कवित्त भी इसमें रखे गये हैं:—

एक समै मधि आगरै, कवि समाज को जोग ।
मिल्यौ आइ सुखदाइ हिय, जिनकी कविता जोग ॥
तब सब ही मिलि मत्र यहै,कियौ कविनु बहु जानि ।
रचियै ग्रथ नवीन इक, नये भेद रस आनि ॥
कवि अनेक मति मै हुतै, पै मुख कवि परबीन ।
जाकै समत सौ भयौ, पूरन ग्रथ नवीन ॥
सूरति राम सुकवि सरस, कान्यकुबिज बहु जान ।
बासी ताही नगर कौ, कविता जाहि प्रमान ॥
केतक धरै सुग्रथ मे, वर कवित्त कविराइ ।
ताही सौ गभीरता, अरथ बरन दरसाइ ॥
आठौ रस रसभेद मै, जै बरनै मति ठानि ।
राजनीति मे सभवै, तै मति लीजौ मानि ॥
सत्रह मै चौरानवै, सवत सुभ वैसाख ।
भयौ ग्रथ पूरन सु यह, छठ ससि पुष सित पाख ॥

तीसरी भ्रान्ति 'बिहारी-सतसई' की अमरचद्रिका टीका के सबध में है। मिश्रबंधु आदि विद्वानो का कहना है कि यह टीका जोधपुर के महाराजा अमरसिंह के नाम पर लिखी गई थी।[121] परतु उनका यह कथन निर्मूल है। जोधपुर में अमरसिंह नाम का कोई राजा हुआ ही नही है। सच तो यह है कि जिन अमरसिंह के लिये यह टीका बनाई गई थी वे जाति के ओसवाल महाजन थे।[122]

चौथी भ्रान्ति मुंशी देवीप्रसाद, डा० गौरीशकर-हीराचद ओझा आदि विद्वानो के कारण हुई है जिन्होने रसिकप्रिया की जोरावरप्रकाश टीका

121. मिश्रबंधु-विनोद, पृ० ५५५
122. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, भाग दूसरा, पृ० १६३

को बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह की रचना बतलाया है।[123] परतु यह टीका वास्तव में सूरत मिश्र ही की बनाई हुई है, जोरावरसिंह की नही है। महाराजा जोरावरसिंह से इसका सबध केवल इतना ही है कि यह उनके अनुरोध से लिखी गई थी और इसलिये इसका नाम 'जोरावरप्रकाश' रखा गया है। इन बातो का उल्लेख इस टीका के प्रारंभ में हुआ है.—

बीकानेर प्रसिद्ध है, अति पुनीत सुभ धाम।
लछिमीनारायन जहाँ, इष्ट परम अभिराम ॥
सेव देव जगबदन की, जहाँ करत चित लाय।
देवि नाग-नेची जहाँ, अनुदिन रहत सहाय ॥
दुख हरनी करनी सुखहि, करनी मात प्रसिद्ध।
सब गुन की चरचा जहाँ, सदा धर्म की वृद्धि ॥
श्रीजोरावरसिह जू, राज करत तिहि ठौर।
सब विद्या मे अति निपुन, जिन समान नहि और ॥
वैद्यक जोतिष न्याय अरु, कविता रस मे लीन।
तिन कवि सूरत मिश्र पै, कृपा नेह अति कीन ॥
बहुविधि सौ सनमान करि, कही एक दिन बात।
पोथी केशवदास की, सबै कठिन विख्यात ॥
तिन मे यह रसिकप्रिया, अति गभीर है सोइ।
तिहि टीका ऐसी करौ, ज्यो समुझै सब कोइ ॥
तब तिनकै हित यह रच्यौ, अति विस्तार विलास।
नाम धरचौ या ग्रथ को, जोरावरपरकास ॥ [124]

सूरत मिश्र ब्रजभाषा गद्य और पद्य दोनो लिखते थे। इनकी भाषा-शैली सुलझी हुई और सरस है। वैसे इन्होने सभी रसो में मनोहर कविता की है पर श्रृंगार रस के वर्णन में इनको विशेषकर अच्छी सफलता मिली है। इनके काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि उसे पढकर मन में किसी प्रकार की वासना का प्रादुर्भाव नही होता, बल्कि स्वच्छ भावो का

123. राजरसनामृत, पृ० ५० । बीकानेर राज्य का इतिहास, पृ० ३२२
124. स० भ० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १.

स्फुरण होता है। इनके 'भक्ति-विनोद' में से दो कविताए यहाँ उद्धृत की जाती है जो इनकी भाषा, कविता आदि का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है :–

फागुन के दिन बावरे ये इनमे न सयानपना निबहै है ।
काम दुहाई रही फिरि कै अब कोउन काहूकी कूक लहै है ॥
आय कै रगनि सौ भरि है टरिहै नही नागर साची कहै है ।
चोरी नही बरजोरी नही रहि होरी मै कौन धौ कोरि रहै है ॥

देख्यौ नद नद आजु सोभा को सदन ए री
सुन्दर बदन तामै झलकै रदन है ।
कैसे मनरजन बिराजै द्रिग अजन सौ
कजन के गजन विसालता अयन है ॥
सूरत सुकवि छबि देखै बनि आवै और
कहा कहौ एक रस अद्‌भुत सघन है ।
नवनीत प्रिय जू की नव रीत देखन मै
माखन चुरावै अरु चोरयौ जात मन है ॥

(४९) **नागरीदास**–ये किशनगढ़ के महाराजा राजसिह के पुत्र और महाराजा मानसिह के पौत्र थे। इनका जन्म स० १७५६ में हुआ था। ठाकुर शिव सिह [125] तथा डा० ग्रियर्सन [126] ने इनका जन्मकाल स० १६४८ लिखा है जो अशुद्ध है। इनका वास्तविक नाम सावंतसिह था। कविता मे नागर, नागरी, नागरिया और नागरीदास लिखा करते थे। अपने पिता के पाँच पुत्रो मे ये तीसरे थे। इनका विवाह भानगढ के राजा यशवतसिह की पुत्री से हुआ था। इनसे इनके चार संतति हुई, दो पुत्र और दो कन्याएँ। इनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम सरदारसिह था।

नागरीदास बचपन से ही शूरवीर थे। इन्होने दस वर्ष की बाल्यावस्था मे एक मदोन्मत्त हाथी का सामना कर उसे कृपाण की एक ही चोट से विचलित कर दिया था और तेरह वर्ष की आयु में बूदी के हाडा जैतसिह को मारा था। अठारह वर्ष की उम्र मे इन्होने थूँण की गढ़ी जैसे अभेद्य दुर्ग को जीतकर लोगो को चकित कर दिया था। दक्षिणी मल्हारराव होलकर से भी इनका

125. शिवसिंह–सरोज, पृ० १७२
126. दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव हिंदुस्तान, पृ० ३३

सामना हुआ था और लडना स्वीकार करके भी इन्होंने उसे 'चौथ' देना स्वीकार नही किया था। इस प्रसग का यह दोहा राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है—

बाजीराव मल्हार सौ, कहतो गयो कथाह ।
और राव सब राव है, सावत बात अथाह ।।

इन्होने दो अगुल चौडे बाढवाली एक नये ढग की तलवार का आविष्कार किया था जो 'सावतशाही बाढ' कहलाती है।

इनके पिता महाराजा राजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सुखसिह राज-सिहासन का मोह छोड़कर साधु हो गये थे [127] और द्वितीय पुत्र फतहसिंह का देहान्त पिता के जीवनकाल में ही हो गया था। [128] अतएव किशनगढ़ की राजगद्दी पर अब सावतसिंह का हक पहुँचता था। परन्तु दैव-दुर्विपाक से इनको एक दिन के लिए भी राज्य-सुख भोगने का अवसर नही मिला। बात यह हुई कि स० १८०५ में जब इनके पिता महाराजा राजसिह की मृत्यु हुई तब ये अपने परिवार सहित दिल्ली में थे। वही मुगल सम्राट अहमदशाह ने इन्हें किशनगढ राज्य का उत्तराधिकारी नियत किया। परंतु इनकी अनुपस्थिति में इधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंह किशनगढ के राजा बन बैठे। भाई द्वारा इस प्रकार राज्यापहरण की सूचना जब सावतसिंह को दिल्ली में मिली तब एक बड़ी सेना लेकर उनसे लडने के लिये ये किशनगढ आये। दोनों भाइयों की सेनाओ में भयकर युद्ध और भीषण रक्तपात हुआ। परन्तु बहादुरसिंह की सेना ने इनको किशनगढ की सीमा में पांव न रखने दिया। हताश होकर ये वापस दिल्ली लौट गये और वहाँ से अपने राज्य को हस्तगत करने की चेष्टा करने लगे। मुगल साम्राज्य के ढलते दिन थे और अहमदशाह की दशा उस समय अत्यंत दयनीय थी। इसलिए वह इन्हें यथेष्ट सहायता न दे सका। अतएव दिल्ली में अधिक दिनो तक रहना व्यर्थ समझ तथा मरहठों से सहायता

---

127 राजसिह के पॉच सुत, तिन मे सुखसिह ज्येष्ठ ।
मन लायौ जोगीपनै, तजि ससार सुख श्रेष्ठ ।।
—छप्पनभोगचद्रिका, पृ० ३८ ।

128 फतहसिंह दूजे भये, जग जैत युत नीत ।
गयी कुवर परलोक कौ, गौडन की रजीत ।
—छप्पनभोगचन्द्रिका, पृ० ६९ ।

प्राप्त करने की आशा से ये दक्षिण की ओर जाने को रवाना हुए। जब वृन्दावन पहुँचे तब हरिदास नामक एक वैष्णव ने इनसे कहा कि अब आप को राज्याधिकार प्राप्त हो ऐसा योग नहीं है और अवस्था भी आप की पचास से ऊपर हो गई है। इसलिए सब झझटो को छोड़कर भगवद्भजन करो और अपने कुंवर को राज्य-प्राप्ति के लिए उद्योग करने दो। यह सुनकर आप तो वही रह गये और अपने पुत्र सरदारसिंह को कुछ सेना देकर बहादुरसिंह के विरुद्ध लड़ने को भेजा। बहुत लडाई के पश्चात् बहादुरसिंह ने किशनगढ का आधा राज्य सरदारसिंह को दे दिया जिसमें सरवाड़, फतहगढ और रूपनगर ये तीनो परगने सम्मिलित थे। सावतसिंह ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० स० १८१४ के दिन सरदारसिंह का राज-तिलक किया।[129]

सरदारसिंह का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सांवतसिंह वापस वृन्दावन चले गये और वहाँ कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे। ये संसार से प्रायः उदासीन हो गये थे और साधुवृत्ति में रहते थे। कहा जाता है कि एक बार जब ये वृन्दावन से किशनगढ आ रहे थे तब मार्ग में एक दिन के लिये जयपुर ठहरे। उस समय वहाँ महाराजा सवाई माधौसिंह राज करते थे। अपने गुप्तचरो द्वारा उनको जब नागरीदास के आने की सूचना मिली तब उनसे मिलने के लिए वे उनके डेरे पर गये और भाँति-भाँति के प्रश्न करने लगे। नागरीदास ने उनके सब प्रश्नो का उत्तर केवल एक सवैये में दिया और तत्काल वहाँ से रवाना हो गये। वह सवैया यह है--

जाति के है हम तो ब्रजबासी जू ना रहि ओर हु जात की बाधा।
देस है घोष नै चाहत मोख को तीरथ श्रीजमुना सुख साधा॥
सतन को सतसग आजीविका कुजे बिहार अहार अगाधा।
नागर के कुलदेव गोबर्धन मोहन मत्र ऽरु इष्ट है राधा॥

नागरीदास सं० १८१८ में अंतिम बार किशनगढ आये थे। दो-एक दिन वहाँ रहे। अन्त में यह कवित्त कहकर चले गये और आजीवन नहीं लौटे--

ज्यौं ज्यौं इत देखियत मूरख बिमुख लोग
त्यौ त्यौ ब्रजबासी सुखरासी मन भावै है।

129. मुशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ०५७।

खारे जल छीलर दुखारे अन्ध कूप चितै
कालिंदी कूल काज मन ललचावै है ॥
जेती इहै बीतत सो कहत न बनत बैन
नागर न चैन परै प्रान अकुलावै है ।
थूहर, पलास, देख देख के बबूल बुरे
हाय हरे हरे ये कदम्ब सुध आवै है ॥[130]

इनका देहान्त सं० १८२१ में वृन्दावन में किशनगढ राज्य की कुज में हुआ था। वह कुंज आजकल नागर-कुज के नाम से विख्यात है। वहाँ पर इनकी छतरी (समाधि), चरण-चिह्न आदि विद्यमान है जिनकी अभी तक पूजा होती है। समाधि पर यह लेख खुदा हुआ है—

"श्रीराधाकृष्ण गोवर्धन धारी। वृन्दावन यमुना तट चारी।
ललितादिक बल्लभ बिठलेस। मोहन करो कृपा आवेस॥
सुत को दै युवराज आप वृन्दावन आये।
रूपनगर पति भक्ति वृन्द बहु लाड लडाये॥
सूरबीर गभीर रसिक रिझवार अमानी।
सत चरनामृत नेम उदधि लौ गावै बानी॥
नागरीदास विदित सो कृपा ढार नागर ढरिय।
सावतसिह नृप कलि विषै सत त्रेता विध आचरिय॥

स० १८२१ भादो सुदी ५ को महाराज नागरीदासजी वृन्दावन पाये"।[131]

नागरीदास बडे कला-प्रेमी, भक्त और कवि थे। संगीत, चित्रकार', काव्य आदि ललित कलाओ के ये बड़े प्रेमी थे और इनकी सूक्ष्मताओ को समझते भी खूब थे। ये कवियो के आश्रयदाता थे। कई कवि इनके साथ अधिवास करते थे जिनमें वल्लभजी, हरिचरणदास, हीरालाल, कनीराम, पन्नालाल और विजयराम के नाम विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। ब्रजभाषा के विख्यात कवि आनदघन इनके परम मित्र थे।[132]

---

130 मुशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ५८

131. श्रीराधाकृष्णदास; श्रीनागरीदास का जीवनचरित्र, पृ० १ (परिशिष्ट)

132. नागरसमुच्चय, पृ० ४ (भूमिका)

ये वल्लभ सम्प्रदाय के गोस्वामी रणछोडजी के शिष्य थे ।[133] इनके ग्रथो का संग्रह ज्ञानसागर यत्रालय बबई से 'नागर-समुच्चय' के नाम से प्रकाशित हुआ है । यह तीन खडो में विभाजित है—वैराग्य-सागर, सिंगार-सागर, और पद-सागर । इसमें इनके निम्नलिखित ६६ ग्रंथ संगृहीत है ।

(१) वैराग्य-सागर

(१) भक्तिमगदीपिका (२) देहदसा (३) बैराग्यबटी (४) रसिकरत्नावली (५) कलिबैराग्यवल्ली (६) अरिल्ल पचीसी (७) छूटक पद (८) छूटक दोहा (९) तीर्थानद (१०) रामचरित्र-माला (११) मनोरथमजरी (१२) पदप्रबोधमाला (१३) जुगल-भक्तविनोद (१४) भक्तिसार और (१५) श्रीमद्‌भागवत पारायन विधि प्रकास

(२) श्रृंगार-सागर

(१) ब्रजलीला (२) गोपीप्रेमप्रकास (३) पदप्रसगमाला (४) ब्रजबैकुठतुला (५) ब्रजसार (६) बिहारचंद्रिका (७) भोरलीला (८) प्रातरसमंजरी (९) भोजनानद-अष्टक (१०) जुगलरसमाधुरी (११) फूलविलास (१२) गोधन-आगम (१३) दोहनानद-अष्टक (१४) लगनाष्टक (१५) फागविलास (१६) ग्रीष्मबिहार (१७) पावस-पचीसी (१८) गोपी-बैनविलास (१९) रासरसलता (२०) रैनरूपारस (२१) सीतसार (२२) इश्कचिमन (२३) छूटक दोहा मजलस मंडन (२४) रास अनुक्रम के दोहे (२५) अरिल्लाष्टक (२६) सदा की मॉझ (२७) वर्षा रितु की मॉझ (२८) होरी की मांझ (२९) शरद की मॉझ (३०) श्रीठाकुरजी के जनम उछब के कवित्त (३१) श्रीठकुरानीजी के जनम उछब के कवित्त (३२) सांझी के कवित्त (३३) साझी फूल बीननि समै संवाद अनुक्रम (३४) रास के कवित्त (३५) चाँदनी के कवित्त (३६) दिवारी के कवित्त (३७) गोवर्द्धनधारन के कवित्त (३८) होरी के कवित्त (३९) फाग खेल समै अनुक्रम (४०) बसंत वर्णन के कवित्त (४१) फागबिहार (४२) फाग गोकुलाष्ट (४३) हिंडोरा के कवित्त (४४) वर्षा के कवित्त (४५) छूटक कवित्त (४६) वन

133 वही; पृ० ११

विनोद (४७) बालबिनोद (४८) सुजनानद (४९) रास-अनुक्रम के कवित्त (५०) निकुंजबिलास और (५१) गोबिंद-परचई।

(३) पद-सागर

(१) बनजनप्रसंसा (२) पदमुक्तावली और (३) उत्सवमाला।

उपर्युक्त ६९ ग्रंथो के अतिरिक्त नागरीदास के बनाये नौ ग्रंथ और कहे जाते है। उनके नाम ये है—

(१) छूटकविधि (२) शिखनख (३) नखशिख (४) चरचरियाँ (५) रेखता (६) बैनविलास (७) गुप्तरसप्रकास (८) धन्य-धन्य, और (९) ब्रज सबधी नाममाला।

इस प्रकार नागरीदास के ग्रंथो की कुल संख्या ७८ होती है। परन्तु जैसा कि पंडित रामचद्र शुक्ल ने कहा है इन सभी को ग्रंथ सज्ञा देना उचित न होगा। क्योकि इनमें कुछ तो ऐसे है जिनमें पाँच-पाँच दस-दस पद्यो से अधिक नही है। वास्तव में ये ग्रंथ न होकर वर्ण्य विषय के शीर्षक मात्र है।

कहा जाता है कि नागरीदास डिंगल और पिंगल दोनो में कविता करते थे।[134] परंतु इनका बनाया डिंगल भाषा का कोई ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। ऊपर जिन ग्रंथो के नाम दिये गये है वे सब पिंगल अर्थात् ब्रजभाषा के हैं।

ये कृष्णभक्त कवि थे। इन्होने अपनी रचना में भगवान श्रीकृष्ण की प्रेम-लीलाओ का वर्णन किया है जिसके लिये सयोग शृंगार को अधिक अपनाया गया है। वियोग शृंगार का वर्णन भी है पर अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा। इनकी कविता 'अष्टछाप' के कवियो की कविता से बहुत प्रभावित है। क्या वर्ण्य विषय, क्या रचना-शैली, क्या भाव-भावनाएँ सभी पर 'अष्टछाप' के कवियो का प्रभाव पाया जाता है। अंतर केवल इतना है कि 'अष्टछाप' के कवियों ने अधिकतर गेय पद लिखे है और इन्होने कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि अन्य छदो का भी प्रयोग किया है। अतः भाव की नवीनता इनकी कविता में कम दृष्टिगत होती है। परंतु इस अभाव की पूर्ति इन्होने एक दूसरे प्रकार से कर दी है। प्राचीन भावो को इन्होंने ऐसी मधुर और लचीली चित्रात्मकता से अभिव्यक्त किया है कि उनमें एक नूतन उज्ज्वलता और स्फूर्ति आ गई है।

---

134 मुशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ६०

नागरीदास को सबसे अधिक सफलता मिली हैं अपनी प्रेम विषयक कविताओ के लिखने में । इनमें इनका प्रेमी हृदय बोलता-सा प्रतीत होता है । इसी विशेषता को देखकर किसी कवि ने कहा है--

नागरि गौरव इस्क मधि, राग बहादुर राज ।
ब्रजनिधि गौरव अर्थ बिच, रस गौरव रसराज ।।[135]

(५०) रसिकबिहारी--इनका असली नाम बणीठणी था। बणीठणी का अर्थ है, वस्त्राभूषणो से सजी हुई । यह किशनगढ़ के महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास की उपपत्नी थीं और उन्ही की भाँति भगवान श्रीकृष्ण की अनन्य भक्त थी । कविता में यह अपना नाम 'रसिकबिहारी' लिखा करती थीं । स० १८२१ में जिस समय नागरीदास का वृन्दावन में स्वर्गवास हुआ यह उनके पास विद्यमान थी । इनकी मृत्यु नागरीदास की मृत्यु के एक वर्ष उपरात सं० १८२२ में आषाढ सुदि १५ को हुई थी ।[136] वृन्दावन में नागरीदास की छतरी के पास इनकी भी एक छतरी बनी हुई है जिस पर यह लेख खुदा हुआ है--

"श्रीबिहारिन बिहारि जो, ललितादिक हरिदास ।
नरहर रसिकनि की कृपा, दियो वृन्दावन बास ।।
श्रीरसिकदास गुरु की कृपा, लहमा भर सत्सग ।
विष्णुहि वृन्दावन मिल्यौ, भक्त बिहार अनग ।।
रसिकबिहारी सामरो, ब्रजनागर सुर काज ।
इन पद-पकज मधुकरी, ' ' विष्णु समाज ।।"

रसिकबिहारी ने ग्रथ कोई नहीं लिखा । केवल फुटकर पद लिखे है जिनकी संख्या सौ के लगभग है । इनकी भाषा ब्रजभाषा है जिसमें कहीं-कही राजस्थानी का भी रग पाया जाता है । इनकी कविता कोमल और माधुर्य्य रस से परिपूर्ण है ।

---

135. भावार्थ--नागरीदास प्रेम मे पूरे है । उनके भाई बहादुरसिंह और पिता राजसिह रागो मे निपुण है । ब्रजनिधि (जयपुर के महाराजा प्रतापसिह) कविता का अर्थ करने मे और रसराज (जोधपुर के महाराजा मानसिंह) रसो मे अच्छे है ।

136. श्रीराधाकृष्णदास; श्रीनागरीदास का जीवनचरित्र, पृ० २ (परिशिष्ट)।

(५१) हित वृंदावनदास—ये पुष्कर क्षेत्र के रहनेवाले गौड ब्राह्मण थे और सं० १७६५ मे पैदा हुए थे।[137] श्री राधावल्लभीय गोस्वामी हितरूपजी इनके गुरु थे । इनके माता, पिता आदि के सबध में कुछ ज्ञात नही है। नागरीदास के भाई बहादुरसिंह इन्हें बहुत मानते थे । इसलिये ये प्रायः किशनगढ़ ही में रहा करते थे । पर बाद में जब राजघराने मे राज्य संबंधी झगडे उठ खडे हुए तब ये किशनगढ़ छोडकर वहाँ से वृन्दावन चले गये और अंत समय तक वही रहे । स० १८४४ तक की इनकी रची कविताएँ मिलती है पर इसके बाद की नही मिलती। इससे अनुमान होता है कि उक्त सवत् के आसपास किसी समय इन्होनें शरीर छोडा होगा।

वृन्दावनदास भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक थे। इन्होने कृष्ण-लीला विषयक छोटे-बडे कई ग्रथ बनाए जिनके नाम ये है—

(१) कृष्णगिरिपूजन वेलि (२) श्रीहितरूपचरित वेलि (३) भक्ति प्रार्थनावली (४) चौबीस लीला (५) हिंडोरा (६) श्रीब्रजप्रेमानन्द सागर (७) कृष्णगिरिपूजनमगल (८) हरिनाम महिमावली (९) हित हरिवंशचन्द्र जू की सहस्र नामावली (१०) भावविलास टीका (११) राधा सुधानिधि (१२) सेवक बानी (१३) रसिक यशवर्णन (१४) युगलप्रीति पचीसी (१५) आनदवर्द्धन वेलि (१६) नवम समय प्रबध शृखला (१७) कृष्ण सुमिरन पचीसी (१८) कृष्ण-विवाह-उत्कंठा (१९) रास-उत्साह वर्द्धन (२०) इष्टभजन पचीसी (२१) जगनिर्वेद पचीसी (२२) पद (२३) प्रार्थना पचीसी (२४) राधा जन्म-उत्सव वेलि (२५) वृषभानु जस पचीसी (२६) राधा बालविनोद (२७) लाडलीजी की जन्म बधाई (२८) हित-कल्पतरु (२९) भक्त सुजस वेलि (३०) करुणा वेलि (३१) भँवर गीत (३२) लीला (इसमें छोटे-छोटे ४१ ग्रंथ है) (३३) हरिकला वेलि (३४) लाड़सागर (३५) सेवकजी की विरदावली (३६) छद्म षोडशी (३७) रसिक अनन्य (३८) ख्यालविनोद (३९) ब्रजविनोद (४०) वेलि (४१) हितरूप चरितावली (४२) सेवकजी की परिचर्यावली ।

इनके सिवा इन्होने अष्टयाम, समयप्रबंध, अष्टक, वेलि, पचीसी आदि भी कई लिखे है।

---

137. प० रामचद्र शुक्ल, हिदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ३०९ ।

इन्होंने श्रीकृष्ण के भोजन, शयन, रास आदि का बड़ा विशद वर्णन किया है। सब से बडी विशेषता जो इनकी रचना में हमें दीख पड़ती है वह इनकी शुद्ध, सरल और व्यवस्थित ब्रजभाषा है। इनकी पदावली में कांति, माधुर्य्य और कोमलता है। पद-विन्यास भी बहुत ललित है। भावुक कवि के आराध्य देव के प्रति उठनेवाली भाव-तरंगो का हृदयग्राही दृश्य इनकी कविता में हमें देखने को मिलता है।

(५२) हरिचरणदास—ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं०१७६६ में हुआ था। इनके पिता का नाम रामधन और पितामह का वासुदेव था। बिहार प्रान्त का चैनपुर गॉव इनकी जन्मभूमि थी जहाँ से आकर ये मारवाड़ (किशनगढ़) में बस गये थे—

नवा पार सुभ देस मे, राजत वटया ग्राम।
श्रीविश्वम्भर वस मैं, वासुदेव तप धाम॥
ता कौ सुत श्रीरामधन, कियौ चैनपुर बास।
परगन्ना गोवा तहाँ, चारि वर्न सहुलास॥
सालग्रामी सुरसरित, मिली गग सो धार।
अतराल मैं देस तहँ, है सारनि सरकार॥
तनै रामधन सूर को, हरि कवि किय मरु वास।
कविवल्लभ ग्रथहि रच्यौ, कविता दोष प्रकास॥
—कविवल्लभ[138]

ये किशनगढ के महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास के आश्रित थे और कुछ समय तक किशनगढ के महाराजा बहादुरसिंह के दरबार में भी रहे थे। काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण' में इनका सं० १८३४ तक विद्यमान होना लिखा है।[139] परन्तु ये और भी पीछे तक जीवित थे जैसा कि इनके 'कविवल्लभ' ग्रथ से सूचित होता है जो स० १८३९ में रचा गया था—

सवत नंद(९) हुतासन(३) दिग्गज(८) इंदुहु(१) सौ गनना जु दिखाई।
दूसरो जेठ लसी दसमी तिथ प्रात ही सॉवरो पच्छ निकाई॥

138. सरस्वती भडार उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०७।
139. पृ० १९३।

तीर तडाग के औ बुधवार विकर्म्मनि की गति लाय लगाई।
श्रीतुलसी उपकठ तहाँ रचना यह पूरी भई सुखदाई ।।[140]

हरिचरणदास कवि और टीकाकार दोनो थे। इनके बनाये ग्रंथो के नाम ये है--

(१) केशव कृत रसिकप्रिया की टीका (२) केशव कृत कविप्रिया की टीका (३) बिहारी-सतसई की टीका (४) जसवर्तसिह कृत भाषाभूषण की टीका (५) सभाप्रकाश और (६) कविवल्लभ ।

हरिचरणदास की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और उस में मीलित वर्ण बहुत कम आने पाये है। इनकी कविता साहित्यिक दृष्टि से निर्दोष एवं कोमल है और उसमें कला एव भाव दोनो का सुन्दर सयोग हुआ है। इनका एक छंद यहाँ दिया जाता है--

आनद कौ कद वृषभानुजा कौ मुख-चद
लीला ही तै मोहन के मानम कौ चौरै है।
दूजो तैसो रचिबे कौ चाहत विरचि नित
ससि कौ बनावै अजौ मन कौ न मौरै है।।
फेरत है सान आसमान पै चढाय फेरि
पानिप चढायबै कौ बारिधि मै बौरै है।
राधिका के आनन कौ जोट न बिलोकै विधि
टूक टूक तौरै पुनि टूक टूक जौरै है ।।[141]

(५३) सुदरकुंवरि--ये किशनगढ के महाराजा राजसिंह की पुत्री थीं। इनका जन्म स० १७९१ में हुआ था।[142] सुप्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास इनके भाई थे। जब बाईजी चौदह वर्ष की थीं तब इनके पिता की मृत्यु हो गई और तदनतर इनके भाइयो मे किशनगढ के राजसिंहासन के लिए झगड़े होने शुरु हो गये थे, इसलिये इनका विवाह न हो सका और ३१ वर्ष की उम्र तक ये कुँवारी रही। बाद में जब इनके भतीजे सरदारसिंह गद्दी पर बैठे तब उन्होने इनका विवाह राघोगढ़ के राजा बलभद्रसिंह के कुँवर बलवंतसिंह क साथ किया। बाईजी का देहान्त सं० १८५३ के लगभग हुआ था।[143]

140 स० भ० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०७--१०८।

141. वही, पत्र १।

142. मुशी देवीप्रसाद, महिलामृदुवाणी, पृ० १०४।

143. वही; पृ० १०७।

सुन्दरकुँवरि बाई साहित्यिक वायु-मंडल में पली थीं और कविता इनकी पैतृक सम्पत्ति थी । इनके पिता राजसिंह, माता ब्रजदासी, भ्राता नागरीदास और भतीजी छत्रकुँवरि बाई सभी साहित्य-रुचि-सम्पन्न एव प्रकृष्ट कवि थे । इस वातावरण से इन्हें सत्काव्य-रचना में बडी सहायता मिली । पंद्रह वर्ष की आयु में बाईजी बहुत अच्छी कविता करने लग गई थी और बाद में तो काव्य-रचना का इन्हें ऐसा व्यसन पड गया था कि जिस दिन थोडा-बहुत भी लिख नही लेती, इन्हें कल न पडती थी । इन्होने ग्यारह ग्रथो की रचना की जिनके नाम ये है––

(१) नेहनिधि (२) वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य (३) संकेत-युगल (४) रगझर (५) गोपी-माहात्म्य (६) रस-पुज (७) प्रेम-सपुट (८) सार-सग्रह (९) भावना-प्रकाश (१०) राम-रहस्य (११) पद तथा स्फुट कवित्त ।[144]

सुन्दरकुँवरि बाई की कविता में भक्ति और प्रेम का प्राधान्य है । इनकी रचना से स्पष्ट विदित होता है कि रस, छद, अलंकार आदि का इन्हें प्रौढ़ ज्ञान था, और भाषा तथा भाव के सामञ्जस्य को ये अच्छी तरह से समझती थीं । इनकी भाषा बड़ी शिष्ट, स्वच्छ एवं सुव्यवस्थित है । इन्होने काव्य के कला-पक्ष तथा भाव-पक्ष दोनो ही का बड़ी सुन्दरता से निर्वाह किया है ।

(५४) देवकर्ण––ये जाति के पचोलो थे । इन्होने अपने 'वाराणसी-विलास' में कुछ आत्म-विवरण दिया है जिससे मालूम होता है कि ये मेवाड के महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) के दीवान थे । इनके पिता का नाम हरनाथ और पितामह का महीदास था ।[145]

इनका उक्त एक ही ग्रंथ 'वाराणसी-विलास' मिलता है । इसमें 'काशीखंड' का सरल ब्रजभाषा में उल्था किया गया है जो ४०५२ छंदो में समाप्त हुआ है । यह स० १८०३ में बना था––

---

144. वही; पृ० ११० । हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, पृ० १८२ ।

145. महीदास के सुत भये, भडारी हरनाथ ।
देवकर्ण तिन सुत कियो, सदा सु उत्तम साथ ।।
––वाराणसी-विलास, पद्य २२४।

आश्विन कृष्णा अनग तिथि, अठारह सै तीन ।
उदियापुर शुभ नगर मे, उपज्यौ ग्रथ नवीन ।।

ग्रंथ तीस विलासो में विभक्त है और इसमें दोहा, सोरठा, छप्पय, त्रोटक, तोमर आदि अनेक छंदो का प्रयोग हुआ है । वैसे कहने को यह एक अनुवादित ग्रंथ है पर कवि ने इसमें अपनी काव्य-प्रतिभा का रग भी यत्र-तत्र भरा है जिससे इसमें बहुत कुछ नवीनता आ गई है । यह अत्यंत प्रौढ, प्रशसनीय एवं हिदी का गौरव बढानेवाली रचना है । विशेषकर इसकी सरस और प्रवाहयुक्त भाषा देखने योग्य है । उदाहरण लीजिये--

भोगि सुभोग अखड बहुरि सिवलोकहि पावहि ।
सिव वा सिवगन होत फेरि मृतलोक न आवहि ।।
कुभ-योनि तप भौन महा कहियौ मति भारी ।
अब तुव मन मे कहा सुनन इच्छा सुखकारी ।।
कहि देवकरन कासी कथा सुनत कहत पातक दहत ।
मुनि बिना सक बूझ्यौ सु तुम मोहि महा आनद लहत ।। [146]

(५५) शिवसहायदास--इनका प्रामाणिक इतिवृत्त नहीं मिलता । 'मिश्र बंधु-विनोद' के अनुसार ये महाशय जयपुर के भद्र कवि थे । इनके बनाये हुए-शिव-चौपाई और लोकोक्ति-रसकौमुदी नामक दो ग्रंथो का पता है । ये दोनो सं० १८०९ में लिखे गये थे ।[147] इनमें लोकोक्ति-रसकौमुदी साहित्यिक रचना है । इसमें पखाने (उपाख्यान) है और उन्हीं को मिलाकर कवि ने नायिका-भेद वर्णन किया है ।

(५६) सूदन—ये जाति के माथुर ब्राह्मण एवं मथुरा के निवासी थे और इनके पिता का नाम बसंत था--

मथुरा पुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर ।
पिता बसत सु नाम, सूदन जानहु सकल कवि ।।[148]

---

146. स० भ० उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १५२ ।
147. मिश्रबधु, मिश्रबधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ६८४ ।
148. सुजानचरित्र, प्रथम जंग, पद्य १०

ये भरतपुर के जाट राजा सूरजमल उपनाम सुजानसिंह के आश्रित थे। इनका रचना-काल सं० १८२५ के लगभग है। इन्होंने 'सुजानचरित्र' नामक एक बड़ा ग्रंथ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। इसमें सूरजमल के स० १८०२ से सं० १८१० तक के युद्धों का वर्णन है। ग्रंथ सात जगों में विभक्त है। प्रत्येक जंग में कई अंक है। यह एक ऐतिहासिक काव्य है और इसमें सूदन ने अपने समय की वास्तविक घटनाओं का वर्णन किया है। फिर भी इसमें कुछ ऐसी घटनाएँ आ गई है जो इतिहास-सिद्ध नहीं है। जैसे इसमें एक स्थान पर सूरजमल द्वारा मालवा की राजधानी माँडू को जीतने की बात कही गई है—

पुनि मॉडौगढ मालुवै जीत्यौ सिंह सुजान।
कूरम की रच्छा करी निज कर गहि किरिवान ।।[149]

परन्तु इतिहास-ग्रंथो में इस घटना का कही उल्लेख नही मिलता।

इसकी भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा है। परन्तु पजाबी, पूरबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, उर्दू आदि के भी कुछ अंश इसमें पाये जाते है। जहाँ जिस प्रांत अथवा जाति विशेष के मनुष्यो के विषय में सूदन को कुछ कहना होता तो वहाँ उसी प्रान्त या जाति की भाषा का प्रयोग करने की उनकी आदत थी। अतएव कुछ स्थानो पर यह ग्रंथ बहुत बेढंगा हो गया है और संकलन-सा प्रतीत होता है।

महाकवि केशवदास की भाँति सूदन ने भी छंद बहुत जल्दी-जल्दी बदले है और जिस स्थान पर जिस छद का प्रयोग किया है वहाँ छद शास्त्र के नियमो का पूर्णतः पालन हुआ है। फलस्वरूप एक तो छंदोभंग इनकी कविता में बहुत न्यून है और दूसरे, उसकी गति भी अच्छी है। इनकी वर्णन-शैली सशक्त और कविता ओजस्विनी है। विशेषकर सेना का, युद्ध की तैयारी का, रणांगण की भगदड का, वर्णन इन्होंने बहुत अच्छा किया है। इनके ये वर्णन पृथ्वीराज रासौ की टक्कर के है। परन्तु कही-कहीं इतने लंबे हो गये है कि पढ़ते-पढते मन ऊब जाता है।

(२७) भोलानाथ—ये जयपुर के रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नंदराम था। इनके पौत्र चैनराम ने अपने 'रससमुद्र' में इनका थोडा-सा वृत्तान्त दिया है जिससे मालूम होता है कि जयपुर के महाराजा सवाई माधौसिंह प्रथम के समय (सं० १८०७–२४) में ये जयपुर में आये थे

149. वही; पद्य ३२

और इससे पूर्व ये भरतपुर के जाट राजा सूरजमल के पास रहते थे। चैनराम ने यह भी लिखा है कि भोलानाथ मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के बड़े प्रीति-पात्र थे और उन्हीं से माँगकर सूरजमल इनको भरतपुर लाये थे।[150] परन्तु चैनराम का यह कथन इतिहास से मेल नही खाता क्योकि शाहजहाँ और सूरजमल समकालजीवी नहीं थे।

भोलानाथ सस्कृत और ब्रजभाषा दोनो में रचना करते थे। इनके रचे ब्रजभाषा के ग्रंथो के नाम ये है:—

(१) लीला-प्रकाश (२) सुख-निवास (३) नवलानुराग (४) इस्कलता (५) जुगल-विलास (६) भीष्म-पर्व भाषा (७) भागवत दशमस्कध भाषा (८) विप्रलब्धा वर्णन (९) सुमनप्रकाश (१०) नखशिख (११) प्रेम पच्चीसी और (१२) नैषध (प्रथम सर्ग का अनुवाद)।

(५८) प्रतापसिंह—ये जयपुर के महाराजा माधौसिंह के पुत्र और महाराजा जयसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८२१ में हुआ था। महाराजा माधौसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीसिंह राज्यसिंहासन पर आरूढ हुए। परन्तु उनकी अकाल मृत्यु हो गई जिससे उनके छोटे भाई इन प्रतापसिंह को राज्याधिकार प्राप्त हुआ। उस समय इनकी आयु १५ वर्ष की थी।

महाराजा प्रतापसिंह के समय में मरहठो का जयपुर में बड़ा आतंक और प्रभाव था। इसलिये उनका दमन करने के लिये महाराजा को उनसे कई युद्ध करने पडे और दो-एक बार इन्होने उनको परास्त भी किया। परन्तु

---

[150] नदराम तिनकै तनय, कवि पडित परबीन।
ताकै भोलानाथ जिहि, कीन्हे ग्रथ नवीन॥
छहो शास्त्र अध्येन सौ, गयै दिल्लीपति पास।
शाहजहाँ पतिसाह कै, भयौ मिलत हुल्लास॥
पाँच सदी मनसब दियौ, राखै कर अति प्रीत।
तब तिनकी रुचि जानि जिन, भाषा किय इह रीत॥
सूरजमल्ल ब्रजेस सौ, गयौ दिलीपति धाम।
ले आयौ भुवनाथ कौ, दिय बछित धन धाम॥
माधवेस अबापतिहि, मिलै तहाँ ते आय।
तिनहूँ भोलानाथ कौ, राखै बहु चित लाय॥
—रससमुद्र

राजपूतों की अनेकता तथा अंत:कलह के कारण जयपुर राज्य का राजनैतिक वातावरण उस समय कुछ ऐसा बिगडा हुआ था कि इन्हें अपने प्रयत्नो में स्थायी सफलता न मिल सकी। निरंतर युद्ध में संलग्न रहने के कारण इनकी धन-जन से ही हानि नही हुई, किन्तु इनके स्वास्थ्य को भी भारी धक्का पहुँचा और अन्त में स० १८६० में ३९ वर्ष की अल्पायु में इनका प्राणांत हो गया।

महाराजा प्रतापसिंह का शरीर बहुत सुडौल और सुंदर था। ये बड़े हँसमुख, मिलनसार और गुणग्राही थे। परन्तु इनमें दो-एक दुर्गुण भी थे जिसके कारण इनके सभी गुणो पर पानी फिर गया था। ये बहुत विलासी और अपव्ययी थे। इनका अधिकाश समय भोगविलास में व्यतीत होता था। ये स्त्रियो की पोशाक पहिनते और पाँवो में घुँघरू बाँधकर रनवास में नाचा करते थे।[151] मदिरा भी ये बहुत पीते थे। इन कुटेवो के कारण इनके हितैषी बहुत से सरदार-उमराव मारे लज्जा के जयपुर छोडकर चले गये थे।

ये ज्ञान-विज्ञान के बड़े प्रेमी और ललित कलाओ के पृष्ठपोषक थे। कवियो, विद्वानो और सगीतज्ञो का इनके राजदरबार में बड़ा सम्मान होता था। इन्होने आईने-अकबरी, दीवाने हाफिज आदि फारसी ग्रंथो का हिंदी में अनुवाद करवाया और ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वैद्यक, संगीत इत्यादि विषयो पर भी बहुत से ग्रंथ लिखवाये[152] जिनका विद्वत्संसार में बडा मान है।

महाराजा स्वयं ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। प्रतिदिन पाँच छंद बनाने का इनका नियम था जिनको ये अपने इष्टदेव श्री गोविंदजी महाराज को अर्पण किया करते थे। कविता में ये अपना नाम 'ब्रजनिधि' लिखते थे। इनके बनाये ग्रंथो के नाम ये है।

(१) प्रेम-प्रकास (२) फाग-रंग (३) प्रीति-लता (४) मुरली-बिहार (५) सुहाग-रैनि (६) विरह-सलिता (७) रेखता-संग्रह (८) स्नेह-बिहार (९) रमक-जमक-बत्तीसी (१०) प्रीति-पचीसी (११) ब्रज-शृंगार (१२) स्नेह संग्राम (१३) नीति-मजरी (१४) शृंगार-मंजरी (१५) वैराग्य-मंजरी (१६) रंग-चौपड़ (१७) प्रेम-पंथ (१८) दुखहरनवेलि (१९) सोरठ ख्याल

---

151 जदुनाथ सरकार; फॉल आव दि मुगल एम्पायर, भाग ३, पृ० ३३७

152. पुरोहित हरिनारायण; बृजनिधि-ग्रथावली, पृ० ४७ (भूमिका)।

(२०) रास का रेखता (२१) श्रीब्रजनिधि-मुक्तावली (२२) ब्रजनिधि पद-संग्रह और (२३) हरिपद-सग्रह ।

ब्रजनिधि कृष्णोपासक कवि थे। इनकी कविता मे ब्रजभाषा का प्राय· वही माधुर्य्य है जो सूर, बिहारी, नागरीदास आदि कवियो की कविता मे दृष्टि-गोचर होता है। विशेषकर नागरीदास की कविता से इनकी कविता का बहुत सादृश्य है। इनकी कविता बहुत सरस, परिमार्जित एव उल्लास पूर्ण है। वर्णन-शैली सहज और चित्रोपम है। भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओ के विविध दृश्य जो इन्होने अकित किये है वे बहुत सुन्दर तथा लोक-रजककारी है और उनसे इनकी अखड कृष्ण-भक्ति ही व्यजित होती है। परंतु राधा का जो चित्र इन्होने खीचा है उसमे भक्ति-भाव की अपेक्षा वासना का रंग अधिक है। एक भक्त कवि का अपने आराध्य के प्रति जो पवित्र भाव होना चाहिये वह उसमें नही है। राधा का वर्णन पढते समय पाठक को ऐसा प्रतीत होता है मानो वह किसी साधारण सासारिक नायिका का वर्णन पढ रहा है। जैसे—

राधे बैठी अटरियाँ, झाँकति खोलि किवार।
मनौ मदन-गढ तै चली, द्वै गोली इक सार ।।
राधे घूँघट ओट सौ, चितई नैंक निहारि।
मनौ मदन-कर तै चली, गुप्ती की तरवारि ।।
नेजा से नैनान सौ, कियौ राधिका वार।
अक-बक व्है जकि-थकि रहै, ब्रजनिधि नदकुमार ।।
बाँकी भौह-गिलोल सौ, छुटे गिलोला नैन।
ब्रजनिधि मद गजराज के, छूटि गये सब फैन ।।[153]

महाराजा प्रतापसिह को पद्यानुवाद का अच्छा अभ्यास था। इनके नीति मजरी, शृगार-मजरी और वैराग्य-मजरी ग्रथो मे, जो क्रमशः भर्तृहरि के नीति-शतक, शृगार-शतक, और वैराग्य-शतक के अनुवाद है, मूल कवि के भावो की अच्छी रक्षा हुई है और उनका वास्तविक सौंदर्य्य प्राय· नष्ट नही होने पाया है। अतः इन ग्रथो के पढने मे मूल ग्रंथो के पढ़ने का सा आनंद आता है। उदाहरण—

153. पुरोहित हरिनारायण, ब्रजनिधि-ग्रथावली, पृ० १३–१५।

मूल

कातेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रेणीभरेत्युत्सुक ।
पीनोतुगपयोधरेति समुखाभोजेति सुभ्रूरिति ।।
दृष्ट्वा माद्यति मोदते भिरमते प्रस्तोति विद्वानपि ।
प्रत्यक्षाशुचिपुत्रिका स्त्रिय महो मोहस्य दुश्चेष्टितम् ।।

अनुवाद

खीन लक कुच पीन नैन पकज से राजत ।
भौहैं काम-कमान चदसौ मुख छबि छाजत ।।
मद-गयद सी चाल चलत चितवत चित चोरत ।
ऐसी नारि निहारि हाथ पडित जन जोरत ।।
अति ही मलीन सब ठौर वह चितगति भरि अनेक छल ।
ताकौ सु प्रान प्यारी कहत अहो मोह-महिमा प्रबल ।।[154]

और भी—

मूल

कृश काण खज श्रवणरहित पुछविकलो ।
व्रणी पूयक्लिन्न कृमिकुलशतैरावृततनु. ।।
क्षुधाक्षामो जीर्ण पिठरककपालार्पितगल ।
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हत्येव मदन ।।

अनुवाद

दुबरौ कानौ कृस श्रवण बिनु पूछ नवाये ।
बूढो बिकल सरीर बार बिनु छार लगाये ।।
झरत सीस तैं राधि रुधिर कृमि डारत डोलत ।
छुधा-छीन अति दीन गरगना कठ कलोलत ।।
यह दसा स्वान पाई तऊ कुतिया सौ उरझत गिरत ।
देखौ अनीत या मदन की मृतिकन कौ मारत फिरत ।।

---

154. स० भं० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ६२ ।
155. वही; पत्र ११३ ।

(५९) द्वारकानाथ भट्ट—ये श्रीकृष्ण भट्ट के पुत्र थे[156] और अपने पिता के समान ही सस्कृत एव भाषा के उद्भट विद्वान और प्रतिभावान. कवि थे। इनका जन्म सं० १७५० मे हुआ था। ये जयपुर के महाराजा सवाई माधौसिह (स० १८०७-२४) के बडे कृपापात्र थे जिन्होने इनको 'सुरसती' की पदवी प्रदान की थी। महाराजा माधौसिह के पश्चात् क्रमश महाराजा पृथ्वीसिह, और महाराजा प्रतापसिह जयपुर के राज्यसिहासन पर आसीन हुए थे। उनके राजत्व-काल में भी द्वारकानाथ का मान-सम्मान पूर्ववत बना रहा और उन्होने इनको 'बानी', 'भारती' इत्यादि की उपाधियाँ देकर गौरवान्वित किया। इनके पौत्र कवि मंडन ने अपने 'रावलचरित्र' ग्रथ मे इन बातो का विवरण दिया है—

पृथ्वीसिह परताप को, किय गुन सो भरपूर।
'बानी' 'भारती' नाम लिय, जग मे रह्यौ जहूर॥
कवि कुल ओर कवीन्द नित, नृप मुख बोलै बैन।
पृथ्वीसिह परताप सो, पाये निसि दिन चैन॥

द्वारकानाथ के बनाये सात ग्रथ मिलते है। इनमे छ ग्रंथ ब्रजभाषा के और एक सस्कृत का है। उनके नाम ये है—

(१) मधुकर-कलानिधि (२) वाणी-वैराग्य (३) रागचद्रिका (४) शब्दचद्रिका (५) पृथ्वीसिह महाराज का ब्यावला (६) प्रतापसिह के सभासदो का वर्णन (७) अलकार ग्रथ (८) गालव गीत (सस्कृत)।[157]

इन ग्रथो के अतिरिक्त इनके फुटकर छद भी बहुत मिलते है। एक कवित्त यहाँ दिया जाता है।

उमडि अथाह अम्बु धारे धुरवान ये तो
झझा की झकोर झुके झरना झरतु है।
'सुरसती' कहै चपलान की चमाचमीन
चमकति कैह्यो दिव्य औषधि हिरतु है॥
टूटि टूटि परै नव बधूटी ब्योम मडल ते
भिरि भिरि मानिक के सिखर खिरतु है।
झाखवारे सक्र सो पयोनिधि की काँखवारे
खाँखवारे पब्बै मेह मिस लै फिरतु है॥

---

156. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १८६।
157. वही, पृ० १८८।

(६०) जगदीश—ये लक्ष्मण भट्ट के पौत्र और श्रीकृष्ण भट्ट (कविकलानिधि) के द्वितीय पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७८० में हुआ था। ये जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। इनके बनाये कई ग्रंथ कहे जाते है जिनमें से नीचे लिखे पंद्रह ग्रथो का पता है :—

(१) काव्यविनोद (२) किशोरसुखसागर (३) जगतरसरजन (४) जगतभक्तिविलास (५) भक्ति-अरगजा (६) पदमकरंद (७) पदपकज (८) ब्रह्मवैवर्त पद्यानुवाद (९) भागवत दशम स्कंध पद्यानुवाद (१०) षोड़श ग्रंथ अनुवाद (११) वन-पर्व पद्यानुवाद (१२) शांति-पर्व पद्यानुवाद (१३) शिशुपाल वध पद्यानुवाद (१४) शतक त्रय पद्यानुवाद और (१५) आर्या-शतक पद्यानुवाद ।

जगदीशजी के काव्य में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण पाये जाते है। इनकी भाषा बहुत सीधी-सादी और व्यवस्थित है। वर्णन-शैली चित्रोपम और साकार है। जयपुर के 'बादल महल' पर लिखा इनका एक कवित्त देखिये—

उतै भूरि बादर है बादर महल इतै
चचल उतै को इतै कचनियाँ लाखी है ।
जुगनू जमात उतै दीपन की पाँत इतै
गरज उतै को इतै नोबतियाँ आखी है ।।
उतै साँझ फूली इतै रग-रळी समा सोभ
कवि जगदीस भल भारती यो भाखी है ।
उतै इन्द्र इतै महेन्द्र श्री प्रताप भूप
अद्भुत तीज की जलूस रचि राखी है ।।

(६१) गणपति भारती—ये माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण मथुरामल के पुत्र और जयपुर के महाराजा सवाई प्रतापसिंह के दरबारी कवि थे। इनका रचनाकाल सं० १८३५–६० है। ये महाराजा प्रतापसिंह के काव्य-गुरु भी रहे थे[158] और उन्होंने इनको एक गांव, पालकी, पदवी इत्यादि देकर सम्मानित किया था जिसका उल्लेख इन्होंने अपने इस छंद में किया है—

---

158. हितैषी, दिसंबर-जनवरी, सन् १९४१-४२ मे प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी का 'जयपुर के कवि-कोविद' शीर्षक लेख, पृ० १४७ ।

कीन्ही है दीठि श्रीप्रताप भूप जैपुर पति
ता दिन ते गनपति अग पर आब भो।
खाइबे को गाम जमा रहिबे को घर नीके
रतननि के भूषन सो भर भर छाब भो।।
'भारती' भनत हमे पालकी चवर दिये
जरी सिरपाव चाव सहित सिताब भो।
सारती सकल सुख गुरुवर उचारती
जारती अरिन छाती 'भारती' खिनाब भो।।[159]

गणपति के बनाये कई ग्रथ मिलते है जिनमें कुछ मौलिक, कुछ संस्कृत ग्रंथो के अनुवाद और कुछ सकलन है। उनके नाम ये है—

(१) भीष्म-पर्व भाषा (२) योगवाशिष्ठसार भाषा (३) नय-पच्चीसी (४) विरह-पच्चीसी (५) प्रीति-मंजरी (६) अन्योक्ति-काव्य (७) शृंगार हजारा (८) वीरहजारा (६) नवरस और (१०) अलंकार-सुधानिधि।

(६२) पद्माकर—ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं०१८१० में बाँदा में हुआ था। कोई-कोई इनका जन्मस्थान सागर बतलाते है। इनके पिता का नाम मोहनलाल और पितामह का जनार्दन था। ये कई स्थानो पर रहे। सुगरा के नोने अर्जुनसिह ने इन्हें अपना गुरु बनाया था। स० १८४६ में ये महाराज गोसाई अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर के यहां थे। स० १८५६ में ये सितारे के महाराज रघुनाथराव के यहाँ गये और वहाँ से जयपुर पहुँचे जहाँ पर इन्होने अपना प्रख्यात ग्रंथ 'जगद्विनोद' बनाया। ये कुछ दिनो तक ग्वालियर, उदयपुर और बूँदी के राजदरबारो में भी रहे थे।

कहते है कि वृद्धावस्था में पद्माकर कानपुर चले गये थे। वहां स० १८६० में गगा-तट पर इनका गोलोकवास हुआ था। उस समय इनकी आयु ८० वर्ष की थी।

पद्माकर के दो पुत्र थे, मिहीलाल और अम्बाप्रसाद। दोनो पिता के समान ही कविता करते थे। मिहीलाल जयपुर ही में रहे। इनके वंशज अभी तक जयपुर में रहते है। अम्बाप्रसाद के वंशवाले दतिया आदि राज्यों में पाये जाते है।

---

159. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १७६।

पद्माकर जन्मसिद्ध कवि और साहित्य-शास्त्र के अधिकारी विद्वान थे। इनके बनाये निम्नलिखित नौ ग्रथो का पता है।

(१) हिम्मत बहादुर-विरुदावली (२) जगद्विनोद (३) पद्माभरण (४) जयसिंह-विरुदावली (५) आलीजा-प्रकास (६) हितोपदेश भाषा (७) रामरसायन (८) प्रबोध-पचासा और (९) गंगा-लहरी।

इनके सिवा इनकी लिखी नौ पुस्तकें और बताई जाती हैं: कलियुग पच्चीसी, प्रतापसिंह-विरुदावली, यमुना-लहरी, ईश्वर-पच्चीसी, रायसा भगवत्पच्चाशिका, राजनीति, प्रतापसिंह सफरनामा और अश्वमेध।[160]

इनमे 'जगद्विनोद' पद्माकर का सर्वश्रेष्ठ ग्रथ है। यह जयपुर के महाराजा सवाई जगतसिंह की आज्ञा से बनाया गया था। इसमें इसके निर्माण-काल का निर्देश नही है। परंतु अनुमान किया जाता है कि यह स० १८६७ में लिखा गया था।[161] इसमे ६९२ छद है–४२० दोहे, १४२ कवित्त, १२७ सवैये और ३ छप्पय। ग्रंथ दो खडो में विभक्त है। प्रथम खड में मगलाचरण के अनतर महाराजा जगतसिंह की प्रशसा की गई है और फिर नायिका-भेद लिखा गया है। दूसरे खड में भाव, विभाव, सचारी भाव और रसो का वर्णन है।

पद्माकर शृगारी कवि थे। इनकी कविता में शृंगार रस का प्राधान्य है। परन्तु इन्होंने वीर, शान्त आदि रसो पर भी यथेष्ट मात्रा मे लिखा है और बहुत अच्छे ढग से लिखा है। इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है जो बहुत कोमल एव कर्णमधुर है। उसमें अनुप्रास की छटा भी खूब दिखाई देती है। इनकी कविता का प्रधान गुण है भाव की चित्रात्मकता। जिस भाव को उठाया उसका इन्होंने ऐसा मनोरम और वास्तविक चित्र अकित किया है कि वह मूर्त्तिमान होकर हमारी आँखो के सामने झूलने लगता है और हमारे मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है।

(६३) गौरीबाई—इनका जन्म स० १८१५ में डूँगरपुर शहर में हुआ था। यह जाति की नागर ब्राह्मण थीं।[162] इनके माता-पिता का नाम

---

160. श्री अखौरी गगाप्रसादसिंह, पद्माकर की काव्य साधना, पृ० ८ (भूमिका) श्रीवल्लभ-वश-वृक्ष, पृ० १२

161. मिश्रबधु-विनोद, भाग दूसरा, पृ० ९०२

162. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०३

अविदित है । इनका विवाह पाँच-छह वर्ष की बहुत छोटी अवस्था में हो गया था । परंतु विवाह के एक वर्ष बाद इनके पति का देहान्त हो गया । वैष्णव धर्म का पालन गौरीबाई से अच्छी तरह से हो सके इस उद्देश्य से इनके माता-पिता ने इन्हें पढ़ाना-लिखाना प्रारभ किया और कुछ ही समय में यह पढ-लिखकर होशियार हो गईं । कालातर में इन्होने भागवत, गीता आदि धार्मिक ग्रथो का अच्छा अध्ययन कर लिया और कविता भी करने लग गई । अपना अधिकाश समय यह पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन में व्यतीत करती थी । धीरे-धीरे इनकी ज्ञान-गरिमा और भगवद्भक्ति की महिमा चारो ओर फैल गई और हजारो की सख्या में लोग इनके दर्शन करने तथा भजन सुनने के लिये इनके पास आने लगे । उस समय डूँगरपुर पर महारावल शिवसिह (स० १७८६-१८४२) राज्य करते थे[163] जो बडे धर्मिष्ठ और प्रभु-भक्त राजा थे । उनके कानो में भी गौरीबाई की कीर्ति-कथा पहुँची । उन्होने इनके लिए एक मदिर बनवा दिया जो अभी तक डूँगरपुर मे मौजूद है ।

कहते है कि अत समय मे गौरीबाई काशी चली गई थी और वही स० १८६५ के लगभग पचास वर्ष की अवस्था में इनका देहावसान हुआ था ।

गौरीबाई मीराँ का अवतार मानी गई है । उनकी तरह इन्होने भी केवल फुटकर पद लिखे हैं जिनकी संख्या ६१० है । इन पदो में इन्होने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की महिमा बतलाई है । इनकी भाषा राजस्थानी तथा व्रजभाषा का मिश्रण है । इनके पदो पर कबीर, सूर आदि प्राचीन भक्त कवियो का प्रभाव स्पष्ट है । सरलता और तन्मयता भी उनमें यथेष्ट पाई जाती है । पद गाने के लिए बहुत उपयुक्त है । उदाहरण—

प्रभु मोकूँ एक बेर दरसन दइयै ॥
तुम कारन मैं भई रे दिवानी, उपहास जगत की सहियै ।
हाथ लकुटिया काधे कमलिया, मुख पर मुरली वजैयै ॥
हीरा मानिक गरथ भडारा, माल मुलक नही चहियै ।
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अतर रहियै ॥[164]

---

163. ओझा; डूगरपुर राज्य का इतिहास, पृ० २२१ ।
164. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २०३ ।

(६४) अलिरसिक गोविंद—ये जयपुर-निवासी बालकृष्ण के पुत्र थ। इनका रचना-काल सं० १८३० के लगभग हैं। ये हरिव्यास के शिष्य थे। वृद्धावस्था में ये वृन्दावन चले गये थे जहाँ स० १८६० में गोलोक वासी हुए थे।

ये अपने समय के अच्छे कवि और प्रतिष्ठित भक्त थे। इनके निम्न-लिखित सात ग्रथो का पता है जो ब्रजभाषा में हैः—

(१) गोविंदानन्दघन (२) अष्टदेश भाषा (३) युगलरसमाधुरी (४) कलियुग रासौ (५) पिंगल ग्रथ (६) समयप्रबंध और (७) श्रीरामायण सूचनिका।[165]

(६५) छत्रकुँवरि—इनका बनाया हुआ 'प्रेमविनोद' नामक एक ग्रंथ मिलता है। इसमें इन्होने तनिक आत्म-परिचय दिया है जिससे मालूम होता है कि यह रूपनगर (किशनगढ) के महाराजा सरदारसिंह की पुत्री और महाराजा सावतसिंह उपनाम नागरीदास की पोती थी—

रूपनगर नृप राजसी, जिन सुत नागरिदास।
तिनके सुत सरदारसी, हौ तनया मै तास॥

रूपनगर के इतिहास में इनको महाराजा सरदारसिंह की उप-पत्नी की बेटी लिखा है और यह भी लिखा है कि इनका विवाह कोटड़े अर्थात् राघौगढ के खीची गोपालसिंह के साथ हुआ था। यह लेख ठीक हैं और इसकी पुष्टि भाट-बड़वो की बहियो से भी होती है।

छत्रकुंवरी बाई का लिखा हुआ पूर्वोक्त एक ही ग्रथ 'प्रेमविनोद' मिला है जो ब्रजभाषा में है। यह स० १८४५ में लिखा गया था।[166] इसमें शृंगार रस की प्रधानता है। रचना सरस और मनोहारिणी है।

(६६) भैरूँ कवि—जयपुर राज्य के अधीन शेखावाटी प्रान्त में खेतड़ी नाम का एक प्रसिद्ध ठिकाना है। यह जयपुर से उत्तर की ओर ४५ मील की दूरी पर बसा हुआ है और जयपुर राज्य का सब से बड़ा करद संस्थान है। भैरूँ कवि यहीं के निवासी थे। ये खेतड़ी के राजा बाघसिंह के समकालीन थे। बाघसिंह ने सं० १८२८ से सं० १८५७ तक राज्य किया था।[167] अतएव लगभग यही समय भैरूँ कवि का भी ठहरता

165 हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का संक्षिप्त विवरण, पृ० १०।

166. मुशी देवीप्रसाद, महिलामृदुवाणी, पृ० २०।

167. प० झाबरमल्ल शर्मा, आदर्श नरेश, पृ० १४।

है । ये जाति के लोहार थे । इनके वशज अभी तक खेतडी मे विद्यमान हैं ।

कहा जाता है कि भैरूँ कवि ने कई ग्रथ लिखे थे पर उन सब का पता नही लगता । केवल एक ग्रथ हस्तगत हुआ है—छहरितुविलास । इसके अलावा इनके कुछ फुटकर छंद भी मिले है ।

'छहरितुविलास' साहित्य की एक उत्तम कृति है । इसकी भाषा ब्रजभाषा है । इसे कवि ने अपने आश्रयदाता खेतडी के राजा बाघसिह को समर्पित किया है । इसकी कविता ललित एव चित्रोपम है । ऋतुराज बसंत का शब्द-चित्र देखिये—

तरु नव पल्लव प्रगटि, निपट कोमल छबि छाइव ।
ठौर ठौर बढि डार, तरल सुकुमार सुहाइब ।।
अब मौर महकत, कहुँक कोकिल सुक-सारिय ।
कल कपोत धुनि भमर, फबित टेसू बन बारिय ।।
फूलि झूलि झूमति भई, भू परि लता अमाप तैं ।
मूरतिवत बसत तहँ, बिचरत बाघ प्रताप तैं ।।

(६७) **उत्तमचंद भंडारी**—ये जोधपुर-निवासी ओसवाल महाजन थे। इनका रचनाकाल स० १८३७–६४ है । 'मिश्रबंधु-विनोद' में लिखा है कि ये जोधपुर के महाराजा भीमसिह के मत्री थे और कुछ दिन महाराजा मानसिह के भी मंत्री रहे थे ।[168] परन्तु जोधपुर के इतिहास एवं जोधपुर की ख्यातो आदि से इस कथन की पुष्टि नही होती । इतिहास-ग्रंथो से केवल इतना ही विदित होता है कि ये जोधपुर के महाराजा मानसिह के आश्रित थे ।[169]

उत्तमचद के बनाये छह ग्रथो का पता है । उनके नाम ये है—

(१) नाथचंद्रिका (२) अलकार-आशय (३) तारकतत्त्व (४) नीति की बात (५) रतना हमीर की बात और (६) नाथ-पथियो की महिमा ।

इनमें 'अलकार-आशय' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है । इसमें अलंकार विषय का विवेचन बहुत ही शास्त्रीय ढग पर हुआ है और उदाहरण मे जो कविताएँ रखी गई हैं वे भी बहुत उत्तम कोटि की है । नमूना देखिये—

168. पृ० ८६१ ।
169 ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ० ८७४ ।

दुर्लभ या नर देह अमोलक पाइ अजान अकारथ खोवै ।
सो मति हीन विवेक बिना नर साध मतगहि ईधन ढोवै ।।
कंचन भाजन धूरि भरै सठ मूढ सुधारस सौ पग धोवै ।
बोहित काग उडावन कारन डारि महामणि मूरख खोवै ।।

(६८) **विष्णुसिंह**—इनका जन्म सं० १८३० में हुआ था ।[170] ये बूंदी-नरेश महाराव राजा उमेदसिह के पौत्र और अजीतसिंह के पुत्र थे । जब ये साढे चार माह के थे तब इनके पिता का देहान्त हो गया जिससे इनके दादा उमेदसिह ने बूंदी का शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया और जब तक विष्णुसिह नाबालिग रहे तब तक उन्होने उसे सुचारु ढंग से संभाला ।[171] बडे होनें पर इन्होने राज्य-कार्य करना प्रारंभ किया और जहाँ तक बन सका अपनी तरफ से राज्य को उन्नत करने में कोई कसर न रखी । महाराव राजा को मृगया का बडा शौक था और अपने हाथो से सहस्त्रो सिंहो का शिकार किया था । मृगया मे इनका एक पॉव भी टूट गया था जिससे ये चिरकाल तक लगड़े रहे और बहुत छोटे दीख पडते थे । इनके समय मे बूँदी राज्य और अग्रेजी सरकार के बीच में संधि हुई थी । इन्होने सात वर्ष तक राज्य किया और अपने पीछे दो पुत्रो को छोडकर ४५ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए ।

विष्णुसिह बडे वीर, विचारशील, उदार एवं समयोचित कार्य करने-वाले व्यक्ति थे, और विद्वानो तथा कवियो का बडा सम्मान करते थे । इसके सिवा ये स्वयं भी उच्च कोटि के कवि थे । इनके बनाये हुए दस हज़ार के लगभग कवित्त, सवैया इत्यादि मौजूद है, जिनसे इनके अद्भुत काव्य-कौशल और अगाध भगवद्भक्ति का परिचय मिलता है । इनकी भाषा और भाव दोनो जैसे सरल है वैसे ही व्यजना भी चुभती हुई, आकर्षक है । उदाहरण—

होरी मे गोरी किसोरी सबै मिलि दौरी सुपौंरी पै कान्ह पयैरी ।
हो हो कै हाक करी हॅसिकै बसिकै रसिकै चसिकै सचयैरी ।।
चंदन चोबेन चर्चित है चित यौ पिय की करि कै रिझयैरी ।
मार मची अति ही सुकुमार सुलाल गुलाल तै लाल भयैरी ।।

---

170. मुशी देवीप्रसाद, राजरसनामृत, पृ० ७१ ।

171. वही ।

(६९) उमेदराम—ये पाल्हावत शाखा के चारण जयपुर राज्य के हणूँतिया नामक गाँव में स० १८०० मे पैदा हुए थे ।[172] इनके पिता का नाम सामतजी और दादा का घासीराम था । उमेदराम के जन्म लेने के कुछ दिन बाद ही इनके पिता सामतजी का देहान्त होगया और इनके पितामह घासीराम ने इनको पाल-पोषकर बडा किया । उन दिनो मरहठो की सेना ने राजस्थान में लूट-मार मचा रखी थी । इसलिये सब लोग जहाँ-तहाँ भागते और छिपते फिरा करते थे । अत अपने दादा घासीराम के साथ उमेदराम भी इधर-उधर भटकते रहते थे । परतु कुछ काल बाद घासीराम की भी मृत्यु हो गई और घर-गृहस्थी का सारा भार इन पर आ पडा । इससे दु.खी होकर ये घर से निकल गये और अपने जन्म-स्थान हणूँतिया से कोई दस कोस की दूरी पर सामपुर नामक गाँव में एक ब्राह्मण के पास रहने लगे । उमेदराम यद्यपि विपत्ति के समुद्र में डूबे हुए थे, पर उद्योगी थे । इसलिए पडितजी की सेवा कर उनके स्नेह-भाजन बन गये और विद्याध्ययन करने लगे । वहाँ इन्होने सारस्वतचद्रिका, अमरकोष, रघुवंश इत्यादि सस्कृत ग्रथो तथा भाषा-कविता का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और फिर अपने घर लौट आये । परतु माता की दरिद्रावस्था देखकर इनका दिल पसीज गया और दूसरे दिन जयपुर चले गये ।

इस समय जयपुर में महाराजा माधौसिह का राज्य था । उन्होने इनका बड़ा सत्कार किया और एक सिरोपाव तथा पचास रुपैया देकर इनकी प्रतिष्ठा बढाई । इसके अनंतर ये राजस्थान के अन्य कई रजवाडो में गये जहाँ इनका बडा मान-सम्मान हुआ । अत में ये राजगढ (अलवर) के रावराजा बख्तावर-सिह के पास गये जिन्होने इनको अपने पास रख लिया । बख्तावरसिह की कृपा से इनका खूब भाग्योदय हुआ । यहाँ तक कि अलवर राज्य का शासन-प्रबध भी इन्ही के हाथ से होता था । इनको दस हजार की जागीर, हाथी, घोडे, शिविकादि राज्य-चिह्न मिले और इस प्रकार इनका घर बन गया ।

रावराजा बख्तावरसिह के बाद बिनयसिह उनके उत्तराधिकारी हुए । इनके समय में भी उमेदराम का सम्मान पूर्ववत बना रहा । इनका देहान्त सं० १८७८ में हुआ ।[173]

---

172. पुरोहित हरिनारायण, स्व० बारहठ बालाबख्श, पृ० १० ।

173. वही ।

उमेदराम के दो पुत्र थे, चामुडदान और रूपजी। ये भी बहुत विख्यात थे। रूपजी बडे दातार थे। उनके विषय मे यह कविता प्रसिद्ध है—

रूपा बारठ खूब था, बासी अलवर का।
दी सतरैसै असरफी, इक टप्पा भरका॥

परतु रूपजी दुराचारी और शराबी थे। उन्होने अपने पिता की सचित की हुई धन-सपत्ति को उडा दिया। इनके दुराचरण के कारण इनके दो गॉव भी ज़ब्त कर लिये गये जो बहुत उद्योग करने पर भी इनको वापस न मिले।

राजस्थान के चारण कवियो मे उमेदराम का एक विशिष्ट स्थान है। ये डिंगल और पिगल दोनो में रचना करते थे। विशेषकर शोक-काव्य लिखने मे ये बड़े निपुण थे। इनके लिखे ग्रथो के नाम ये है—

(१) वाणीभूषण (२) राजनीति चाणक्य (३) रामचद्रजी की राजनीति (४) अवध पच्चीसी (५) मिथिला पच्चीसी (६) जमक-शतक (७) बिहारी-सतसई की टीका (८) कविप्रिया की टीका (९) मरसिया बख्तावरसिहजी (१०) गीत झमाल (११) सत्योपदेश (१२) ब्रह्मकवच और (१३) रामाश्वमेध।[174]

उमेदराम सस्कृत, डिगल, पिगल आदि कई भाषाओ के पडित थे। काव्य-शास्त्र का इनको पूर्ण ज्ञान था। इनमे यथेष्ट कवित्व-शक्ति भी थी। इनकी भाषा खूब मँजी हुई ब्रजभाषा है और वह विषय-वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है। कविता अलकारमयी और चित्र-बहुल है।

(७०) मंडन भट्ट—ये जयपुर के महाराजा जयसिंह (तृतीय) के आश्रित कवि जाति के तैलग ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८३० में हुआ था।[175] इनके पिता का नाम ब्रजलाल था जो ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। मडनजी अपने समय के बहुत प्रसिद्ध कवि थे और जयपुर के अतिरिक्त बूदी आदि अन्य राज्यो में भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्होने कुल मिलाकर ११ ग्रथ बनाये जिनके नाम ये है—

(१) श्रीकृष्णब्रजबिहार (२) नवरसरत्नाकर (३) रससमुद्र (४) राम जस चद्रिका (५) कृष्ण-सुजस-प्रकास (६) सुलोचना-चरित्र (७) राठौड़

---

174. वही।
175. श्रीवल्लभ-वंश-वृक्ष, पृ० १२

चरित्र (८) भारतचरित्र (९) रावलचरित्र (१०) जयसाह-सुजस-प्रकाश और (११) बापूचरित्र[176]

(७१) **बुधजन**—ये जयपुर-निवासी जैन कवि थे। इनका वास्तविक नाम वृद्धिचद था। ये दीवान अमरचद के मुख्य मुनीम थे।[178] इनका रचना काल स० १८७०-९२ है। इनकी अब तक निम्नलिखित चार पद्य-रचनाएँ मिली है—

(१) तत्त्वार्थबोध (२) बुधजन-सतसई (३) पचास्तिकाय और (४) बुधजन-विलास।

बुधजन हिंदी के उन इने-गिने जैन कवियो में से हैं जिनकी रचना मे थोडी-सी साहित्यिकता पाई जाती। भाव की मौलिकता इनमें विशेष दिखाई नही देती पर भाषा इनकी काफी सरस और विषयानुकूल है। उदाहरण—

मेरे अवगुन जिन गिनौ, मै औगुन को धाम।
पतित उधारक आप हो, करौ पतित को काम ॥
पर उपदेस करन निपुन, ते तो लखे अनेक।
करै समिक बोलै समिक, जे हजार मे एक ॥
दुष्ट मिलत ही साधु जन, मही दुष्ट ह्वै जाय।
चदन तरु को सर्प लगि, विष नही देत बनाय ॥
दुर्जन सज्जन होत नहि, राखौ तीरथ बास।
मेलो क्यो न कपूर मे, हीग न होय सुबास ॥

(७२) **कृष्णलाल**—ये बूँदी के प्रसिद्ध गोस्वामी गदाधरलाल के वश मे महत श्रीमोहनलाल के पुत्र थे। इन्होने स० १८७२ मे नायिका-भेद का एक ग्रंथ 'कृष्ण-विनोद' और स० १८७४ में दूसरा ग्रथ अलंकारो का 'रस-भूषण' नाम का बनाया।[179] महाराव राजा विष्णुसिहजी की राणी राठौडजी की आज्ञा से भक्तमाल की टीका भी इन्होने लिखी थी। इनकी भाषा सानुप्रास और कविता मधुर है। एक उदाहरण देखिये—

---

176 राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० १९०, श्रीवल्लभ-वश-वृक्ष, पृ० १२

178. कामताप्रसाद जैन, हिंदी जैन साहित्य का सक्षिप्त इतिहास, पृ०१९७।

179. मशी देवीप्रसाद कविरत्नमाला, पृ० ६२।

सूखि सफेद भई बिरहै जरि, सोई गंगे गति ऊरध दैनी ।
अग मलीन अगार के धूमसी, सो जमुना जग जाहर रैनी ।।
ताहि समै भयो प्यारे को आवन, सो अनुराग गिरा गति लैनी ।
कृष्ण कहै तब ही वर बाल कै, आय कढी ततकाल त्रिवैनी ।।

(७३) **चंडीदान**—ये बूँदी राज्य के आश्रित कवि मिश्रण शाखा के चारण थे। इनका जन्म स० १८४८ में हुआ था। इनके पिता का नाम बदनजी था जो अपने समय में राजस्थान के बहुसम्मानित कवि थे। डिगल भाषा के प्रख्यात कवि सूरजमल इनके पुत्र थे। चंडीदान बूँदी के रावराजा विष्णुसिह के बडे कृपापात्र थे जिन्होने इनकी फुटकर कविता और 'बिरद-प्रकाश' नामक ग्रथ पर रीझकर इनको रोसूँदा नामक एक गाँव, लाखपसाव, लक्ष्मणगज हाथी, मकान आदि पुरस्कार में दिये थे।[180]

चंडीदान बडे मद्यपी थे। परतु अत समय में सब व्यसन छोड़कर काशी चले गये थे जहाँ स० १८९२ में इनकी मृत्यु हुई थी।

ये संस्कृत, ब्रजभाषा तथा डिंगल के मर्मज्ञ विद्वान और आशुकवि थे। इनके बनाये ग्रंथो के नाम ये है—

(१) सारसागर (२) बलबिग्रह (३) वंशाभरण (४) तीजतरंग और (५) बिरुदप्रकाश।

चंडीदान की कविता सानुप्रास और सरस है। उसमें इन्होने भाव की अपेक्षा उक्ति-चमत्कार लाने की चेष्टा विशेष की है। उदाहरण—

सुखद सताब डग डारत डगर बीच ।
तरल ततायी तुरतायी आवजाव मै ।
राग कीर पेंट तै उमग अग अंजन मै
नाचत निकाई तान चाल चितचाव मै ।।
रामसिह नृप के तुरंग चतुरग मोर
ठौर ठौर ठायै कवि कीरति कहाव मै ।
ऐसी गति नाच मै न चपला चलाव मै न
भामिनि के भाव मै न पातुरी के पॉव मै ।।

---

180. मुशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० १०८।

(७४) जवानसिंह—ये मेवाड के महाराणा भीमसिंह के पुत्र और महाराणा हमीरसिंह (द्वितीय) के पौत्र थे। इनका जन्म सं० १८५७ मे और देहान्त स० १८९५ में हुआ था ।[181] इतिहास-प्रसिद्ध रूपवती कृष्ण कुमारी इनकी बहिन थी। ये कविता में अपना नाम 'ब्रजराज' लिखा करते थे । इन्होंने ब्रजभाषा में अनेक कवित्त, सवैया, पद आदि बनाए जिनका सग्रह 'ब्रजराज-पद्यावली' के नाम से प्रसिद्ध है । इनकी भाषा परिमार्जित, कल्पनाएँ सुघड़ और रचना-पद्धति सरस है। इनके काव्य में शृंगार-भक्ति का अच्छा स्फुरण हुआ है। उदाहरण—

उद्धव आय गये ब्रज मे सुनि गोपिन के तन मे सुख छायौ ।
आनद सौ उमगी सगरी चलि प्रेमभरी दधि आन बँधायौ ।।
पूछति है मनमोहन की सुधि बोलत ही दृग नीर चलायौ ।
देखि सनेह सखा हरि कै घनस्याम बियोग कछू न सुनायौ ।।[182]

(७५) चैनराम—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण कविवर भोलानाथ के पौत्र और शिवदास के पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १८६० है। ये शाहपुरा (जयपुर) के अधीश हनुमतसिंह के आश्रित थे ।[183] इनका बनाया 'रससमुद्र' ग्रंथ प्रसिद्ध है। यह एक सग्रह-ग्रंथ है पर है बहुत उपयोगी। इसके सिवा इनके बनाये ग्रथो के नाम ये है—

(१) अद्भुत रामायण (२) भाषा भारतसार (३) भारतसार-चंद्रिका और (४) जानकी सहस्रनाम ।

(७६) मानसिंह—ये जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के पौत्र और गुमानसिंह के पुत्र थे । इनका जन्म स० १८३९ में हुआ था ।[184] इक्कीस वर्ष

---

181. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ७२२ और ७३२।
182. ब्रजराज-पद्यावली की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०।
183. चैनराम तिन तनय, ग्रथ भाषा कुछ पढ़िढय ।
महाराव हनुमंत मिलत किय कृपा सु गढ़िढय ।।
साहिपुरा सुखधाम तहाँ बुलवाय सु लिन्निय ।
हित करि तहाँ बसाय सबै मन बाँछित दिन्निय ।।
जिहि द्वार भीर जाचक अमित आवत पावत रैन दिन ।
हय गय अनंत भूषण धरनि बिन दिय रहत न एक छिन ।।
—रससमुद्र
184. विश्वेश्वर नाथ रेउ; मारवाड का इतिहास, पृ० ४०१।

की अवस्था में ये जोधपुर की गद्दी पर बैठे। कुछ सरदारो के षड्यन्त्रों, नाथो तथा मरहठो के कारण इनके राज्य मे बडी अव्यवस्था रही और इन्हे बडे कष्ट झेलने पडे। मरहठो आदि से तो इन्होने खूब लोहा लिया और बडी चतुराई से उनका दमन किया, पर नाथ-सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक भक्ति होने से नाथो का दमन ये न कर सके। यही नही, तत्कालीन पौलिटिकल एजेंट लड्लो ने जब दो-एक उपद्रवी नाथो को पकडकर अजमेर भेज दिया तब इन्हे भारी दु ख हुआ और उनको छुडवाने की चेष्टा करने लगे।[185] अन्त मे अपने इस प्रयत्न मे जब इन्हें सफलता न मिली तब इन्होने अन्न खाना छोड दिया और सन्यास लेकर इधर-उधर भटकने लगे।[186] इनका देहान्त स० १९०० की भादो सुदी १३ को जोधपुर मे हुआ।

महाराजा मानसिंह बडे कविता-प्रेमी, गुणाढ्य और सरस्वती-सेवक थे।[187] इन्होने काव्य-कला को बहुत प्रोत्साहन दिया। ये कवि-कोविदो का इतना आदर करते थे कि वे पालकियो में बैठे फिरते थे। इनके आश्रित कुछ बहुत प्रसिद्ध भाषा-कवियो के नाम ये है—

नाम	ग्रंथ
चैनाजी चारण	जलधरस्तुति
शिवनाथ	जलंधरजसवर्णन
मूलचंद यति	मानसागरीमहिमा
मनोहरदास	जस-आभूषणचन्द्रिका
	फूलचरित्र
दौलतराम सेवग	जलंधरगुणरूपक
मीर हैदरअली	जलंधर-स्तुति
सुकालनाथ	नाथ-आरती
पन्नाजी सेवग	नाथ-उत्सवमाला

185. वही; पृ० ४३८

186 वही; पृ० ४३८

187 इनकी गुणग्राहिता संबधी यह दोहा राजस्थान मे बहुत प्रसिद्ध है.—

जोध बसाई जोधपुर, ब्रज कीनी ब्रजपाल।
लखनेऊ कासी दिल्ली, मान करी नयपाल ॥

नाम	ग्रंथ
सेणीदान और धीरचद	नाथस्तुति
गुमानजी	दसमस्कध भाषा
ताराचद	नाथानद-प्रकाशिका
गाडूराम और वागीराम	जलधरजसभूषण
	मानसिहजसरूपक
बाँकीदास[188]	नाथस्तुति

महाराजा मानसिह स्वय अच्छे कवि थे। ये सस्कृत, पिगल और मारवाडी तीनो मे रचना करते थे। इनके बनाये पिगल भाषा के ग्रथो के नाम ये है—

(१) कृष्णविलास (२) चौरासी पदार्थ नामावली (३) नाथचरित्र (४) जलधरचरित्र (५) जलधरचद्रोदय (६) नाथपुराण (७) नाथस्तोत्र (८) सिद्धगगादि (९) प्रश्नोत्तर (१०) पद-सग्रह (११) शृगार रस की कविता (१२)परमार्थ विषय की कविता (१३) नाथाष्टक (१४) जलंधर ज्ञानसागर (१५) तेजमजरी (१६) पचावली (१७) स्वरूपो के कवित्त (१८) स्वरूपो के दोहे (१९) सेवासार (२०) मानविचार (२१) आराम रोशनी (२२) उद्यान-वर्णन।

महाराजा की कविता का राजस्थान में बहुत प्रचार है। इनकी कविता भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी है। शब्द-चयन की सुघड़ता द्वारा गंभीर से गभीर दार्शनिक भावो को सरलतापूर्वक चित्रित करनें मे यें खूब सफल हुए है। इन्होनें गेय पद भी प्रचुर परिमाण मे लिखे है जिनमे कुशल कवि की भाव-प्रवणता एक गतिवान प्रवाह की भाँति पाठक को अपनें साथ बहा ले जाती है।

---

188. ये मुख्यत डिगल भाषा मे कविता करते थे। इनके ग्रथो का सग्रह 'बाँकीदास-ग्रथावली' के नाम से ना० प्र० सभा काशी द्वारा तीन भागो मे प्रकाशित किया गया है।

तृतीय अध्याय का परिशिष्ट

(७७) जेठमल, नागौर । नि० का० सं० १७००, ग्र० (१) नारद चरित्र (२) नरसी महता की हुंडी, वि० ये कायस्थ थे ।

(७८) रूपसिंह, किशनगढ़ । नि० का० स० १७००; र० फुटकर पद; वि० ये किशनगढ के महाराजा हरिसिंह के पुत्र थे ।

(७९) हरिदास, जोधपुर । नि० का० स० १७०१; ग्र० अमरबत्तीसी, वि० ये जाति के भाट थे ।

(८०) दलपति मिश्र । नि० का० स० १७०५(?), ग्रं० जसवत-उद्योत वि० जोधपुर के महाराजा जसवतसिह (प्रथम) के आश्रित ।

(८१) कमंच । नि० का० स०१७०८ के लगभग; र० स्फुट; विशेष वृत्त ज्ञात नहीं ।

(८२) राम कवि, जयपुर । नि० का० सं० १७१० के लगभग । ग्र० जयसिंहचरित्र; वि० ये मिर्जा राजा जयसिंह के आश्रित थे ।

(८३) श्रीधर । नि० का० सं० १७१०; ग्र० भवानीछंद; वि० इनका यह ग्रन्थ राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा में है ।

(८४) प्रतापसहाय । नि० का० स० १७१०; र० स्फुट । वि० ये राव जाति के कवि मेवाड के महाराणा राजसिंह (प्रथम) के आश्रित थें । बाद में बूंदी चले गयें थे ।

(८५) जेठमल, जयपुर । नि० का० स० १७१० कें आसपास; ग्रं० शालिहोत्र भाषा और फुटकर कवित्त; वि० यें कविता में अपना नाम 'मल' लिखते थ ।

(८६) सूरदत्त । नि० का० स० १७१२; ग्रं० रसिकहुलास; वि० शेखावाटी-अमरसर के कछवाहा-शेखावत कृष्णचद्र के आश्रित ।

(८७) जगन्नाथ, जैसलमेर । नि० का० स० १७१४, ग्र० रतिभूषण । वि० यह ग्रथ रावल सबलसिंह कें पुत्र अमरसिंह के लिये लिखा गया था ।

(८८) मानसिंह, किशनगढ़ । नि० का० स० १७१६; र० फुटकर पद; वि० यें किशनगढ़ कें राजा थें ।

(८९) कृष्णलाल, जयपुर (?), नि० का० स० १७१९; ग्रं० बिहारी-सतसई की टीका ।

(९०) नवीन, जोधपुर । नि० का० सं० १७२०, ग्रं० नेहनिधान; वि० महाराजा जसवतसिह (प्रथम) के आश्रित ।

(६१) धर्मवर्द्धन । नि० का० सं० १७१६-७३, र० फुटकर; वि० ये जैन कवि मुख्यत: राजस्थानी भाषा में कविता करते थे।

(६२) लक्ष्मीधर, जयपुर। नि० का० स० १७२७, ग्र० भारतसार; वि० जयपुर के महाराजा रामसिह (प्रथम) के आश्रित; वि० इनका उपनाम 'लाल' था।

(६३) नदन कवि, जयपुर। नि० का० स० १७३२, ग्र० व्यवहारसार। वि० कहा जाता है कि ये जयपुर के दरबारी कवि थे।

(६४) सतीदास व्यास, बीकानेर। नि० का० स० १७३३, ग्र० रसिक-आराम, वि० देवीदास व्यास के पुत्र और बीकानेर के महाराजा अनूपसिह के आश्रित।

(६५) प्रतापसिह, प्रतापगढ। नि० का० स० १७३०-६४; र० स्फुट, वि० ये देवलिया प्रतापगढ के राजा थे।

(६६) मान, बीकानेर। ग्र० सयोगद्वात्रिशिका (स० १७३१) कवि-विनोद (स० १७४५) और कवि-प्रमोद[189] (स० १७४६) वि० ये खरतर-गच्छीय जैन कवि थे।

(६७) कुभकर्ण, जोधपुर। नि० का० स० १७३२, ग्रं० रतनरासौ; वि० ये साँदू शाखा के चारण थे।

(६८) कमनेह। नि० का० स० १७३५, र० स्फुट, वि० अलवर अथवा करौली की तरफ के रहने वाले थे।

(६९) रूपजी, जोधपुर। नि० का० स० १७३६, ग्र० रसरूप; वि० ये मेडता ग्राम-निवासी पुष्करणा ब्राह्मण रामदास के पुत्र थे।

(१००) देवीदास, करौली। नि० का० स० १७४२, ग्र० (१) प्रेम-रत्नाकर, (२) दामोदर-लीला और (३) राम-नीति, वि० करौली के राजकवि थ।

(१०१) वल्लभ, किशनगढ। नि० का० स० १७५०; ग्रं० वल्लभ मुक्तावली और वल्लभ-विलास; वि० ये वृद कवि के पुत्र थे।

(१०२) शिवराम, नागौर। नि० का० स० १७५४। ग्र० दसकुमार-प्रबध, वि० बीकानेर के महाराजा अनूपसिह के आश्रित।

---

189. कवि-विनोद और कवि-प्रमोद नाम कुछ भ्रामक है। ये कविता के ग्रथ नही है जैसा कि इनके नामो से भास होता है। ये वैद्यक के ग्रथ है।

(१०३) लोकनाथ चौबे, बूँदी। नि० का० सं० १७६०; ग्रं० रसतरग; वि० ये बूँदी के महाराव राजा बुध-सिंह के आश्रित थे।

(१०४) तिलोकराम, जोधपुर। नि० का० सं० १७६७, ग्रं० रस-प्रकास।

(१०५) गडू। नि० का० सं० १७७०; र० स्फुट, वि० कूटकाव्य लिखते थे।

(१०६) भोजमिश्र, बूँदी। नि० का० स० १७७५, ग्र० मिश्र-शृंगार, वि० महाराव राजा बुधसिंह के आश्रित।

(१०७) मूकजी। नि० का० सं० १७७५, ग्र० खीची जाति की वशावली, वि० इनके कुछ फुटकर छंद भी मिलते हैं।

(१०८) नैनसुख, करौली। नि० का० स० १७८० के लगभग, ग्र० माणिकपाल बारखडी, वि० करौली-नरेश माणिकपाल के आश्रित।

(१०९) बैनीराम, जयपुर। नि० का० स० १७८०; र० स्फुट।

(११०) रायकवि, किशनगढ़। नि० का० सं० १७८०, र० स्फुट, ये नागरीदास के समकालीन थे।

(१११) भीमचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१, र० फुटकर; वि० ये जन थे।

(११२) प्रेमचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१, र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(११३) प्रयाग, जोधपुर। नि० का० स० १७८१; र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(११४) अनदराम, जोधपुर। नि० का० स० १७८१, र० फुटकर, वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(११५) विजयराम, किशनगढ। नि० का० स० १७८१, र० स्फुट, वि० नागरीदास के आश्रित।

(११६) हीरालाल, सनाढ्य, किशनगढ। नि० का० सं० १७८१; ग्रं० सरदार-सुयश, वि० नागरीदास के आश्रित।

(११७) देवीचंद, जोधपुर। नि० का० स० १७८१; र० फुटकर, वि० महाराजा अभयसिह के आश्रित।

(११८) माईदास, जोधपुर। नि० का० स० १७८१, र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(११९) गुलालचद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१, र० फुटकर; वि० ये जाति के सेवक थे।

(१२०) रसचंद, जोधपुर। नि० का० सं० १७८१; र० फुटकर; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२१) कनीराम मुंशी, किशनगढ़। नि० का० स० १७८१; र० स्फुट। वि० नागरीदास के आश्रित।

(१२२) पन्नालाल, किशनगढ़। नि० का० स० १७८१, र० स्फुट; वि० नागरीदास के समकालीन।

(१२३) शिवचद, जोधपुर। नि० का० स० १७८१, र० फुटकर, वि० ये जाति के सेवक थे।

(१२४) सावतसिंह, जोधपुर। नि० का० स० १७८१, र० फुटकर, वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२५) आतम, जोधपुर। नि० का० सं० १७८२; ग्र० हरिरस, विशेष वृत्त ज्ञात नही।

(१२६) कृष्ण कवि, जयपुर। नि० का० स० १७८२, ग्र० बिहारी-सतसई की टीका, वि० ये ककौर वशी माथुर ब्राह्मण थे।

(१२७) नैनसिंह, बीकानेर। नि० का० सं० १७८६; ग्र० भर्तृहरि-शतक का गद्य-पद्यात्मक अनुवाद। वि० ये जैन यति थे।

(१२८) रसपुज, जोधपुर। नि० का० स० १७९०; ग्रं० कवित्त श्री माताजी रा; वि० महाराजा अभयसिंह के आश्रित।

(१२९) सुजानसिंह, करौली। नि० का० स० १७९०; ग्र० सुजान-विलास, वि० ये करौली के राजघराने से सबधित थे।

(१३०) कुँवर कुशल, जोधपुर। नि० का० स० १७९६; ग्रं० लखपत-यश-सिधु, वि० ये जैन थे।

(१३१) सरदारसिंह, बनेडा। नि० का स० १८००; ग्र० सुरतरस; ये बनेडा के राजा सुलतानसिंह के पुत्र थे।

(१३२) जदुनाथ भाट, करौली। नि० का० स० १८००; ग्र० वृत्तविलास, वि० करौली-नरेश गोपालसिंह के आश्रित।

(१३३) जयकृष्ण, जोधपुर। नि० का० स० १८००; ग्र० (१) कवित्त (२) शिवमाहात्म्य और (३) शिव गीता। वि० ये पुष्करणा ब्राह्मण थे।

(१३४) अनुरागीदास, किशनगढ़। नि० का० स १८०० के लगभग; ग्र० (१) डगहुडी (२) दीनबिरुदावली (३) जुगल-बिरुदावली (४) भक्त बिरुदावली और (५) गुरुबिरुदावली।

(१३५) पीथल। नि० का० स० १८०० (?) ग्रं० जुगल-विलास, वि० मानसिंह के पुत्र।

(१३६) वीरां, जोधपुर। नि० का० सं० १८०० से कुछ पहले; र० फुटकर पद; वि० यह स्त्री म० अभयसिंह की समकालीन थी।

(१३७) वीरन कवि, जोधपुर। नि० का० स० १८०१ के लगभग, र० स्फुट, वि० महाराजा अभयसिंह के समकालीन।

(१३८) गजसिंह, बीकानेर। नि० का० स० १८०३, र० स्फुट पद; वि० ये बीकानेर के महाराजा जोरावरसिंह के पुत्र थे।

(१३९) बहादुरसिंह, किशनगढ। नि० का० स० १८०६, र० स्फुट, वि० ये राठौड राजपूत किशनगढ के राजा थे।

(१४०) घासीराम, भरतपुर। नि० का० स० १८१०, ग्र० (१) काव्यप्रकाश की टीका (२) रसगंगाधर की टीका और (३) भाषा गीतगोविंद।

(१४१) अरिसिंह, मेवाड़। नि० का० सं० १८१७–२१; ग्रं० रसिक-चमन, वि० ये मेवाड के महाराणा राजसिंह (द्वितीय) के पुत्र थे।

(१४२) मूलराज, जैसलमेर। नि० का० सं० १८१९–७६; र० स्फुट; वि० ये जैसलमेर के राजा सस्कृत में भी रचना करते थे।

(१४३) मुरलीधर भट्ट, अलवर। ज० सं० १८२०; ग्रं० (१) शृगार-तरगिणी और (२) प्रेम-तरगिणी, वि० ये तैलंग ब्राह्मण कविता में अपना नाम 'प्रेम' रखते थे।

(१४४) रामलाल, जयपुर। नि० का० स० १८२०, ग्र० रामभक्ति-सुधा-निधान, वि० ये फुटकर कविता भी लिखते थे।

(१४५) मथुरामल, जयपुर। नि० का० सं० १८२०। ग्र० समर-भास्कर; वि० ये माथुर चतुर्वेदी थे।

(१४६) हरिराय, नाथद्वारा। नि० का० स० १८२० के लगभग, ग्रं० नित्यलीला, वि० ये चिम्मनजी के बेटे थे।[190]

(१४७) दौलतराय, किशनगढ़। नि० का० सं० १८२० के लगभग; ग्र० रसप्रबोध, वि० ये वृंद कवि के वंशज थे।

(१४८) गणेशदास, मेवाड। नि० का० सं० १८२०, ग्र० सुदामा चरित्र, वि० ये मेवाड राज्य के बागोर ठिकाने के एक मदिर मे पुजारी थे।

(१४९) शिवप्रसाद, बीकानेर। नि० का० स० १८२०; ग्र० अद्भुत रामायण, वि० ये ब्राह्मण कवि राजा राम के पुत्र थे।

(१५०) शिवराम, जयपुर। नि० का० स० १८२०; र० स्फुट, वि० महाराजा माधोसिंह (प्रथम) के आश्रित।

---

190. हरिराय नाम के एक और कवि नाथद्वारा मे हुए है। उनका जन्म स० १६४७ है।

(१५१) सागरजी, जयपुर। नि० का० स० १८२१; र० स्फुट, वि० ये कविया शाखा के चारण थे।

(१५२) ब्रजपाल, जयपुर। नि० का० स० १८२२ के लगभग, ग्रं० (१) महाभारत का पद्यानुवाद और (२) नीति-सग्रह, वि० ये तैलग भट्ट द्वारकानाथ के पुत्र थे।

(१५३) कवीन्द्र कवि, जयपुर। नि० का० सं० १८२४, र० स्फुट; वि० जैसलमेर के रावल मूलराज के आश्रित।

(१५४) कल्याण (सिह) जैसलमेर। नि० का० स० १८२५, र० स्फुट, वि० जैसलमेर के रावल मूलराज के आश्रित।

(१५५) श्रीनाथ शर्म्मा, जैसलमेर। नि० का० स० १८२६, ग्रं० (१) मूलराज-विलास (२) अन्योक्ति मंजूषा और (३) लोलिबराज भाषा वि० रावल मूलराज के आश्रित थे और सस्कृत-हिंदी दोनो में रचना करते थे।

(१५६) हरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १८३०; र० स्फुट, वि० महाराजा पृथ्वीसिह के अ श्रित।

(१५७) भीमसिंह, मेवाड। नि० का० सं० १८३४-८५; र० स्फुट; वि० ये मेवाड़ के महाराणा थे।

(१५८) रसरासि, जयपुर। नि० का० सं० १८३७, ग्र०. कवित्तरत्न मालिका; वि० ये म० प्रतापसिह के आश्रित थे; फुटकर कविता भी करते थे।

(१५९) श्रीकृष्ण भट्ट, अलवर। ज० स० १८४०; ग्र० आलीजा-प्रकाश, वि० ये तैलग ब्राह्मण मुरलीधर भट्ट के पुत्र थे और जन्मान्ध थे।

(१६०) दयालाल, किशनगढ़। नि० का० स० १८४० के लगभग, ग्र० (१) भक्तिचद्रिका और (२) कीर्तिप्रकास; वि० ये गौड ब्राह्मण थे।

(१६१) दामोदरजी, किशनगढ। नि० का० स० १८४०; र० स्फुट; वि० वृन्द कवि के वशज थे।

(१६२) अदारंग, जयपुर। नि० का० सं० १८४०; र० फुटकर पद; वि० महाराजा प्रतापसिह के आश्रित।

(१६३) मनभावनजी, जयपुर। नि० का० स० १८४०; र० फुटकर पद, वि० ये डूडू गॉव के रहनेवाले पारीक ब्राह्मण थे।

(१६४) शेरसिह, जोधपुर। नि० का० स० १८४६; ग्र० रामकृष्णजस; वि० महाराजा विजयसिह के पुत्र थे।

(१६५) पूर्णमल, अलवर । ज० का० सं० १८४७, र० स्फुट, वि० ये जाति के राव थे ।

(१६६) पंगु कवि, करौली । नि० का० स० १८४७; ग्र० घूस-बत्तीसी, वि० ये जाति के चारण थे ।

(१६७) अलीभगवान, जयपुर । नि० का० स० १८५०, र० फुटकर पद; वि० ये म० प्रतापसिंह के सगीता-ध्यापक थे ।

(१६८) तुलसी । नि० का० स० १८५० के लगभग, ग्र० (१) नयना-भक्ति (२) अष्टागयोग (३) वेदान्त-ग्रंथ (४) चौक्षरी ग्रथ (५) करनी सार-जोगग्रथ (६) साधु-लक्षण और (७) तत्त्व-गुन-भेद; वि० ये कोई साधु थे ।

(१६९) फतहराम चौबे, बूँदी । नि० का० सं० १८५०; र० स्फुट, वि० ये लोकनाथ चौबे की वश-परपरा में स्वरूपचद के बेटे थे ।

(१७०) बखतेश, जयपुर । नि० का० सं० १८५०; र० फुटकर पद, वि० ये कछवाहा राजपूत कविता में अपना नाम 'बख्तावर' भी लिखते थे ।

(१७१) शिवदास, जयपुर । नि० का० स० १८५०, ग्रं० (१) भाषा भारत और (२) अश्वमेध; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे ।

(१७२) अमृतराम, जयपुर । नि० का० स० १८५०, र० फुटकर पद, वि० ये पालीवाल ब्राह्मण सारगधर के पुत्र थे ।

(१७३) बँसीअली, जयपुर । नि० का० सं० १८५०, र० फुटकर पद ।

(१७४) मनीराम, जयपुर । नि० का० स० १८५०, ग्रं० बिहारी-सतसई की प्रतापचद्रिका टीका । वि० महा-राजा प्रतापसिंह के आश्रित ।

(१७५) खुँमाणसिंह, करौली । नि० का० स० १८५० के लगभग, र० फुटकर, वि० ये राव जाति के कवि करौली-नरेश मदनपाल के आश्रित थे ।

(१७६) गुमानीराम, जयपुर । नि० का० स० १८५०, ग्र० दीवाने हाफिज का छदोऽनुवाद, वि० ये म० प्रतापसिंह के मीरमुशी थे ।

(१७७) मुरलीधर, जयपुर । नि० का० स० १८५०, र० स्फुट, वि० ये गौड ब्राह्मण थे ।

(१७८) राधाकृष्ण, जयपुर । नि० का० सं० १८५३, ग्रं० रागरत्नाकर; वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे ।

(१७९) नाथूराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५४, र० स्फुट, वि० ये राव जाति के कवि रामजीदास के पुत्र थे।

(१८०) कल्याणसिंह, किशनगढ़। नि० का० सं० १८५४-९५, र० फुटकर पद; वि० ये राठौड राजपूत किशनगढ़ के राजा थे।

(१८१) रामकर्ण, जोधपुर। नि० का० सं० १८५५; ग्र० अलकार-समुच्चय; वि० महाराजा भीमसिंह के आश्रित।

(१८२) अनतराम, जयपुर। नि० का० सं० १८५५, ग्र० वैद्यक ग्रथ भाषा, वि० महाराजा प्रतापसिंह के आश्रित।

(१८३) दीनदयाल, जयपुर। नि० का० स० १८६०; ग्र० बुधजन-सतसैया।

(१८४) शभुराम, जयपुर। नि० का० स० १८६० के लगभग; र० स्फुट, ये जाति के राव थे।

(१८५) राधावल्लभ, किशनगढ। नि० का० सं० १८६० के लगभग; ग्रं० (१) भीष्म-पर्व, (२) गीता भाषा और (३) शालिहोत्र, वि० ये जाति के चारण थे।

(१८६) गगादीन, किशनगढ़। नि० का० स० १८६०, र० स्फुट; वि० ये जाति के चारण थे।

(१८७) हरिजी राणी (चावडीजी), नि० का० स० १८६०, र० स्फुट, वि० जोधपुर के म० मार्नासह की राणी थीं।

(१८८) आयस देवनाथ, जोधपुर। नि० का० स० १८६०, र० फुटकर दोहा, वि० ये म० मार्नासह के समकालीन थे।

(१८९) मनोहरदास, साँगानेर। नि० का० स० १८६६, धर्म-परीक्षा, वि० ये जाति के सोनी थे।

(१९०) सुन्दरसिंह भरतपुर। नि० का० स० १८६६, गं० (१) पचाध्यायी (२) गौरीबाई की महिमा (३) हुस्न-चमन (४) सुन्दर-सत-श्रृंगार। वि० ये भरतपुर के राज घराने के थे।

(१९१) लक्ष्मणदास, जयपुर। नि० का० सं० १८७०, र० स्फुट, वि० महाराजा जगतसिंह के समकालीन थे।

(१९२) गणेश, करौली। नि० का० स० १८७५, ग्र० (१) रसचंद्रोदय (२) कृष्ण-भक्ति-चद्रिका नाटक (३) सभा-सूर्य (४) फागुन-माहात्म्य और (५) नम्र-शतक, वि० ये जाति के चौबे थे।

(१९३) अनदराम, जयपुर। नि० का० स० १८७६, ग्र० रामसागर।

(१९४) किशनजी, मेवाड। नि० का० स० १८८०, र० फुटकर, वि० ये राजस्थान के प्रसिद्ध चारण कवि दुरसाजी की वश-परपरा में दूलहाजी के बेटे थे।[190]

(१९५) श्यामराम, जयपुर। नि० का० सं० १८८०, ग्र० दुर्गा-विनोद, वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(१९६) अमरसिंह, उदयपुर। नि०का० स० १८८०, र० स्फुट, वि० ये मेवाड के महाराणा भीमसिह के ज्येष्ठ पुत्र थे।

(१९७) गोपालजी, जयपुर। नि० का० स० १८८०, र० स्फुट, वि० ये रामलाल के पुत्र थे।

(१९८) हरलाल, बूदी। नि० का० स० १८८०, र० स्फुट, वि० ये राव जाति के कवि बूँदी दरबार के पोलपात थे।

(१९९) जसराम, जोधपुर। नि० का० सं० १८८०, ग्रं० राजनीति; वि० ये जाति के चारण थे।

(२००) सुखलाल, जयपुर। नि० का० स० १८८०, र० स्फुट, वि० ये राव शभुराम के पुत्र थे।

(२०१) चद्रसखी, जयपुर (?)। नि० का० स० १८८०, फुटकर पद,

(२०२) बदनजी, बूँदी। नि० का० सं० १८८२, ग्रं० होलकर-पचीसी और रसगुलजार, वि० ये मिश्रण शाखा के चारण थे।

(२०३) लक्ष्मीनाथ, जोधपुर (?) नि० का० सं० १८८३, ग्र० भजन-विलास, वि० महाराजा मानसिह के आश्रित पुष्करणा ब्राह्मण।

(२०४) हरि, कोटा राज्य। नि० का० स० १८८३, ग्र० रस मजरी।

(२०५) लाडूनाथ, जोधपुर। नि० का० सं० १८८४, ग्रं० सिद्धान्त-सार की टीका, वि० ये म० मानसिंह के समकालीन नाथसप्रदाय के जोगी थे।

(२०६) चैनराम, जयपुर। नि० का० स० १८८५, ग्रं० भारतसार भाषा।

---

190. इनके 'भीमविलास' और 'रघुवरजसप्रकास' नामक डिंगल भाषा के दो ग्रथ बहुत प्रसिद्ध हैं।

(२०७) रसनिधि, जयपुर । नि० का० स० १८८५, ग्र० जयसाह-विवाह उत्सव ।

(२०८) उदयचद, जोधपुर । नि० का० स० १८६०, ग्र० (१) रसनिवास (२) रसभृगार (३) दूषण-दर्पण (४) ब्रह्मप्रबोध (५) ब्रह्मविलास और (६) ब्रह्मबिहडन, वि० जाति के ओस-वाल महाजन ।

(२०९) मिहीलाल, जयपुर । नि० का० स० १८६०, र० स्फुट, वि० ये तैलग भट्ट पद्माकर के ज्येष्ठ पुत्र थे ।

(२१०) अम्बाधर, जयपुर । नि० का० स० १८६०, स्फुट, वि० पद्माकर के द्वितीय पुत्र ।

(२११) तुलछराय, जोधपुर । नि० का० स० १८६०, र० फुटकर पद, वि० महाराजा मानसिह की उप पत्नी ।

(२१२) चतुरदान, जोधपुर । नि० का० स० १८६० के लगभग, ग्र० चतुर-रसाल, वि० ये जाति के चारण थे ।

(२१३) निश्चलदास, बूँदी । नि० का० स० १८६०, ग्र० (१) विचार-सागर और (२) वृत्त-प्रभाकर, वि० बूँदी के म० रामसिह के आश्रित ।

(२१४) कान्हडदास । नि० का० स० १८६०, र० फुटकर पद, वि० ये जयपुर राज्यान्तर्गत जसरापुर के रहनेवाले थे ।

(२१५) भगतीराम, किशनगढ । नि० का० स० १८६० के लगभग, र० स्फुट, वि० वृन्द कवि के वशज थे । इनका उपनाम खुशराम था ।

(२१६) व्रजेन्द्र, भरतपुर । नि० का० स० १८६१, ग्र० रसानद ।

(२१७) भारतदान, जोधपुर । नि० का० स० १८६८, र० स्फुट, वि० ये आशिया शाखा के चारण थे ।

(२१८) दुलीचद, जयपुर । नि० का० १८६८, ग्र० महाभारत भाषा ।

(२१९) रसानद, भरतपुर । नि० का० स० १८६६, ग्र० सग्राम-रत्नाकर, वि० भरतपुर-नरेश बलवतसिह के आश्रित ।

(२२०) चतुर्भुज मिश्र, भरत पुर । नि० का० स० १८६६; ग्र० अलकार-आभा; वि० भरतपुर के महाराजा बलवतसिह के आश्रित ।

चतुर्थ अध्याय

संत-साहित्य

राजस्थान के पिंगल साहित्य का एक बहुत बडा अश निर्गुणोपासक संत कवियो का रचा हुआ है और 'संत-साहित्य' कहलाता है। यह साहित्य अधिकतर शान्त रस में लिखा गया है और इसका मुख्य स्वर है, विश्वकल्याण। इसी को इन सतो ने अपनी वाणियो में प्रकारान्तर से दोहराया है। वैसे यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इन मध्ययुगीन संतों का यह विश्वकल्याण का संदेश कोई नितान्त नया सदेश नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति हमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य में किसी न किसी रूप में हो चुकी है। इन सतो ने केवल यही किया है कि उसे लोकभाषा में और लोकोपयोगी ढग से व्यक्त किया है और यह इनकी भारतीय वाङमय को अपनी एक नवीन देन है।

सत-साहित्य में जितने भी सत हुए है वे पहले भक्त, फिर उपदेशक और फिर कवि थे और जहाँ तक बन सकता अपने विचारो को सरल से रूप में जनसाधारण के समक्ष रखने की चेष्टा करते थे। काव्य-कला सबंधी नियमो के निर्वाह तथा भाषा की प्रांजलता आदि की अपेक्षा इनका ध्यान लोक-कल्याण की ओर विशेष रहता था। अतएव उनकी रचनाओ में भाव-पक्ष का प्राधान्य है। इसमें कोई सदेह नही कि इन सतो में कुछ ऐसे भी हुए है जिन्होने भाव-प्रदर्शन के साथ-साथ काव्य-चमत्कार का भी ध्यान रक्खा है। परन्तु ऐसे संतो की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

राजस्थान में सत-साहित्य का निर्माण दादू पथ, चरणदासी पथ, रामसनेही पथ, निरंजनी पथ और लालदासी पथ के अनुयायी संत-महात्माओ ने विशेष किया है। कुछ ऐसे संत भी यहाँ हुए है जो किसी सप्रदाय अथवा पथ विशेष से संबंधित न थे। इन सब का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

दादूपंथ

दादूपंथ के जन्मदाता संत दादूजी थे। इस पंथ के अनुयायी जयपुर राज्य में अधिक पाये जाते है। इस पथ का कबीर पंथ से बहुत साम्य है। कबीर की भाँति दादू ने भी 'मैं' और 'तू' के भेदभाव को छोड़कर सब को समान

दृष्टि से देखने तथा निर्गुण-उपासना पर जोर दिया है ।[1] लेकिन कबीर पंथ की अपेक्षा हिंदू धर्म के सिद्धान्तो का प्रभाव इस पर कुछ विशेष दिखाई देता है । इस दृष्टि से कबीर पंथ की अपेक्षा दादूपथ हिंदू धर्म के अधिक निकट है ।

दादूपथी समाज इस समय मुख्यत' चार भागो मे विभाजित है—खालसा, विरक्त, उतराधा और नागा ।

(१) खालसा—दादूजी की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास उनकी गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे । गरीबदास के बाद उनके छोटे भाई मसकीनदास आचार्य गद्दी पर बैठे । इस प्रकार यह आचार्य-परपरा चलती रही और अभी तक जारी है । इस आचार्य-परंपरा के शिष्य-प्रशिष्य 'खालसा' कहलाते है । इनका मुख्य स्थान नरेना है । आचार्य गद्दी के थांभे के होने से अन्य थाभेवाले इनको कुछ विशेष आदर की दृष्टि से देखते है । इनका भेष पहले कपाली टोपी, चोला और कटि-वस्त्र था । किंतु अब उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन हो गया है । टोपी की जगह बहुत से साफा बाँधने लगे है । कटि-वस्त्र का स्थान धोती ने और चोले का कोट अथवा कमीज ने ले लिया है ।

(२) विरक्त—ये रमते-फिरते साधु दादूपंथी गृहस्थो को दादूजी की 'वाणी' का उपदेश देते है और भिक्षान्न पर अपना जीवन निर्वाह करते है । ये किसी थाँभे अथवा स्थान का आश्रय नही लेते । केवल शरीर-रक्षा के लिये कषाय वस्त्र तथा जल का पात्र, और दो-चार पुस्तकें अपने पास रखते है । इनमें कुछ अकेले और कुछ मंडलियाँ बाँधकर घूमते है । ये चातुर्मास में भ्रमण नही करते । पर जिस स्थान पर ठहरते है वहाँ नित्य नियम से दिन में एक बार दादूजी की 'वाणी' का पाठ अवश्य करते है ।

---

1. भाई रे ऐसा पथ हमारा ।
द्वै पख रहित पथ गह पूरा अबरन एक अधारा ।
बाद बिबाद काहु सौ नाही मै हूँ जग थे न्यारा ।।
समदृष्टि सूँ भाई सहज मे आपहि आप बिचारा ।
मैं, तैं, मेरी यह मति नाही निरबैरी निरबिकारा ।।
काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा ।
एहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो तत सहज हमारा ।।

(३) उतराधा—दादूजी के शिष्यों में से जो राजस्थान को छोडकर उत्तर की तरफ पंजाब में चले गये और वहाँ उनके उपदेशो का प्रचार करने लगे वे उतराधा कहलाये। इस समय इस वर्ग के लोग हरियाना, हिसार, रोहतक, दिल्ली, भटिंडा, नाभा, पटियाला आदि स्थानो में विशेष पाये जाते है। इनका मुख्य केन्द्र हिसार जिले का रतिया गाँव है।

(४) नागा—दादूपथियो का यह वर्ग इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इसकी सात जमातें है। इस वर्ग के साधु अस्त्र-शस्त्र-सचालन, युद्ध-कौशल और मल्ल-विद्या में बहुत निपुण पाये गये है और इन्होने समय-समय पर तलवार बजाकर जयपुर राज्य की बडी सेवाएँ की है। भारतीय स्वतत्रता के पूर्व जयपुर के सैन्य-विभाग में इनकी भी एक टुकडी थी जो अब तोड़ दी गई है। परतु राजाश्रय न होने पर भी यह वर्ग पूर्ववत सगठित रूप में विद्यमान है। इस वर्ग के कुछ लोग खेती और वाणिज्य-व्यवसाय भी करते है।

दादूपथी महात्माओ की राजस्थान मे बडी प्रतिष्ठा है। ये प्रायः बड़े विद्याव्यसनी, चरित्रवान और सयमी होते है। ये विवाह नही करते। दादूद्वारो में रहते है और गृहस्थो के लड़को को चेले बनाकर अपना पथ चलाते है। ये न तिलक लगाते है, न चोटी रखते है और न गले में कंठी पहनते है। ये प्रायः हाथ में सुमिरनी रखते है और जब मिलते है तब 'सत्यराम' कहकर एक दूसरे का अभिवादन करते है।

जयपुर से ४१ मील पश्चिम में नरेना नाम का एक छोटा-सा नगर है। इसी के पास भैराणे की पहाड़ी है, जिसकी खोल (गर्त्त) में दादूजी के शव को रखा गया था। दादूपंथी लोग इस स्थान को बहुत पवित्र मानते है और यही इनका मुख्य तीर्थ है।[2] नरेना में दादूजी के वस्त्र, उनकी पोथियाँ आदि सुरक्षित है जिनकी पूजा होती है। प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला

---

2. हमारे तीरथ रूप नरानो।
दादू दास बसै तिंहि ठाहर बैकुठ ते अधिकानो ।।
सीतल छाया निकट सरोवर बिच मे चौक रमानो ।।
हरि जन हस रहे तिंहि ठाहर सुख-सागर मनमानो ।।
भैराणो है मणिकार्णिका व्है कासी प्रस्थानो ।।
गरीबदास तहाँ आप बिराजै अनभ अग गनानो ।।

चतुर्थी से द्वादशी तक यहाँ एक भारी मेला लगता है और एक बहुत बडी सख्या में दादूपथी लोग एकत्र होते है ।

(२२१) दादू दयाल—दादू-पथ के प्रवर्त्तक संत दादूजी का जन्म स० १६०१ में हुआ था । इस बात का उल्लेख दादूपथी साहित्य में अनेक स्थानो पर मिलता है[3] और इसे आधुनिक विद्वानो ने भी स्वीकार कर लिया है । परतु इनकी जन्मभूमि व जाति के सबध में गहरा मतभेद है । दादूपथी विद्वानो का कहना है कि ये अहमदाबाद में पैदा हुए थे । वे यह भी बतलाते है कि दादूजी साबरमती नदी में बहते हुए एक छोटे से बालक के रूप में लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को मिले थे । इन विद्वानो का आधार जनगोपाल कृत श्रीदादूजन्मलीलापरची, राघवदास कृत भक्तमाल आदि ग्रंथ मालूम पडते हैं जिनमे ऐसा ही लिखा मिलता है । परतु इन बातो पर विश्वास लाना कठिन है । ऐसी बातें अधविश्वासी भावुक भक्त लोगो के काम की हो सकती है, इतिहास-खोजियो के उपयोग की नही है । और फिर इनको स्वीकार कर लेने पर भी दादूजी की वास्तविक जाति पर कोई प्रकाश नही पडता । केवल लोदीराम की जाति का पता लगता है जिसके द्वारा इनका पुत्रवत् पालन-पोषण होना बताया जाता है ।

इस विषय पर दादू-पथियो के अतिरिक्त देश-विदेश के कुछ अन्य मतावलबी विद्वानो ने भी प्रकाश डालने को चेष्टा की है जिनमें विश्वभारती के आचार्य क्षितिमोहन सेन का नाम उल्लेख योग्य है । इन्होने दादूजी को जाति का मुसलमान बताया है और लिखा है कि इनका पूर्व नाम दाऊद था । अपने इस कथन की पुष्टि इन्होने बंगाली बाउलो की वदना संबंधी इस वाक्य से की है—

"श्रीयुक्त दाऊद वन्दि दादू यॉर नाम[4]"

परंतु सेन महोदय के इस मत पर दादूपथियो की सहमति नहीं है । वे इसे उनकी एक सर्वथा भ्रान्त धारणा समझते है और अपने पक्ष के समर्थन में

---

3. सम्वत सौला सें ईकोतर सत एक उपज्यौ पुहुमी पर ।
पच्छिम दिसा अहमदाबादू ती ठाँ साध परगटै दादू ।।
—श्रीदादूजन्मलीलापरची

चंद रितू सुन और मयंकहि ऐमदबाद में उतरै आई ।
देवन पुष्प करी बरसा नभ चैत सुदी बसु मंगल पाई ।।
—सतगुणसागर

4. दादू, पृ० १७

दो बातें कहते है । एक तो यह कि सेन महोदय ने बाउलों की जिस वंदना से उक्त वाक्य लिया है वह वदना मौखिक परपरा से प्राप्त हुई है और इसलिए सदेहास्पद है । दूसरे इस वदना में दाऊद नामक जिन व्यक्ति का उल्लेख किया गया है वे संत दादू दयाल से भिन्न कोई दूसरे व्यक्ति हो सकते है । ये दोनो तर्क सगत है । लेकिन दादूपंथी साहित्य में ही एक ऐसा प्रमाण मौजूद है जिससे सेन महोदय के मत का पूरा-पूरा समर्थन होता है । दादूपथ में बालकराम नाम के एक सत हुए है जो छोटे सुन्दरदास के शिष्य थे।[5] इन का रचना-काल स० १७१० के आसपास है । इन्होने अपनी रचना में एक स्थान पर दादूजी का 'असुर कुल' में आविर्भूत होना लिखा है—

भक्ति विषै नहि भेद, वेद यूँ बोले बानी ।
अत्यज ब्राह्मण आदि, जाति जगदीस न मानी ।।
कलि कबीर कुल असुर, असुर कुल प्रगटे दादू ।
भगत विभीषण भये, असुर कुल बलि प्रहलादू ।।
पुनि गणिका कुब्जा भीलनी, गोपी द्रिढ गोविद गहै ।
कहै बालकराम हरि भजन बिनु, अभिमानी न्यारे रहै ।।[6]

यह 'असुर' शब्द मुसलमान जाति का स्पष्ट द्योतक है और इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग राजस्थानी-साहित्य में अनेक स्थानो पर हुआ है और राजस्थानी-कोष में भी मिलता है । नीचे हम मुरारिदान कृत डिंगल-कोष से वह अश उद्धृत करते है जिसमें 'मुसलमान' शब्द के २२ पर्यायवाची शब्द बताये गये है—

रोद रवद खदडो तुरक, मीर मेछ कलमाण ।
मुगल असुर बीबा मियाँ, रोजायत खुरसाण ।।
कलम जवन तणमीट कह, खुरासाण अर खान ।
चगथा आसुर फेर चव, मानहु मूसलमान ।।[7]

इस प्रसंग में एक खास बात याद रखने की यह है कि ये बालकराम

---

5. स्वामी मगलदास, पचामृत, पृ० ए (भूमिका)
6. वही, पृ० ३५ ।
7 पृ० १०६ ।

दादूजी के नाती थे[8] और इसलिये उनकी लिखी हुई बात अन्यथा नहीं हो सकती । वास्तव में दादूजी मुसलमान ही थे । दादूपथी विद्वानो को यह सत्य स्वीकार करना चाहिए ।

दादूजी की जन्मभूमि के विषय में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नही हो पाया है । इनके अहमदाबाद में उत्पन्न होने की जो कथा दादूपंथियो में प्रचलित है वह निस्सार है और दादूजी की जाति को छिपाने, उनको दिव्य पुरुष सिद्ध करने आदि उद्देश्यो से प्रेरित होकर गढ़ी गई जान पडती है। परन्तु जनगोपाल कृत 'श्रीदादूजन्मलीलापरची,' माधवदास कृत 'सतगुणसागर,' राघवदास कृत 'भक्तमाल' इत्यादि ग्रथो में दादूजी का जो इतिवृत्त दिया हुआ है उसके अध्ययन से ऐसा अनुमान होता है कि वे साँभर अथवा साँभर के निकटवर्त्ती किसी छोटे-मोटे गांव के रहनेवाले थे । इस अनुमान का आधार यह है कि उक्त ग्रथो में दादूजी के अहमदाबाद में जन्म लेने की कथा, जो कपोल-कल्पित है, समाप्त करते ही कथा-सूत्र को मिलाने के लिये उनको साँभर में ला बिठाया है और इस बीच का इतिहास प्राय: गायब है । स० १६२५ मे अर्थात् २४ वर्ष की अवस्था में दादूजी साँभर में थे ऐसा उल्लेख मिलता है ।[9] इससे पहले वे पाठाभ्यास आदि कार्यो में व्यस्त रहे होगे और एक संत के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर पाये होगे । अत: साँभर, जिसे दादूपथी विद्वान दादूजी की प्रथम यात्रा का स्थान बता रहे है, वास्तव में दादूजी के जीवन-प्रवेश का स्थान है । और वही अथवा उसी के आसपास का कोई गाँव उनकी जन्मभूमि होनी चाहिए ।

---

8. करै हस ज्युं अस, सार असार नियारे ।
आन देव को त्याग, एक परब्रह्म सभारे ।।
किये कवित्त षट तुकी, बहुरि मनहर अर इदव ।
कुडलिया पुनि साखि, भक्ति विमुखन को निंदव ।।
राघौ गुरु पख में निपुन, सत गुरु सुन्दर नाम ।
दादू दीन दयाल के, नाती बालकराम ।।
—राघवीय भक्तमाल

9. बारह बरस बालपन गयऊ । गुरु भेटत तब सनमुख भयऊ ।।
साभर आये समै पचीसा । गरीबदास जनमै बत्तीसा ।।
—श्रीदादूजन्मलीलापरची

कहा जाता है कि दादूजी जब ग्यारह वर्ष के थे तब भगवान ने वृद्धानंद नामक एक साधु के रूप में प्रगट होकर उनको गुरुमंत्र दिया था और वही उनके गुरु थे।[10]

दादूजी ने विवाह भी किया था। इनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। पुत्रों के नाम गरीबदास और मिसकीनदास थे। पुत्रियों के नाम रामकुवरि और शोभाकुवरि बताये जाते हैं।[11]

इनके योग-चमत्कार और मुग़ल सम्राट् अकबर से भेंट करने आदि की कथाएँ दादूपंथी विद्वानों के ग्रंथों में मिलती हैं पर उनका ऐतिहासिक महत्त्व विशेष नहीं है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में दादूजी नरेना में निवास करते थे जहाँ सं० १६६० में इनका स्वर्गवास हुआ था।[12]

दादूजी बड़े क्षमाशील एवं व्यक्तित्व-सम्पन्न पुरुष थे और स्वभाव के बड़े कोमल थे। इन गुणों के कारण ये बहुत लोकप्रिय हो गये थे और जहाँ जाते वहाँ छोटे-बड़े अमीर-गरीब सभी द्वारा समान रूप से आदृत होते थे। ये अपने पीछे हज़ारों शिष्य-प्रशिष्य छोड़कर मरे जिनमें ५२ मुख्य थे। इन ५२ मुख्य शिष्यों में से कुछ की गद्दियाँ अभी तक चल रही हैं।

हिंदी के संत-साहित्य में दादूजी की 'वाणी' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके छः संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सातवाँ प्रेस में है। यह दो भागों में विभक्त है, अंग-भाग और राग-भाग। अंग-भाग ३७ उपांगों में बँटा हुआ है जिनमें कुल मिलाकर २६५२ साखियाँ हैं। राग भाग में २७ राग-रागिनियों में बंधे हुए ४४५ पद हैं। वाणी का यह क्रम दादूजी के शिष्य रज्जबजी आदि द्वारा पीछे से किया गया है। पहले यह एक संग्रह मात्र था।

---

10. जनगोपाल; श्री दादूजन्मलीलापरची, प्रथम विश्राम, पद्य ४१

11 स्वामी मंगलदास; गरीबदास की वाणी, पृ० ठ (भूमिका)

12 समै गुनसठे नगर नरानै, साठे स्वामी राम समानै।

—श्रीदादूजन्मलीलापरची

गुनसठ वर्ष दिपै गुन पक्षहि, जेठ वदी बसुहि सनि जाने।
दादु दयाल मिलै भगवतहि माधवदास कथा गुन गाने।।

—सतगुणसागर

दादूजी बहुत पढे-लिखे न थे, पर बहुश्रुत थे और कवि तो माँ के पेट से पैदा हुए थे । इनकी कविता बहुत सरस, भावपूर्ण और कोमल है, वर्णन-शैली स्पष्ट और स्वाभाविक है । इनकी तुलना प्राय कबीर से की जाती है । इसलिए कि इन दोनो में भाव-साम्य अधिक है । यह ठीक है । परन्तु दोनो की भाव-व्यजना में अतर है । कबीर के शब्दो मे उग्रता विशेष है । वे तीखे तीरो की तरह लगकर घाव करते है, तडफाते है । परतु दादू के शब्दो में तीखापन उतना नही है । इनके शब्द-बाण घाव नही करते; केवल छू देते है जिससे पाठक सावधान हो जाय ।

(२२२) गरीबदास—ये दादूजी के ज्येष्ठ पुत्र थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी हुए थे । इनका जन्म स० १६३२ में और देहान्त स० १६९३ के आसपास हुआ था ।[13] इनके विषय में थोडा-सा मतभेद है । स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण आदि विद्वानो का कथन है कि ये दादूजी के औरस पुत्र थे । अपने कथन का आधार इन्होंने नही बताया पर वह आधार जनगोपाल कृत 'श्रीदादूजन्मलीलापरची' ग्रथ मालूम पडता है जिसमें ऐसा ही लिखा मिलता है--

नट की बाजी कऊ न जानै, करता की गति कौन बखानै ।
ज्यौ कबीर के भये कमाला, त्यौ स्वामी के उपजै बाला ।।
साँभर गाँव ऽरु समौ बतीसा, सावन जन्म दियौ जगदीसा ।
दादू पिता प्रगट है जाकै, गरीबदास सुत उपज्यौ ताकै ।।[14]

ऐसा ही लेख जैमलजी, चैनजी, राघवदास इत्यादि दादूपंथ के कुछ अन्य संतो का भी है--

मेर के न मेर होइ सेस के न सेस होइ
चद के न चद सूर सूर दीप देखिये ।
बाप की भगति गति ज्ञान तै गरीबदास
जैमल सुजस जस मो मन उमेखिये ।।

—जैमलजी

---

13 स्वामी मगलदास, गरीबदासजी की वाणी, पृ० ६ (भूमिका)
14 नवम विश्राम, पद्य १ और ४

औतरे दयाल घर दियौ दत्त कृपा करि
सनमुख भये हरिराम की निवाज है।

—चैनजी

दादूजी सुवन सूरवीर धीर सा पुरुष
गरीबनिवाज यों गरीबदास गाइये।

—राघवदास

परंतु दादूपंथी कुछ आधुनिक विद्वानो का मत इसके विरुद्ध है। उनका कहना है कि उपर्युक्त पद्यो में जो 'सुत' 'सुवन' इत्यादि शब्द आये है उनसे अभिप्राय वरद अथवा पोष्य पुत्र से है, न कि औरस पुत्र से।[15] अपने इस कथन की पुष्टि में ये माधौदास कृत 'संतगुणसागर' को आगे करते है जिसमें गरीबदास का साँभर के दामोदरजी नामक एक व्यक्ति के घर में जन्म लेना बताया गया है। दामोदरजी के कोई सतान नहीं थी। उनके मन में परम लालसा थी कि यदि किसी प्रकार दादूजी महाराज उन पर कृपा कर दें तो उनके भी संतति हो जाय। दादूजी को उनकी लालसा का पता लग गया। उन्होने दो लौंग और दो इलायची दामोदरजी को दिये। इससे उनके दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। पुत्रो के नाम गरीबदास और मसकीनदास थे। इन चारो संतानो को दामोदरजी ने दादूजी को भेंट कर दिया।[16]

उनका दूसरा तर्क यह है कि दादूजी के समकालीन और उनके बाद के कई दादूपंथी ग्रथकारों ने गरीबदास को दादूजी का शिष्य लिखा है और दादूजी के नाम के आगे 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। यदि गरीबदास दादूजी के औरस पुत्र होते तो ये ग्रंथकर्त्ता उनके लिये 'शिष्य' शब्द का प्रयोग कदापि न करते, पुत्र ही लिखते।[17]

ये दोनों युक्तियाँ मान्य नहीं है। कारण, माधौदास कृत 'संत-गुणसागर' में वर्णित दामोदरजी संबंधी लौंग-इलायची वाली उपरोक्त कहानी केवल मनगढ़ंत है। ऐसी बातो को इतिहास में स्थान नही मिल सकता। दूसरी दलील भी उतनी ही निरर्थक है। दादूजी एक सत थे और गरीबदास एक शिष्य की हैसियत से उनकी गद्दी पर बैठे थे।

---

15. स्वामी मगलदास, गरीबदासजी की वाणी, पृ० ६ (भूमिका)
16. वही; पृ० ठ (भूमिका)
17. वही पृ० ट (भूमिका)

अतएव दादूपंथी कुछ संतो ने दादू-गरीबदास के गुरु-शिष्य के संबंध पर जो जोर दिया है वह उचित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि दादूजी को एक अलौकिक योगसिद्ध ब्रह्मचारी प्रमाणित करने की धुन में आधुनिक दादूपंथी विद्वान गरीबदास को दादूजी का औरस पुत्र नहीं स्वीकार कर रहे है। यह उनकी इच्छा है। लेकिन ऐतिहासिक सामग्री, जनश्रुति और तर्क इन तीनो का बल उनके पीछे नही है।

गरीबदास की 'वाणी' प्रकाशित हो चुकी है। इसके चार अग है— अनभैप्रबोध, साखी, चौबोला और पद। इसकी छद-सख्या २६६ है। इसके पढ़ने से विदित होता है कि गरीबदास दर्शनशास्त्र के विचक्षण ज्ञाता और प्रतिभावान् कवि थे। इनकी 'वाणी' में ओज और सचाई है। पदो में स्वर-सगति और माधुर्य्य है।

(२२३) बखनाजी—बखनाजी नरेना के निवासी व दादूजी के शिष्य थे। कहा जाता है कि ये जाति के मुसलमान थे।[18] इनका रचना-काल सं० १६४०-७० है।[19] ये कवि होने के साथ-साथ सगीतज्ञ भी थे। इनकी सुरीली और कोमल आवाज लोगो को मंत्र-मुग्ध सा बना देती थी। स्वयं दादूजी इनके स्वर-माधुर्य्य पर लट्टू थे। एक दिन की बात है कि ये अपनी मित्र-मडली में बैठे होरी गा रहे थे। मार्ग में जाते हुए दादूजी के कानों में इनके गाने की मधुर ध्वनि पहुँची। वे चलते-चलते रुक गये और मन में सोचने लगे कि ऐसा व्यक्ति यदि परमात्मा का गुण-गान करे तो कल्याण हो जाय। उन्होंने इनको अपने पास बुलाया और भगवद्भजन का उपदेश दिया। बखनाजी मान गये और उसी दिन इन्होने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।[20]

---

18 स्वामी मगलदास, बखनाजी की वाणी, पृ० ३ (भूमिका)।

19 वही, पृ० ५।

20. बीतै जब ही वत्सर दोई। ढूंढाहर कै बिनती जोई॥
स्वामी गये सबन सुख पाये। रमते नगर नरानै आये॥ २४॥
बखनां होरी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौ कर लेख्यौ॥
कृपा करी तब अन्तरयामी। बचन उचारै ऐसे स्वामी॥ २५॥
ऐसी देह रची रे भाई। राम-निरजन गावौ आई॥
ऐसा वचन सुना है जब ही। बखनै दीक्षा लीनी तब ही॥ २६॥
—श्रीदादूजन्मलीलापरची, बारहवाँ प्रकाश।

बखनाजी की 'वाणी' का दादूपंथियो के अतिरिक्त अन्य लोगो में भी अच्छा आदर है । इन्होंने गेय पद अधिक लिखे है जिनमें बडी स्वाभाविकता और तल्लीनता पाई जाती है । भाषा इनकी ढूँढाडी से बहुत प्रभावित है ।

(२२४) जगजीवन—ये दादूजी के शिष्य किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे ।[21] इनका रचना-काल स० १६४० के आसपास है । ये दौसा के निवासी थे । कहा जाता है कि इन्होंने काशी में विद्याभ्यास किया था और दादूजी की महिमा सुनकर उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए ये आमेर में गये थे । कई दिनो तक शास्त्रार्थ होता रहा । अत में ये हार गये । इन्होंने अपनी सब पुस्तकें तालाब में फेंक दी और दादूजी का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया ।[22]

ये बड़े पडित और ज्ञानी साधु थे और हरिभजन में अपना समय व्यतीत करते थे । इनको काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास था और इन्होंने सुन्दरदास आदि अपने कई गुरु भाइयो को कविता करना सिखाया था इनके दो ग्रथ मिलते है, (१) वाणी और (२) दृष्टान्त-साखी-सग्रह । ये दोनो सुघड़ रचनाएँ है और अप्रकाशित है । इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ जयपुर के पुरोहित हरिनारायणजी के संग्रह में है ।

(२२५) जनगोपाल—ये वैश्य जाति के सत राहोरी (जयपुर) के अधिवासी थे । इनका रचना-काल सं० १६५० है । ये दादूजी के ५२ प्रधान शिष्यो मे से थे । दादूजी का शिष्यत्व स्वीकार करने के पूर्व ये सीकर में संन्यासी के रूप में घूमते फिरते थे और वही उनके चेले हुए थे ।[23] इसके बाद ये दादूजी के पास रहने लगे और आमेर, सांभर, नरेना, दौसा, भैराणा आदि स्थानो में जहाँ कही दादूजी पधारते उनके साथ जाते थे । ये उच्च कोटि के पडित एवं पहुँचे हुए महात्मा थे । स्वामी राघवदास ने इनके व्यक्तित्व की बडी सराहना की है—

दादूजी के पथ मे चतुर बुद्धि बातन को,
जानिये गोपालजन सर्व ही को भाव तौ ।

---

21 पुरोहित हरिनारायण, सुन्दर-ग्रथावली, पृ० ८१ (जीवनचरित्र) ।

22. वही, पृ० ८२ ।

23. सुखदयाल दादू ; श्रीदादूजन्मलीलापरची, पृ० ग (भूमिका)

नीकी बानी निरमल मीठो तुक-तानन मे,
कानन मे होत सुख अर्थ को सुनावतो ॥
मन बच कर्म हरि हारिल की लाकरी ज्यौ,
कहन सहित करुना-निधान गावतौ ।
राघौ मन राम नाम आदि ओकार कर,
सीस जगदीसजी को बारबार नावतौ ॥

जनगोपाल-रचित तेरह ग्रथो का पता है जिनके नाम ये है—

(१) श्रीदादूजन्मलीलापरची (२) ध्रुव-चरित्र (३) प्रहलाद-चरित्र (४) जडभरत-चरित्र (५) मोह-विवेक-संवाद (६) शुक-सवाद (७) काया-प्राण -सवाद (८) अनन्तलीला (९) चौबीस गुरुओ की लीला (१०) बारह-मासिया (११) भेंट के सवैये (१२) पद और (१३) साखी ।[24]

(२२६) रज्जबजी—ये सागानेर के एक प्रतिष्ठित पठान-वश में स० १६२४ के लगभग पैदा हुए थे ।[25] इनका जन्म-नाम रजबअलीखाँ था । बीस वर्ष की आयु में जब ये अपना विवाह करने के लिये दुलहा बनकर सागानेर से आमेर गये हुए थे तब वहाँ इनका दादूजी से साक्षात्कार हुआ और विवाह करने का विचार छोड उनके शिष्य बन गये । तभी से ये दादूजी के साथ रहने तथा कथा-कीर्तन, सत्सग आदि में अपना समय व्यतीत करने लगे । ये दादूजी के परम भक्त एवं विश्वास-भाजन थे और उनकी वाणी को वेदवाक्य समझते थे । कहते है कि दादूजी की मृत्यु से ससार इनको सूना-सा प्रतीत होता था और जिस दिन उन्होने अपना शरीर छोड़ा उसी दिन से इन्होने भी अपनी आँखें बद करली और आजन्म न खोली । इनका देहान्त स० १७४६ में हुआ था ।[26]

इनके कई शिष्य थे जिनमें गोविंददास, खेमदास इत्यादि दस शिष्य मुख्य थे ।[27] इनकी शिष्य-परंपरा के साधु रजबावत अथवा रज्जबपंथी कहलाते है और काफी बड़ी सख्या में पाये जाते है । इनका मुख्य स्थान सागानेर है ।

रज्जबजी के 'वाणी' और 'सर्वंगी' नामक दो ग्रंथ मिलते है जो राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में है । इनको दृष्टान्त बहुत प्रिय थे जिनके द्वारा इन्होने

24 वही ; पृ० च ।

25 'राजस्थान', सं० १९९२, अक १, मे प्रकाशित स्वर्गीय पुरोहित हरि-नारायण का 'महात्मा रज्जबजी शीर्षक लेख, पृ० ६९ ।

26. वही ; पृ० ७९ ।

27. वही ; पृ० ८० ।

प्रेम-भक्ति का मार्मिक विश्लेषण किया है । इनकी उक्तियाँ कहीं-कही सूफियों के ढंग की हैं पर वे दादूजी के मत का समर्थन करती है ।

(२२७) जगन्नाथदास—ये जाति के कायस्थ थे और आमेर में दादूजी के शिष्य हुए थे ।[28] इनका निर्माण-काल स० १६५० के लगभग है । ये दादूजी के बडे कृपापात्र थे । यहाँ तक कि उन्होने इनको अपनी छडी, गुदडी आदि चिह्न प्रदान किये थे । ये अच्छे कवि थे । इनके 'वाणी' और 'गुणगजनामा' ग्रंथ प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त इनके 'गीतासार' और 'योगवासिष्ठसरूर' नामक दो ग्रथ और बताये जाते है ।[29]

(२२८) भीखजन—ये फतहपुर-निवासी जाति के महाब्राह्मण अथवा आचार्य थे । इनके पिता का नाम देवीसहाय था ।[30] दादूजी के शिष्य सतदास इनके गुरु थे । ये बडे भजनानदी और गुणवान साधु थे । इनके बनाये दो ग्रथ मिले है, सर्वांगबावनी और भारती-नाममाला । 'सर्वांगबावनी' में ५४ कवित्त (छप्पय) है । यह स० १६८३ मे लिखी गई थी ।[31] इसमें नीति और लोक-व्यवहार की बातो क। वर्णन है । 'भारती-नाममाला' में ५२५ पद्य है, ५१७ दोहे और ८ कवित्त । इसका निर्माण सं० १६८५ में फतहपुर में हुआ था ।[32] यह 'अमरकोष' का पद्यानुवाद है ।

ये दोनो साहित्यिक रचताएँ है और अच्छे ढग से लिखी गई है । इनकी भाषा भी बहुत मँजी हुई और ललित है ।

(२२९) माधौदास—ये दादूजी के ५२ प्रधान शिष्यो में से थे और मारवाड़ राज्य के गूलर नामक गाँव में रहते थे ।[33] इनका लिखा हुआ 'संत

---

28. पुरोहित हरिनारायण , सुन्दर-ग्रथावली, पृ० ९२ (जीवनचरित्र) ।
29. वही ; पृ० ९३ ।
30. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, द्वितीय भाग, पृ० १५३ ।
31. सम्वत सोलह सै जु बरस, जब हुतौ तियासी ।
पोष मास पख सेत, हेत दिन पूरणमासी ।।
—सर्वांगबावनी, पद्य ५३ ।
32. सोलहसै पच्चासिये, सवत इहै विचार ।
सेत पाखि राका तिथू, कवि दिन मास कुवार ।।
—भारतीनाममाला, पद्य २० ।
33. पु० हरिनारायण ; सुन्दर-ग्रंथावली, पृ० ९३ (जीवन-चरित्र) ।

गुणसागर' ग्रंथ दादूपंथी साहित्य की एक बहुत लोकप्रिय रचना है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमें इसका रचनाकाल स० १६६१ दिया हुआ है, पर कुछ अश बाद में भी जोडे गये प्रतीत होते है। इसमें २४ तरंगें है जिनमें दादूजी के जीवनचरित्र पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। जनगोपाल के 'श्रीदादूजन्मलीलापरची' की भाँति इसमें भी कुछ अलौकिक घटनाएँ और किंवदन्तियाँ प्रवेश कर गई है; इसलिये बहुत प्रामाणिक तो यह नहीं है फिर भी अपनी चित्ताकर्षक वर्णन-शैली के कारण पढने योग्य अवश्य है।

(२३०) संतदास—ये दादूजी के शिष्य चमडिया गोत्रीय अग्रवाल महाजन थे। जनश्रुति है कि इन्होने जीवित समाधि ली थी। इनका समाधि-स्थान अभी तक फतहपुर में विद्यमान है जिस पर आठ खंभो की एक छतरी बनी हुई है। उसमें एक शिलालेख भी लगा हुआ है जिसमें इनका समाधि काल सं० १६६६ बताया गया है,[34] और लिखा है कि यह समाधि इन्होंने फतहपुर के नवाब अलफखाँ के पुत्र दौलतखाँ के शासन-समय में ली थी।

संतदासजी की 'वाणी' बारह हजार छदों की एक भारी रचना है। इसी लिये ये 'संतदास बारहहजारी' कहलाते है।

(२३१) वाजिन्दजी—दादूजी के अन्यतम शिष्यो में वाजिन्दजी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। ये जाति के मुसलमान थे।[35] राघवदास ने अपने 'भक्तमाल' में लिखा है कि एक दिन इन्होने शिकार करते समय एक गर्भिणी हरिणी पर तीर मारा। हरिणी तो मर गई पर उसके पेट में से एक जीवित बच्चा निकला। उसे देखकर इनके मन में दया आगई और वैराग्य उत्पन्न हो गया। इन्होंने अपने तीर कमान को फेंक दिया और ये दुनिया से नाता तोड़ दादूजी के शिष्य हो गये।[36]

---

34. वही; पृ० ८४।
35. स्वामी मगलदास, पचामृत, पृ० अ (भूमिका)
36. छाँडि के पठान कुल राम नाम कीन्हो पाठ,
भजन प्रताप सू वाजिन्द बाजी जीत्यौ है।
हिरनी हतत उर डर भयो भयकरि,
सीलभाव उपज्यौ दुसील भाव बीत्यौ है॥
तोरे है कमान तीर चाणक दियो सरीर,
दादूजी दयाल गुरु अन्तर उदीत्यौ है।
राघौ रति रात दिन देह दिल मालिक सूँ
खालिक सूँ खेल्यो जैसे खेलन की रीत्यौ है॥

मिश्रबंधु-विनोद में वाजिन्दजी का जन्म-काल संवत १७०८ लिखा है [37] जो अशुद्ध मालूम देता है। क्योकि ये दादूजी के शिष्य थे जैसा कि राघवदास कृत भक्तमाल से स्पष्ट है। अतएव इनका जन्म-समय दादूजी की मृत्यु अर्थात् सं० १६६० के पहले का होना चाहिये।

वाजिन्दजी के बनाये निम्नलिखित १६ ग्रन्थ मिलते हैं। कुछ लोगो का अनुमान है कि ये इनके स्वतन्त्र ग्रन्थ नही, बल्कि इनकी 'वाणी' के अवयव हैं। यह अनुमान ठीक जान पडता है। क्योकि इन ग्रंथो के नामो से कुछ ऐसा ही आभास होता है।

(१) अरिल्ल (२) गुण कठियारानामा (३) गुण उत्पत्तिनामा (४) गुण श्रीमुखनामा (५) गुण छरियानामा (६) गुण हरिजननामा (७) गुण नाम-माला (८) गुण गजनामा (९) गुण निरमोहीनामा (१०) गुण प्रेमकहानी (११) गुण विरह-अग (१२) गुण नीसानी (१३) गुण छंद (१४) गुण हितोपदेश (१५) पद और (१६) राजकीर्तन।

इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर साखियाँ भी इधर-उधर संग्रह-ग्रंथो मे बहुत देखने में आती हैं। कुछ का सकलन सत जगन्नाथ के 'गुणगजनामा' और रज्जबजी के 'सर्वंगी' ग्रथो में भी हुआ है।

(२३२) सुन्दरदास—ये दौसा के रहनेवाले खडेलवाल महाजन थे। इनका जन्म सं० १६५३ में हुआ था। [38] इनके पिता का नाम चोखा उपनाम परमानन्द और माता का सती था। [39] कहा जाता है कि टहटडा गाँव की ओर से घूमते हुए एक दिन दादूजी जब दौसा मे आये और इनके माता-पिता इनको साथ लेकर उनके दर्शन करने को उनके निवास-स्थान पर गये तब होनहार समझकर उन्होने इन्हें अपना शिष्य बना लिया। उस समय इनकी आयु छः वर्ष की थी। उसी दिन से इन्होने अपना जन्म-स्थान तथा पारिवार छोड दिया और दादूजी के साथ रहने लगे। दादूजी की मृत्यु तक ये उनके पास रहे। तदनंतर काशी चले गये। वहाँ इन्होने साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि विभिन्न विषयो का अध्ययन किया और कविता करना भी सीखा। फिर फतहपुर चले आये और अपने गुरु भाई प्रयागदास के साथ रहने लगे। [40]

---

37. पृ० ५०६
38. पं० रामचद्र शुक्ल, हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७५
39. हरिनारायण; सुन्दर–ग्रथावली, पृ० १ (जीवन चरित्र)
40. वही, पृ० २६

सुन्दरदास बडे मधुरभाषी, स्वरूपवान और बालब्रह्मचारी थे। इनके स्वभाव में बालको का सा भोलापन था। इनको देशाटन का बडा शौक था और बिना विशेष कारण के किसी एक स्थान पर नही ठहरते थे। इन्होने प्राय समस्त उत्तरी भारत, गुजरात, मालवा आदि का कई बार पर्यटन किया था। इससे इनके ज्ञान-भडार की अच्छी वृद्धि हुई और पजाबी, गुजराती आदि कई भाषाओ का अच्छा अभ्यास हो गया। इनका नियम था कि जिस किसी स्थान पर जाते वहाँ के साधु-महात्माओ और विद्वानो से अवश्य मिलते थे। उनके सत्सग से लाभ उठाते और अपने सदुपदेशो से उनको लाभान्वित करते थे। इन गुणो के कारण दादूपथियो के अतिरिक्त इतर धर्मावलम्बी भी इन्हें पूज्य दृष्टि से देखते और इनकी साधुता, ज्ञान-गरिमा एव काव्य-रचना-चातुरी की बडी सराहना करते थे।

स्वामीजी कभी फतहपुर में, कभी कुसारने में और कभी आमेर मे रहे। परन्तु अन्त समय में ये साँगानेर में थे जहाँ स० १७४६ में इनका बैकुठवास हुआ था। साँगानेर में जिस स्थान पर इनकी दाह-क्रिया हुई वहाँ इनके शिष्यो ने एक छोटा-सा चबूतरा बनाकर उस पर एक गुमटी खड़ी कर दी थी। यह गुमटी स० १९६५ तक अच्छी दशा मे रही पर बाद मे न मालूम किसी ने उसे तोड-फोड डाला और स्वामीजी के चरण-चिह्नो को भी उखाडकर फेक दिया। उस छतरी में यह चौपाई खुदी हुई थी—

सवत सत्रासै छीयाला। कातिक सुदि अष्टमी उजाला॥
तीजे पहर भरसपतिवार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥[41]

सुन्दरदास के कई शिष्य थे जिनमें दयालदास, श्यामदास, दामोदरदास, निर्मलदास और नारायणदास ये पाँच मुख्य थे। इन पाँचो के थाँभे बड़े थाँभे माने जाते हैं। इनमें भी फतहपुर का थाँभा प्रधान गिना जाता है। इसलिये ये 'सुन्दरदास फतहपुरिया' भी कहलाते हैं। इनके हाथ की लिखी हुई पुस्तकें, इनका पलग, टोपा आदि फतहपुर में इनके थाँभाधारियो के पास सुरक्षित हैं।

सुन्दरदास सत्साहित्य के उद्भावक, पोषक और उन्नायक थे। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं।

---

41 वही, पृ० ११९

(१) ज्ञान-समुद्र (२) सर्वाङ्गयोग प्रदीपिका (३) पंचेन्द्रिय-चरित्र (४) सुख-समाधि (५) स्वप्न-प्रबोध (६) वेद-विचार (७) उक्त-अनूप (८) अद्‌भुत-उपदेश (९) पचप्रभाव (१०) गुरु-सम्प्रदाय (११) गुन-उत्पत्ति-नीसानी (१२) सद्‌गुरु-महिमा नीसांनी (१३) बावनी (१४) गुरु दया षट्‌पदी (१५) भ्रम-विध्वस-अष्टक (१६) गुरु-कृपा-अष्टक (१७) गुरु-उपदेश ज्ञानाष्टक (१८) गुरुदेव-महिमा स्तोत्राष्टक (१९) रामाष्टक (२०) नामाष्टक (२१) आत्मा-अचलाष्टक (२२) पजाबी भाषा अष्टक (२३) ब्रह्म स्तोत्र अष्टक (२४) पीरमुरीद अष्टक (२५) अजब ख्याल अष्टक (२६) ज्ञान झूलनाष्टक (२७) सहजानंद (२८) गृह-वैराग्य बोध (२९) हरिबोल चितावनी (३०) तर्क चितावनी (३१) विवेक चितावनी (३२) पवगम छंद (३३) अडिला छद (३४) मडिला छद (३५) बारहमासा (३६) आयुर्बल भेद-आत्मा विचार (३७) त्रिविध अत.करण भेद (३८) पूरबी भाषा बरवै (३९) सुन्दरविलास (४०) साखी (४१) पद और (४२) फुटकर काव्य ।

हिंदी के निर्गुणोपासक भक्त कवियो में सुन्दरदास का एक विशिष्ट स्थान है । शान्त रस और वेदान्त विषयक कविता इनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है । ये साहित्य-शास्त्र के प्रौढ़ विद्वान थे और पद-साखियो के अतिरिक्त कवित्त-सवैया भी लिखते थे । अतः रीतिकालीन कवियो की अभिव्यजना पद्धति पर लिखी हुई इनकी कविताओ का जितना बौद्धिक मूल्य है उतना ही साहित्यिक भी है। और यही कारण है कि उन्हें पढ़ कर ज्ञान-पिपासु भक्तजन ही परितृप्त नही होते, किन्तु काव्य-कौशल के प्रेमी पाठक भी आनंदित होते और झूमने लगते हैं ।

(२३३) खेमदास—ये रज्जबजी के शिष्य थे[42] और सरवाड़ में रहते थे । इनका रचना-काल स० १७०० के आसपास है । अपने 'भक्तमाल' में राघवदास ने इनके विषय में एक कवित्त लिखा है जिससे इनके स्वभाव और चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । उस कवित्त को यहाँ उद्धृत किया जाता हैः—

महत रज्जब के अज्जब शिष्य खेमदास,
जाके नेम नितप्रति व्रत निराकार कौ ।
पंथ मे प्रसिद्ध अति देखिये दैदीप्यमान,
वाणी को विनाणी अति माझिन मे भार कौ ।।

42, स्वामी मगलदास पचामृत, पृ० औ (भूमिका)

रामत मेवाड मे मेवा सी मुख सोहे बात,
बोलन खरो सुहात बेतवा विचार कौं ।
राघौ सारो रहणी को कहणी सुकृति अति,
चेतन चतुरमति भेदी सुख सार कौ ।।

खेमदास के रचे हुए सत्रह ग्रथ उपलब्ध है । उनके नाम ये है—

(१) शुक-संवाद (२) भयानक चितावणी (३) गीपीचद—वैराग्य-बोध (४) धर्म-सवाद (५) ज्ञान चितावणी (६) राविया विसरे का पद्धतिनामा (७) नसीहतनामा (८) ज्ञानजोग (९) सदेहदवण (१०) जुगतिजोग भेद (११) सिधसकेत आत्मासाधन (१२) कसणी (१३) विप्रबोध (१४) गुण ज्ञान गगा (१५) जोग सग्राम (१६) बिडदावली और (१७) बावनी ।

इनकी रचना सद्भावोत्पादक और भाषा प्रौढ़ है, पर उस में उर्दू-फारसी के शब्दो का प्रयोग आवश्यकता से अधिक हुआ है जिससे कुछ अटपटापन आ गया है । उदाहरण—

हिन्दू अरु तुरक खुदाइ का जहान सब,
बेगाना न कोई भाई खेस करि जानियै ।
दोइ फरजद एक बाप करि जाने कोई,
दोनो का दरद दुई दिल मे न आनियै ।।
राखि इखलास सब सच्चे की सगाई साधि
मिहर मुहब्बत सो बदगी बखानियै ।
बेपीर बेराह बदनजर औ बदफैल,
खेमदास सोई जाति बेईमान रानियै ।।[43]

(२३४) राघवदास—ये पीपावशी चाँगलगोत शाखा के क्षत्रिय थे ।[44] इनके गुरु का नाम प्रहलाददास था । ये पहले वैष्णव मतानुयायी थे, फिर दादूपथी हो गये थे । इन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से 'भक्तमाल' नामक एक ग्रंथ सं० १७१७ में बनाया था—

सवत सत्रहसै सत्रहोतरा, सुकल पक्ष सनिवार ।
तिथि त्रिनिया आषाढ की, राघौ कियौ विचार ।।

43. वही पृ० ६१

44 पु० हरिनारायण; सुन्दर-ग्रथावली, पृ० ८८

यह ग्रथ नाभादास के 'भक्तमाल' की रचना-शैली पर लिखा गया है, पर उसकी अपेक्षा इसका दृष्टिकोण कुछ अधिक व्यापक और उदार है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में केवल वैष्णव भक्तो को स्थान दिया है। परतु इन्होंने दादूपथी सतो के अतिरिक्त रामानुज, विष्णुस्वामी, कबीर, नानक आदि अन्य मतावलबियो का भी वर्णन किया है। और यह इसकी एक प्रधान विशेषता है। बहुत प्रौढ और उपयोगी रचना है।

(२३५) **रसपुंजदास**—ये छोटे सुन्दरदास की शिष्य-परपरा मे थे। इनका असली नाम मोतीराम था। मिश्रबधुओ ने इनका कविता काल स० १७८७ बताया है[45] जो अशुद्ध है। इनके बनाये चमत्कार-चन्द्रोदय, प्रस्तार प्रभाकर और वृत्तविनोद नामक तीन ग्रथ मिलते है जो क्रमश स० १८६६,[46] स० १८७१[47] और स० १८७८[48] मे रचे गये थे। मिश्रबधु-विनोद में इनके एक और ग्रथ का उल्लेख किया गया है। उसका नाम है, कवित्त श्रीमाताजी रा।[49] परतु यह इनकी रचना नही है। रसपुज नाम के एक दूसरे कवि की कृति है जो जोधपुर-निवासी थे, जाति के सेवक थे और जोधपुर के महाराजा अभयसिह के आश्रित थे।[50]

(२३६) **स्वरूपदास**—ये चारण थे। इनके पिता का नाम मिश्रीदान था। इनका रचना काल स० १८८०—१६२० है। इनके पूर्वज उमरकोट के रहनेवाले थे जहाँ से आकर इनके पिता अजमेर प्रान्त के बडली गाँव में बस गये थे। इनका बचपन का नाम शकरदान था। इनको शिक्षा इनके चचा परमानद से मिली थी। परतु शिक्षा प्राप्त करते ही इन्होंने दादूपथ को स्वीकार कर लिया। इससे इनके चचा को बडी निराशा हुई। क्योकि अच्छा विद्वान बनाकर वे इनके द्वारा कही से अच्छी जीविका प्राप्त करना चाहते थे। इस बात पर दुख प्रकट करते हुए उन्होंने इन्हें एक पत्र में लिखा—

---

45 मिश्रबधु–विनोद, भाग दूसरा, पृ० ५०६

46 राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, प्रथम भाग, पृ० ३०

47. समत ससि मुनि बसु मही, चैत्र कृष्ण पछ सार।
पचमी गुरु पूरण भयो, प्रभाकर सु प्रस्तार।।

48 राजस्थान के हिंदी–साहित्यकार, पृ० २४६।

49. पृ० ६२१

50 डा० श्यामसुदरदास, हस्तलिखित हिंदी-पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, पृ० १३१

कीधौ थो कुण कौल, कह पाछौ का मू कियो ।
बेटा थारो बोल, माळै निमदिन मकग[51] ।।

ये सस्कृत, पिगल, डिगल आदि भाषाओ के अच्छे विद्वान थे । रतलाम, सीतामऊ आदि रियासतो के राजदंरबारो मे इनका बडा मान था । सीतामऊ के तत्कालीन नरेश राजसिह के पुत्र महाराज कुमार रत्नसिह की तो इनके प्रति इतनी गहरी भक्ति थी कि उन्होने अपने ग्रंथ 'नटनागर-विनोद' के प्रारभ में ईश्वर की वदना न कर पहले इन्ही की वदना की है ।

कहा जाता है कि स्वरूपदास ने छ ग्रथ बनाये थे । परतु अभी तक इनके केवल तीन ग्रथ मिले हैं—पाडवयशेन्दुचद्रिका, वृत्तिबोध[52] और हृन्नयनाजन । इनमें 'पाडवयशेंदुचद्रिका' राजस्थान के साहित्य-समाज की बहुत लोकप्रिय रचना है । यह महाभारत की कथा का साराश है और सोलह अध्यायो में विभक्त है । इसकी भाषा-शैली बहुत प्रौढ एव परिमार्जित है और हृदयस्पर्शी भाव-सौष्ठव तथा विषयगत लालित्य का इसमें बहुत सुन्दर संमिलन हुआ है ।

(२३७) मंगलदास—ये नागा जमात के मुखिया जाति के चारण थे और जयपुर राज्यान्तर्गत जाखल गॉव के पास ढाणी में रहते थे ।[53] इनके रचना-काल का निश्चित पता नही है । परतु इनके ग्रथो से ऐसा ज्ञात होता है कि ये स० १९१० तक वर्तमान थे । इन्होने गरु-पद्धति, तर्क-खंडन इत्यादि छोटे-मोटे कई ग्रंथ बनाये जिनमें 'सुदरोदय' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है ।

चरणदासी-पंथ

यह पथ मेवात-निवासी सत चरणदास से चला है । राजस्थान में इसके माननेवाले अधिकतर उत्तर-पूर्वी भाग में पाये जाते है । इस पंथ में निष्काम प्रेम तथा सदाचरण पर विशेष जोर दिया गया है और गुरु-भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का प्रमुख साधन माना गया है । संत चरणदास की श्रीमद्भागवत में बडी आस्था थी जिसकी सच्ची भावना को इन्होने अपनी कृतियो में ला उतारा है । एक तरफ ये कबीर, दादू आदि निर्गुणी सतो के अनुवर्त्ती थे और दूसरी तरफ श्रीकृष्ण को समस्त कारणो का कारण मानते थे । अतएव इनके मत-सिद्धान्तो में निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति दोनो के तत्वो का सम्मिलन हुआ है, यद्यपि झुकाव निर्गुण भक्ति की ओर कुछ अधिक है ।

---

51. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २२४
52. राजस्थान मे हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, भाग दूसरा, पृ० १४
53. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २४६

चरणदासी पंथ में विरक्त और घरबारी दोनो तरह के अनुयायी मिलते है। विरक्त पीले वस्त्र पहिनते है और ललाट पर गोपीचंदन का पतला तिलक लगाते है। ये सिर पर चार-पॉच हाथ लंबा पीले रग का एक छोटा साफा बॉधते है जिसके नीचे पीले रग की एक नोकदार टोपी होती है।

(२३८) चरणदास—ये जाति के ढूसर बनिया थे। इनका जन्म मेवात प्रदेश के डेहरा नामक गॉव मे स० १७६० मे हुआ था।[54] यह गॉव वर्तमान अलवर से कोई आठ मील उत्तर में है। इनके पिता का नाम मुरलीधर और माता का कुजो था। इनके गुरु का नाम शुकदेव था जिन्होने इनको शब्द-मार्ग का उपदेश दिया था[55] और इनका रणजीत नाम बदलकर चरणदास रखा था। कहा जाता है कि जब ये सात वर्ष के थे तब इनके पिता मुरलीधर अपना घर छोड जगल मे चले गये थे। इसलिये इनकी किशोरावस्था इनके नाना के घर दिल्ली में व्यतीत हुई थी।

लगभग तीस वर्ष की अवस्था में चरणदास ने अपने मत का प्रचार प्रारभ किया था और थोडे ही समय में उसे दूर-दूर तक फैला दिया था। इनके अनुयायियो में उस समय के अनेक धनी-मानी लोग थे जिनमे एक नाम मुगल बादशाह मुहम्मदशाह का भी लिया जाता है।

इनका देहान्त सं० १८३८ के लगभग दिल्ली नगर मे हुआ था।[56] दिल्ली में इनके निधन-स्थान पर एक समाधि बनी हुई है। इनकी एक छतरी इनकी जन्मभूमि डेहरा में भी है। वहाँ प्रतिवर्ष बसत पंचमी को एक मेला लगता है।

चरणदास की रचना के सबध में हिंदी के विद्वानो मे मतैक्य नही है। इनके ग्रंथो की संख्या कोई २१, कोई १५ और कोई १२ बतलाते है।[57] स्वयं चरणदास ने इस विषय में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा है। उन्होने केवल इतना ही लिखा है कि पहले पहल मैंने पाँच हजार बानियाँ लिखीं जिनको गंगाजी में बहा दिया। तदतर पाँच हज़ार और बनाईं। उनको हरि-नाम की अग्नि में जलाया। अत में पाँच हजार फिर रची जिनको सत-समुदाय के भेंट किया·—

---

54 डा० श्यामसुन्दरदास; हस्तलिखित हिंदी–पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, पृ० ४३

55. डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिंदी काव्य मे निर्गुण संप्रदाय, पृ० ८६

56. वही, पृ० ८७

57. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत-परंपरा, पृ० ६००

सवत सत्रहसै इक्यासी । चैन मुदी निथि पूग्नवासी ।।
सुकल पक्ष दिन सोमहिवारा । रचू ग्रथ यो कियो विचारा ।।
तब ही सू अस्थापन धरिया ।कछु बक वानी वा दिन करिया ।।
ऐस हि पॉच हजार बनाई । नाव गुरु के गग बहाई ।।
फिर भई बानी पॉच हजारा । हरि के नाव अगन मै जारा ।।
तीजै गुरु अग्या सू कीन्ही । सो अपने सताण कौ दीन्ही ।।[58]

—भक्तिसागर

उदयपुर के सरस्वती भडार में चरणदास के समस्त ग्रथो का एक प्रामाणिक सग्रह सुरक्षित है जिसका लेखन-काल स० १८७६ है ।[59] इसमें इनके ग्यारह ग्रथ सगृहीत है जिनकी छद-सख्या (अनुष्टुप श्लोक) पॉच हजार के लगभग है । इससे मालूम पड़ता है कि चरणदास ने यही ११ ग्रथ लिखे थे और इनके अलावा जो भी ग्रंथ हिंदी-साहित्य में इनके नाम से चल रहे है वे वस्तुत. इन के नही हैं । इन ग्यारह ग्रथो का विवरण इस प्रकार है:—

१ ब्रजचरित्र

पद्य संख्या	६५
विषय	श्रीकृष्ण व ब्रज का वर्णन

२ अमरलोक-अखंडधाम-वर्णन

पद्य संख्या	५३
विषय	स्वर्गलोक व प्रेम-वर्णन

३ धर्मजहाज

पद्यसख्या	१७७
विषय	कर्मवाद

४ ज्ञानस्वरोदय

पद्य संख्या	२२७
विषय	योग-क्रिया

५ अष्टांग जोग

पद्य संख्या	३३१
विषय	योगाभ्यास

58. सरस्वती भडार, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पत्र १२८

59. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज, प्रथम भाग, पृ० ६४

६ पद्योपनिषत्

पद्य सख्या	११६
विषय	उपनिषदो का अनुवाद

७ सदेहसागर

पद्य सख्या	२४
विषय	योगाभ्यास

८ भक्ति-पदारथ

पद्य सख्या	६०६
विषय	ईशभक्ति व ज्ञानोपदेश

९ मनविरक्त करन गुटकासार

पद्य सख्या	१०२
विषय	दत्तात्रेय-वैराग्य-वर्णन

१० ब्रह्मज्ञानसागर

पद्य सख्या	१९०
विषय	आध्यात्मिक ज्ञान

११ भक्तिसागर

पद्य संख्या	३६८
विषय	भक्ति, योग और ब्रह्मविद्या

अन्तिम ग्रन्थ 'भक्तिसागर' तीन भागो में विभक्त है—शब्द, छप्पय और कवित्त। कुछ विद्वानो ने इनको पृथक् ग्रथ मान लिया है और इस कारण भी इनके ग्रथो की सख्या बढ गई है। वास्तव में ये तीन पृथक् रचनाएँ नहीं हैं। एक ही रचना के तीन अग है।

चरणदास का समस्त जीवन ईशभक्ति-साधना से परिपूर्ण था। इन्होने अपनी रचना में भगवन्नाम जप की बडी महिमा गायी है और यही उसका मुख्य स्वर है। इनकी कविता सादी, भाषा सरल और भाव सीधे हैं।

(२३९) दयाबाई—यह महात्मा चरणदास की शिष्या थी और उन्ही के गॉव डेहरा में उत्पन्न हुई थी। इनके जन्म-काल का ठीक ठीक पता नहीं है। परतु कुछ विद्वानो का अनुमान है कि यह स० १७५० और सं० १७७५ के बीच में किसी समय पैदा हुई थीं।[60] यह चरणदास की जाति की थीं और

60. ज्योतिप्रसाद मिश्र, स्त्री-कवि- कौमुदी, पृ० ६०

उनके साथ दिल्ली में रहती थी। इनका देहात स० १८३० के आसपास हुआ था।[61]

दयाबाई के बनाये दो ग्रंथ मिलते है, दयाबोध और विनयमालिका। दयाबोध मे उसका रचना-काल दिया हुआ है जो सं० १८१८ है—

सवत ठारा सै समै, पुनि ठारा गये बीति।
चैत सुदी तिथि सातवी, भयो ग्रथ सुभ रीति॥

दयाबाई की रचना में दैन्य और वैराग्य की प्रधानता है और उस पर इनके निर्मल चरित्र की छाप लगी हुई है।

(२४०) सहजोबाई—यह भी चरणदास की शिष्या और सजातीया थी। इनका आविर्भाव काल स० १८०० है।[62] इनके पिता का नाम हरिप्रसाद था जो डेहरा के निवासी थे।[63] यह बाल ब्रह्मचारिणी थीं और अपने गुरु की भाँति साधुवृत्ति से रहती थी। इनकी कविताओ का एक सग्रह 'सहज-प्रकाश' बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित हुआ है। इसके अध्ययन से विदित होता है कि यह केवल भक्त ही न थीं, कवि भी थीं। इनकी कविता अत्यन्त मधुर एव उल्लासपूर्ण है और उसमें प्रेम का प्राधान्य है।

रामसनेही-पंथ

रामसनेही पथ राजस्थान में बहुत प्रचलित है। इस पंथ के अनुयायी साधु-महात्मा और गृहस्थ यहाँ के सभी भागों में पाये जाते है। ये लोग श्रीरामानुज स्वामी को अपना प्रथम आचार्य बतलाते है और रामानंद, अग्रदास इत्यादि उनके शिष्य-प्रशिष्यो से अपनी परंपरा मिलाते है।[64] ये निर्गुण ब्रह्म को राम के नाम से मानते है और उसी की आराधना करते है। इस पथ में ब्रह्मज्ञान को मानव जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है और उसकी प्राप्ति के लिये १५ नियम बताये गये हैं जिनका पालन करना आवश्यक है। वे नियम ये है—

(१) निर्गुण निराकार एक रामजी का ही इष्ट रखना और उन्हीं निर्लेप निरंजन परमेश्वर की पराभक्ति से उपासना करना।

61 शिवव्रतलाल, सतमाल, पृ० २१६
62 डा० श्यामसुन्दरदास, हस्तलिखित हिंदी-पुस्तको का सक्षिप्त विवरण, पृ० १७८
63. मुन्शी देवीप्रसाद, महिलामृदुवाणी, पृ० १०१
64. श्रीरामचरणजी की अणभैवाणी, पृ० १ (भमिका)

(२) वेद, श्रुति, स्मृति, गुरुवाणी, शास्त्र, आर्षग्रंथ, पुराण, आप्तवाक्यो को मानना और सद्विद्या का प्रचार करना ।

(३) पाठ-पूजन, संध्या वदनादि नित्य कर्मों का पालन करना और शरीर के समस्त सुखो को छोडकर निरतर राम-स्मरण पूर्वक योगाभ्यासी होना ।

(४) सद्गुरु और सतो की आज्ञा मानना । उनको ईश्वर रूप जानना और सत्संग को परम लाभ समझना ।

(५) अपने सब व्यवहारों को ईश्वराधीन जानना और हिसा रहित सत्य धर्मयुक्त सात्विक उद्यमी होना ।

(६) ईश्वर को अर्पण किया हुआ प्रसाद ग्रहण करना; अन्य देवताओ के प्रसाद को स्पर्श न करना और न अन्य देवताओ को देवत्व बुद्धिकर मानना ।

(७) भोजनाच्छादन की चिन्ता न करना और न किसी से याचना करना । केवल सर्वशक्तिमान एक ईश्वर से ही आशा-विश्वास रखना ।

(८) शील, संतोष, त्याग, वैराग्य, क्षमा, सरलता, धृति आदि धारण करना और सत्यभाषी होना ।

(९) काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अभिमान, ईर्ष्या, निंदा आदि का त्याग कर अन्त करण को शुद्ध रखना तथा संयम-नियम से रहना और स्त्री मात्र को माता-बहिन समझना ।

(१०) जल छानकर पीना, रात्रि में भोजन न करना, जीव रक्षार्थ पॉव देखकर धरना और चातुर्मास में बिहार न करना अर्थात् एक जगह रहना ।

(११) दूसरो के सुख, दुख, हानि, लाभ को अपनी ही तरह समझना और सब की उन्नति में अपनी उन्नति मानना ।

(१२) मानापमान रहित होकर तन, मन और वचन से परोपकार करना और संपूर्ण प्राणी मात्र को एक ही आत्मरूप से देखना ।

(१३) मॉस, मदिरा, भॉग, तम्बाकू, अफीम, जुवा आदि व्यवसनो से बचना और व्यसनी लोगो की संगति न करना ।

(१४) बाह्याडंबर में रत न होकर सात्विक रंग रंजित वस्त्र धारण करना और हर समय ईश्वर को याद करते करना ।

(१५) भ्रमात्मक भीरूता में न फँसकर सद्गुरु द्वारा प्राप्त वेदानुकूल सत्पथ का अनुसरण करना ।

राजस्थान में रामसनेहियो की तीन शाखाएँ है जिनके आचार्य शाहपुरा, खैडापा और रैण इन तीन केन्द्रो में अवस्थित है । इन तीनो शाखाओ के मूल सिद्धान्तो में विशेष अतर नहीं है पर इनके आचार्य भिन्न होने से इनके अनुयायी अपने को एक दूसरे से भिन्न मानते है ।

शाहपुरा की शाखा रामचरणजी से चली है। इसके अनुयायी साधु रामद्वारो में रहते है और भिक्षा माँग कर अपनी उदरपूर्त्ति करते है । ये कपडे नहीं पहिनते लंगोट बाँधे रहते है और ऊपर से कषाय चादर ओढ़ लेते है । पहले कोई-कोई साधु नगे भी रहते थे जो परमहस कहलाते थे । ये प्राय. कमडल, लगोट, चादर, माला और पोथी के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु अपने पास नहीं रखते और न किसी से रुपया-पैसा लेते है । ये विवाह नही करते । किसी उच्च वर्ण के लड़के को अपना चेला मूँड़ लेते है और जो चेला सबसे पहले मूँड़ा जाता है उसी का गुरु की गद्दी पर अधिकार होता है । बड़े चेले को छोटे चेले नमस्कार करते और गुरुवत मानते हैं । ये साधु रामद्वारो में रहते है जहाँ कथा बाँचते तथा भजन गाते हैं। ये शाहपुरा को अपना गुरुद्वारा समझते है जहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन सुदी १ से चैत्र वदि ६ तक मेला लगता है ।

(२४१) रामचरण—ये रामसनेहियो की शाहपुरा शाखा के प्रवर्त्तक थे और जयपुर के सोड़ा नामक गाँव के रहनेवाले बीजावरगी महाजन थे। इनका जन्म सं० १७७६ में माघ शुक्ला चतुर्दशी शनिवार को हुआ था। इनके गुरु का नाम कृपाराम था जिनसे इन्होने सं० १८०८ मे दीक्षा ग्रहण की थी।[65] । दीक्षा के पूर्व ये जयपुर दरबार की नौकरी में थे जैसा कि इन्होने अपने 'अमृत-उपदेश' ग्रंथ में प्रकट किया हैः

जन्म वैश्य घर पाइयो, पुनि सेवत राजद्वार ।
रामचरण जन ना मिलै, होता बहुत खवार ।।[66]

स० १८२६ में ये जयपुर से भीलवाड़ा (मेवाड़) पहुँचे और कुछ समय तक वहाँ रहकर फिर शाहपुरा गये । वहाँ के स्वामी रणसिंह ने इनका अच्छा स्वागत किया और इनकी गद्दी स्थापित करवाई ।

---

65. श्रीरामरचणजी की 'अणभैवाणी', पृ० २ (भूमिका)

66. वही; पृ० ४५६

इनका देहान्त सं० १८५५ में शाहपुरा में हुआ था ।[67] इनके २२५ शिष्य थे जिनमें से रामजन इनकी गद्दी पर बैठे ।

रामचरण की 'अणभै वाणी' एक भारी ग्रथ है । यह प्रकाशित भी हो चुका है । इसमें इनके फुटकर पद, दोहा आदि के अतिरिक्त निम्नलिखित २१ रचनाएँ संगृहीत है :—

(१) गुरुमहिमा (२) नामप्रताप (३) शब्दप्रकाश (४) अणभै-विलास (५) सुखविलास (६) अमृत-उपदेश (७) जिज्ञास बोध (८) विश्वासबोध (९) विश्रामबोध (१०) समतानिवास (११) रामरसायणबोध (१२) चितावणी (१३) मनखंडन (१४) गुरु-शिष्य-गोष्टी (१५) ठिगपारख्या (१६) जिदपारख्या (१७) पडित सवाद (१८) लच्छ-अलच्छ जोग (१९) बेजुक्ति तिरस्कार (२०) काफरबोध और (२१) दृष्टान्तसागर ।[68]

रामचरण की कविता बहुत सरल और स्वाभाविक है । इनकी भाषा प्रवाहयुक्त तथा विषयानुकूल है और उस पर राजस्थानी की पूर्ण छाया है । छदोभग इनकी कविता में कुछ विशेष दृष्टिगोचर होता है । इसके सिवाय विषय-वस्तु की पुनरावृत्ति भी उसमें बहुत हुई है । लेकिन उसमें शक्ति और सचाई दोनो विद्यमान है और उसके इन्हीं दो गुणो ने इनके पथ को अभी तक जीवित रखा है ।

(२४२) रामजन—ये रामचरण के पाटवी शिष्य थे और उनके बाद शाहपुरा की गद्दी के उत्तराधिकारी हुए थे । इनका रचना-काल स० १८३९ है ।[69] इनके बनाये 'रामपद्धति' और 'दृष्टान्तसागर की टीका' ये दो ग्रथ मिलते हैं । इन्होने फुटकर वाणियाँ भी लिखी थीं जिनकी सख्या १८००० बताई जाती है ।

(२४३) जगन्नाथ—ये रामचरण के २२५ प्रधान शिष्यो में से थे । इनका 'ब्रह्म-समाधि-विलीनजोग' नाम का एक ग्रथ मिलता है जो स० १८५५ में रचा गया था ।[70] इसमें रामचरणजी का जीवनचरित्र वर्णित है ।

---

67. वही; पृ० ३ (भूमिका)
68. वही, पृ० १०७१
69 वही; पृ० १०६७
70. अठारासै पचपन बरस, रवि चवदस वैसाख ।
ग्रथ सपूरण जगन्नाथ, पुनि जानो सुदि पाख ।।
—पद्य २७६

छदो की यह एक छोटी पर उपयोगी रचना है। इसकी भाषा भी बहुत सरस और कोमल है।

खैडापा की शाखा हरिरामदास से निकली है। हरिरामदास का जन्म-स्थान सिहथल (बीकानेर) था और इन्होने स० १८०० मे बीकानेर राज्य के दुलचासर गॉव मे जैमलदास नाम के एक रामानदी वैष्णव साधु से दीक्षा ली थी।[71] इनके एक शिष्य रामदास हुए जिन्होने खैडापे में अपनी गद्दी स्थापित की। अतएव खैड़ापे के रामसनेही रामदास को अपना आदि गुरु, हरिरामदास को अपना आदि प्रवर्त्तक और जैमलदास को अपना आदि आचार्य मानते है। इनके अनुयायियो की सख्या जोधपुर-बीकानेर मे अधिक पाई जाती है। रामदास स्वय गृहस्थ थे और अपने चेलो को भी उन्होने गृहस्थ-धर्म के पालन का आदेश दिया था। अपने शिष्यो के लिए किसी प्रकार का स्वरूप व बाना भी उन्होने नियत नहीं किया। पर बाद में इनके बेटे दयालदास और पोते पूरणदास ने रामसनेहियो के विरक्त, विदेही, परमहस, घरबारी और प्रवृत्ति ये पाँच भेद कर दिये जो आज तक चले आते हैं। शाहपुरा के रामसनेहियो की भाँति ये भी मूर्त्ति-पूजा नहीं करते। रामद्वारो में अपने गुरु का चित्र अवश्य रखते है पर यह प्रथा भी हरिरामदास से बहुत पीछे से चली है। खैडापे का गुरुद्वारा सिंहथल है। इन दोनो स्थानो पर होली के दूसरे दिन भारी मेला लगता है और साधु लोग भजन-कीर्तन तथा 'पचवाणी'[72] की कथा करते है।

(२४४) **हरिरामदास**—ये बीकानेर राज्यातर्गत सिंहथल नामक ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम भाग्यचद था।[73] ये बड़े कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी थे और बहुत थोडी आयु में वेदान्त, ज्योतिष आदि में पारगत हो गये थे। इन्होने स० १८०० में दुलचासर ग्राम में जाकर जैमलदास से दीक्षा ग्रहण की थी।[74] इनके योग-चमत्कार की कई कथाएँ प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इन्होने स्वरूपसिंह नामक एक निर्धन व्यक्ति को धनवान बना दिया था। इनका स्वर्गवास स० १८३५ में हुआ था।[75] इनके सैकडो शिष्य-प्रशिष्य हुए

---

71 श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ५ (परिचय)

72. कबीर, दादू, हरिदास, रामदास और दयालदास की वाणी 'पचवाणी' कहलाती है।

73 श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ४ (परिचय)

74 वही; पृ० ३९१

75 वही, पृ० ८

जिनमें बिहारीदास मुख्य थे, वही इनके बाद इनकी गद्दी के अधिकारी हुए। इन्होंने बहुत-सी फुटकर साखियाँ और पद बनाए तथा छोटे-छोटे ग्रंथ लिखे जिनमें 'नीसाँणी' इनकी सबसे प्रौढ रचना है। इसमें हठयोग, समाधि, प्राणायाम आदि की प्रक्रियाओ का वर्णन है।

(२४५) रामदास—इनका जन्म स० १७८३ में जोधपुर राज्य के बीकोकोर नामक ग्राम में हुआ था। ये जाति के मेघवाल थे। इनके पिता का नाम शार्दूलजी था।[76] बाल्यावस्था में इन्होंने थोडा-सा विद्याभ्यास किया और बाद में विरक्त होकर ये किसी योग्य गुरु की खोज में इधर-उधर घूमने लगे। इन्होंने बारी-बारी से १२ गुरु किये पर किसी से संतोष न हुआ। अन्त में एक दिन एक सद्गृहस्थ के मुँह से हरिरामदास की 'वाणी' सुनकर ये बहुत प्रभावित हुए और सिंहथल (बीकानेर) में जाकर उनसे भेंट की। सुयोग्य पात्र समझकर उक्त स्वामीजी ने इन्हें राम-मंत्र का प्रभाव तथा रामसनेही पथ के नियम बतलाये। इस पर सं० १८०६ में इन्होंने रामसनेही पथ को अगीकार कर लिया और हरिरामदास के पास रहकर राम-नाम का जप करने लगे।[77] सं० १८२१ तक ये सिंहथल में रहे पर बाद में जोधपुर की ओर चले गये और वहाँ खैड़ापे में अपनी गद्दी स्थापित की।[78] वहाँ इनके सैकड़ो शिष्य हुए जिन्होंने आगे चलकर रामसनेही पंथ के प्रचारार्थ बहुत काम किया। इनका गोलोकवास सं० १८५५ में ७२ वर्ष की आयु में खैड़ापे में हुआ।[79]

रामदासजी ने गुरु-महिमा, भक्तमाल, चेतावनी, जमफारगती आदि ग्रथ तथा अंगबद्ध अनुभव-वाणी की रचना की जिसके दास, उदास, शांभवी और खुदव ये चार भेद है।

(२४६) दयालदास—ये रामदास के पुत्र थे और उनके बाद खैड़ापे की गद्दी के अधिकारी हुये थे। इनका जन्म सं० १८१६ में और स्वर्गारोहण सवत् १८८५ में हुआ था।[80] ये बड़े अनुभवी और सच्चरित्र महात्मा थे। इनके शिष्य पूरणदास ने अपनी बनाई हुई 'जन्मलीला' में

---

76 वही, पृ० १०

77. वही, पृ० ११

78. वही, पृ० १४

79. वही; पृ० ३६१

80. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश; पृ० ३६१

इनकी बहुत प्रशसा की है । कविता भी ये अच्छी करते थे । इनका बनाया हुआ 'करुणासागर' ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है । इनके कुछ फुटकर पद भी मिले है ।

रैण के रामसनेही दरियावजी को अपना आदि गुरु मानते है । इनका गुरुद्वारा रैण है जहाँ दरियावजी का एक चित्र रखा हुआ है । वर्ष में एक भारी मेला यहाँ भी लगता है और इनके अनुयायी एक बहुत बड़ी संख्या में एकत्र होते है ।

(२४७) दरियावजी—ये जोधपुर राज्य के जैतारण नगर के निवासी थे और स० १७३३ में पैदा हुऐ थे ।[81] कुछ लोगो ने इन्हें जाति का मुसलमान मान रखा है,[82] जो निराधार है । क्योकि न तो दरियावजी ने कहीं अपने ग्रंथो में इस बात का उल्लेख किया है और न इनके समकालीन शिष्यो में से किसी ने इनका मुसलमान कुलोत्पन्न होना लिखा है । दरियावजी के अनुयायियो में से आज भी कोई यह नहीं कहता कि ये मुसलमान थे । अपने आचार्य की जाति का ठीक-ठीक पता बतलाने में दरियाव-पथी असमर्थ है पर वे मुसलमान नहीं थे यह कहने में सभी का मत एक है । हमारे खयाल से दरियावजी को मुसलमान लिखने की भूल सबसे पहले जोधपुर राज्य की सन् १८९१ ई० की सैन्सस रिपोर्ट तैयार करनेवालो ने की[83] और उसी को सच मानकर लोगो ने इन्हें मुसलमान लिखना शुरु कर दिया है ।

दरियावजी की वाणी में स्पष्ट ही इनके माता-पिता के नामो का उल्लेख है[84] जो हिंदू शैली के है जिससे इस सबध में सदेह करने का स्थान ही नही रह जाता । इनका जन्म-नाम दरियावजी था पर साधु होने के बाद से लोग इन्हें दरियासाजी कहने लग गए जिसका आजकल दरिया साहब हो गया है । दरियावजी के गुरु का नाम पेमदास

---

81 श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ०३९१

82. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत–परपरा, पृ० ५७८

83. पृ० २८९

84. पिता मानजी जान गीगाँ महतारी ॥
त्रिविध मेटण ताप आप लियो अवतारी ॥
—दरियावजी की वाणी, पद्य १७

था[85] जिनसे इन्होने स० १७६९ मे दीक्षा ली थी ।[86] गुरु-मंत्र ग्रहण करने के कुछ वर्ष पश्चात् दरियावजी जैतारण से रैण नामक गॉव में चले गये और वहॉ॰ पर इन्होने अपनी गद्दी स्थापित की जो अभी तक विद्य-मान है । जोधपुर के सिवा राजस्थान की दूसरी रियासतो में भी दरियावजी के रामसनेहियो की सख्या काफी है । इनका स्वर्गवास स०१८०५ में हुआ था ।[87]

दरियावजी को हिदी, सस्कृत, फारसी आदि भाषाओ का अच्छा ज्ञान था और काव्य-रचना में भी ये निपुण थे । कहते है कि इन्होने 'वाणी' नामक एक बहुत बड़ा ग्रथ लिखा था जिसमें १०००० के लगभग पद, दोहा आदि थे । पर आजकल तो इनकी बहुत कम कविताएँ मिलती है । रामसनेहियो में यही एक ऐसे कवि हुए है जिनकी भाषा सुव्यवस्थित और रचना साहित्यिक कही जा सकती है ।

निरंजनी–पंथ

यह पथ संत हरिदास से चला है । इसके अनुयायी निरजन निरा-कार परब्रह्म की आराधना करते है जिसको वे आकाश की भॉति सब कही व्याप्त मानते है । इस पथ के माननेवालो में घरबारी और निहंग दोनो पाये जाते है । घरबारी गृहस्थियो के से कपडे पहिनते और रामानदी तिलक लगाते है । निहग खाकी रंग की गुदडी गले में डाले रहते है और भिक्षा मॉगकर खाते है । कोई-कोई निरजनी साधु गले मे सेली भी बाँधते है । प्रारभ में ये लोग मूर्त्ति-पूजा नही करते थे पर अब करने लग गये है । जोधपुर राज्य में डीडवाणे के पास गाढा नामक एक छोटा-सा गॉव है । वहॉ प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी १ से १२ तक मेला भरता है । इस अवसर पर इस पथ के अनुयायियो की भारी भीड़ लगती है जिनको हरिदास की गुदड़ी के दर्शन कराये जाते है । गाढ़ा निरजनियो का मुख्य केन्द्र है । वहाँ इनके महत और साधु रहते है ।

हरिदास के ५२ शिष्य थे जिनसे हरिदासोत, पूर्णदासोत, अमरदासोत, नारायणदासोत आदि कई थॉभे स्थापित हुए । उनमें से कुछ थॉभे अभी तक वर्तमान है ।

---

85 रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड, सन् १८९१, पृ० २८८

86 श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ३९१

87. वही, पृ० ३९१

(२४८) हरिदास—ये जोधपुर राज्यान्तर्गत कापडोद गाँव में पैदा हुए थे।[88] इनके अनुयायी इनको साँखला शाखा के क्षत्रिय बतलाते है। परन्तु कुछ अन्य लोगो का कहना है कि ये बीदा राठौड थे। कोई कोई इनकी जाति जाट मानते है। ये ४५ वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। कहते है कि एक बार दुर्भिक्ष पड जाने के कारण ये जगल में साथियो के साथ जाकर एक यात्री को लूटने लगे। उस समय भगवान ने गुरु गोरख-स्वरूप मे प्रकट होकर इन्हे डकैती करने से रोका और मत्रोपदेश दिया। तब से इनके जीवन मे परिवर्तन आ गया और ये घरबार छोड़-कर ईश्वर की अराधना में लीन रहने लगे। इनका गोलोकवास स० १७०० में हुआ था।

हरिदास एक व्यक्तित्वसपन्न महात्मा और जन्मसिद्ध कवि थे। इनके रचे निम्नलिखित नौ ग्रथो का पता है.—

(१) भक्तबिरदावली (२) भरथरी–सवाद (३) साखी (४) पद (५) नाममाला (६) नामनिरूपण (७) व्याहलो (८) जोगग्रथ और (९) टोडरमल जोगग्रथ।[89]

सत हरिदास की कविता का राजस्थान में बडा मान है। इनकी भाषा बहुत सीधी सादी और कविता ज्ञानवर्द्धक तथा मार्मिक है। इन्होने प्रेम पर बडी सरस कविताएँ लिखी है। अध्यात्मवाद की दृष्टि से इनकी कविता गोरखनाथ की कविता से बहुत साम्य रखती है।

लालदासी-पंथ

इस पंथ के प्रवर्त्तक सत लालदास थे। इनके अनुयायियो में मेव जाति के लोग अधिक है जो अलवर और उसके पास के स्थानो में पाये जाते है। यह कबीर-पंथ से मिलता-जुलता पथ है। इसमें कुछ विशेषताएँ दादूपंथ की भी पाई जाती है। इस पथ के माननेवाले राम-नाम के जप एव कीर्तन को बहुत प्रधानता देते है और परमात्मा को 'राम' ही कहते है।

(२४९) लालदास—ये अलवर राज्यान्तर्गत धौलीधूप गॉव-निवासी मेव थे। इनका जन्म स० १५९७ में हुआ था।[90] ये लकडहारे का काम करते थे। ये पढे लिखे न थे पर सत्सग के प्रभाव से ज्ञान, भक्ति, सदाचार संबधी

88 रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड, सन् १८९१, पृ० २८०

89 पुरोहित हरिनारायण, सुन्दर-ग्रथावली, पृ० ९२ (जीवन-चरित्र)

90 परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सत-परंपरा, पृ० ४०४

अनेक बातें सीख गये थे जिनका जनसाधारण में प्रचार किया करते थे। इन्होंने विवाह भी किया था। इनके एक पुत्र और एक कन्या हुई थी। ये स० १७०६ में परलोक वासी हुए थे।[91] इनका शव नगला नामक गाँव में समाधिस्थ किया गया था। उस स्थान को इनके अनुयायी बहुत पवित्र मानते है।

संत लालदास काव्य-रचना भी करते थे। इनकी 'वाणी' के कुछ अश इधर-उधर सग्रह-ग्रथो में देखने मे आते है। इन्होने गेय पद अधिक लिखे है जो इनकी सूक्ष्म बुद्धि और गहन अनुभूति के परिचायक है।

फुटकर संत

(२५०) संतदास—ये स्वामी रामानद की शिष्य-परपरा मे नारायणदास के चेले थे।[92] इनका जन्म मेवाड राज्य के दातडा नामक गाँव में स० १६८६ में हुआ था[93] और दीक्षा इनकी स० १७४२ में हुई थी।[94] ये अच्छी गति के महात्मा और कुशल उपदेशक थे। इनका स्वर्गवास स० १८०६ में हुआ था।[95] उस समय इनकी आयु १२० वर्ष की थी।

इनकी 'वाणी' मिलती है। इसको नवलराम नामक इनके एक शिष्य ने स० १८३० में अंगबद्ध किया था।[96] इसमे दोहा, पद, रेखता आदि सब मिलाकर १४४३ छंद है। इनकी भाषा सीधी और भावना स्पष्ट है।

(२५१) बालकराम—ये सतदासोत साधु मीठाराम के शिष्य थे। नाभादास कृत भक्तमाल पर इनकी लिखी एक टीका उपलब्ध है जिसमें इन्होने अपनी गुरु-परंपरा इस प्रकार बताई है :—

---

91. वही, पृ० ४०६
92. रामानद–कृष्णदास पैहारी–अग्रदास–नारायणदास (बडे)–प्रेमपठाजी–प्रेमभूराजी–वनखडी रामदास–नारायणदास (छोटे)–सतदास।
93. श्रीरामस्नेह-धर्मप्रकाश, पृ० ३६१
94. वही; पृ० ३६१
95. अठारासै षट वर्ष मे, सत भये निरकार।
    बुध फागुन तिथि सप्तमी, वार सनीसर वार॥
    —श्रीरामचरणजी की वाणी, पृ० ६३
96. साहपुरे सतसग में, गुरु अग्या उर धार।
    नवलराम अग बाँधिया, वाणी सोध विचार॥
    —श्रीरामचरणजी की वाणी, पृ० ६३

नारायण `अग धरा ईदराय धतिराज
ताकी पद्धति मे रामानुज प्रतिकास है।
तास पद्धति मै रामानद ता कौ पौत्र सिष्य·
श्रीपैहारी की प्रनाली मे भयौ सतदास है ॥
ताही कौ बाल्कदास तास प्रेम जाकौ खेम
खेम कौ प्रहलाददास मिष्टराम तास है।
मिष्टराम जू कौ सिष्य सौ बालकराम रची
टीका भक्तदाम-गुण-चित्रनी विलास है ॥[97]

'मिश्रबधु-विनोद' में बालकराम का रचना काल सं० १८३३ बताया गया है जो [98] अशुद्ध है। वास्तव में इनका रचना काल सं० १९३२ है जैसा कि उपरोक्त टीका से प्रकट है·—

"भक्तदामचित्रनी सौ टीका अद्य सिध होत
समत द्वि नव वर्ष त्रिस बिताइयै।[99]"

"समत उगणीसौ र बतीसा। चौदस भादू दीत को बासा"[100]

उल्लिखित भक्तदाम-गुण-चित्रनी टीका ब्रजभाषा की एक वृहत् रचना है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक उदयपुर के सरस्वती भडार मे है और दूसरी यहाँ के बड़े रामद्वारे में। टीका यह कहने मात्र को है। वास्तव में यह एक स्वतत्र रचना है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' मे कबीरदास पर केवल एक छद लिखा है। परतु बालकराम ने १०८ छदो मे उनका जीवन-वृत्तान्त दिया है और उनके विषय की कतिपय नवीन बातो पर प्रकाश डाला है। इसी प्रकार अन्य सभी सतो का इसमें बड़े विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें दोहा, छप्पय, घनाक्षरी इत्यादि अनेक छदो का प्रयोग हुआ है पर प्रधानता चौपाई छन्द की है। इसकी भाषा अत्यंत सरस एवं प्रवाहयुक्त और वर्णन-शैली चित्रोपम है। पढते-पढ़ते वर्ण्य विषय का चित्र आँखो के सामने आ जाता है। रचना का नमूना देखिये—

97 स० भ० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ४६४

98. पृ० ८१३

99. स० भ० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ४६६

100 वही; पत्र ४६७

तब मीरॉ रणछौड सकासा । बिदा हौन कू अरिजि प्रकासा ।।
प्रभु मै न्यून तिया तनधारी । पै आई अब सरन तिहारी ।।६८।।
तजि पीहर सासुर गृह बासा । चहत तिहारौ चरननि बासा ।।
उही तौ भक्ति हीन है देबा । बृथा पटै द्विज मौकू लेबा ।।६९।।
राणा सग न मौहि सुहाबहि । अब कैसे तुम मौहि पठाबहि ।।
तजौ किधौ प्रभू राखौ मोही । अस कहि मीरॉ दृग जल रोही ।।७०।।
प्रेम मगिन ताकू प्रभु जानी । करी लीन्ह हरि देह समानी ।।
पुनि मीरॉ कू काहु न पाई । ऐसी हरि रति प्रगट दिखाई ।।७१।।[101]

(२५२) **संत मावजी**—ये डूगरपुर राज्यान्तर्गत साबला नामक गॉव के रहनेवाले औदीच्य ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १७७१ मे हुआ था ।[102] इनके पिता एक कर्तव्यनिष्ठ और भगवद्भक्त ब्राह्मण थे । मावजी पर भी उनका प्रभाव पडा और ये बारह वर्ष की आयु मे घर छोडकर सोम और मही नदी के सगम पर एक गुफा में तपस्या करने लगे । तपस्या के पश्चात् इन्होंने धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया । ये लोकसेवा और ईश-भक्ति का उपदेश देते थे । धीरे-धीरे इनके अनुयायी बढने लगे और इनका एक पथ-सा बन गया जिसके माननेवाले इस समय भी वागड प्रान्त में दस हजार के लगभग हैं । इनमें सुतार, छीपी आदि जातियो के लोग अधिक है । ये सभी गृहस्थ है । मावजी का देहान्त स० १८०१ में हुआ था ।[103]

मावजी बड़े ज्ञानी और योगी थे । ये थोडा पढ-लिख भी लेते थे । इनकी भी 'वाणी' है जो चौपड़ा कहलाती है । यह अभी तक अमुद्रित है । इसमें इन्होने ज्ञान-शिक्षा के अतिरिक्त अनेक भविष्यवाणियाँ की है । इसकी भाषा वागड़ी अथवा भीली भाषा से प्रभावित पिगल है ।

(२५३) **दीन दरवेश**—उदयपुर से १४ मील उत्तर दिशा में मेवाड़ के महाराणाओ के इष्टदेव श्रीएकलिंगजी का मदिर है । जिस गॉव में यह मदिर अवस्थित है उसे कैलाशपुरी कहते है । दीनजी इसी गाँव के रहनेवाले थे । ये जाति के लोहार थे । इनका जन्मकाल अज्ञात है । इनकी रचना से इनका निर्माण-काल सं० १८६३—८८ निश्चित होता है ।

---

101. वही; पत्र ३५६
102. कल्याण, अगस्त १९३५, पृ० ८१७
103. वही; पृ० ८१८

मिश्रबंधु-विनोद में दीनजी को काठियावाडी लिखा है ।[104] कुछ अन्य विद्वानो ने इनको पाटन अथवा पालनपुर का निवासी बतलाया है। परतु ये सब उनकी भ्रान्त धारणाएँ है । वास्तव मे दीनजी काठियावाडी नही थे । काठियावाडी थे इनके गुरु जो गिरनार के रहनेवाले थे और जिनका नाम बालगुरु था । इस विषय में दीनजी ने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है—

गुरु स्थान गिरनार, हौ उदैपुर देस एकलिगबासी ।[105]

दीनजी एक योगी और चमत्कारी पुरुष थे । ये जात-पाँत, छुआ-छूत आदि के घोर विरोधी थे और हिन्दू-मुसलमानो के भेदभाव को वृथा समझते थे । ये थे तो साधु पर अपनी रहन सहन और वेश-भूषा से पूरे रईस मालूम पडते थे । ये बढिया खाते, बढिया पहिनते और बढिया घोडे पर सवार होकर घर से बाहर निकलते थे ।

मेवाड के महाराणा भीमसिंह (स० १८३४—८५) दीनजी को बहुत आदर भाव से देखते थे । अतएव महाराणा भीमसिह जब तक जीवित रहे दीनजी ने उदयपुर में निवास किया । परतु बाद में कोटा चले गये । वहाँ एक दिन जब ये चंबल नदी मे स्नान करने गये हुए थे पानी में डूबकर मर गये । यह घटना स० १८९० के आसपास हुई थी ।

ये बहुत लिखे-पढ़े न थे । अधिकतर इधर-उधर से सुन-सुनाकर ज्ञानोपार्जन करते थे । इन्होने तीन हजार से कुछ ऊपर फुटकर छद लिखे है । इनकी भाषा कुछ उखड़ी हुई और वाक्यावली अस्तव्यस्त है । परतु इनके भाव गभीर और हृदय की सचाई को लिये हुए है ।

(२५७) **गुमानसिंह**—ये मेवाड़ राज्य के बाठरडा ठिकाने के रावत कल्याणसिह के तीसरे पुत्र थे । इनका जन्म स० १८९७ में हुआ था । ये सारंगदेवोत शाखा के राजपूत थे । ये बडे योगी एव भक्त थे और कविता करने में निपुण थे । इनका देहान्त स० १९७१ में हुआ था ।

ये मेवाड़ी और ब्रजभाषा दोनो में रचना करते थे और अधिकतर आध्यात्मिक कविताएँ लिखते थे । इनके रचे ग्रंथो के नाम ये है—

(१) मोक्षभवन (२) मनीषालक्षचद्रिका (३) योगभानुप्रकाशिका (४) गीतासार (५) योगाग शतक (६) सुबोधिनी (७) रत्नसार (८) तत्त्व-

104 पृ० ८९८ (चतुर्थ भाग)

105. दीनजी के काव्य-सग्रह की महता, जोधसिह-पुस्तकालय, उदयपुर, की हस्तलिखित प्रति, पत्र १७९

बोध (६) रामरत्नमाला (१०) लययोगबत्तीसी (११) समयसार बावनी (१२) अद्वैतबावनी और (१३) राजनीति ।

इनमें से दो-एक ग्रंथ प्रकाशित हुए है, शेष अप्रकाशित हैं । इनकी रचना इस ढंग की है ।

है प्रियवादित सील वहै नित बोल्लत सत्य सु अमृत बानी ।
एक हि सत्य उचारि निखालस ना करि डारत मान की हानी ॥
जो वह मिष्ट कहे सब ही दिन औगुन की तिहि होय बढानी ।
है कहनो द्वय साथ गुमान जू मानहु दूध मे मिश्री मिलानी ॥

चतुर्थ अध्याय का परिशिष्ट

(२५५) मसकीनदास, नरेना । नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के पुत्र ।

(२५६) टीलाजी, मेवाड़ । नि० का० सं० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२५७) प्रयागदास, डीडवाणा । नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२५८) मोहनदास, मारोठ । नि० का० सं० १६५०, ग्र० (१) ब्रह्म-लीला और (२) शब्द, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२५९) जैमलजी जोगी, सांभर । नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६०) पूरणदास । नि० का० सं० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६१) हरिसिंह, विद्याद, नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६२) माखूजी । नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६३) जैमलजी चौहाण, बौली । नि० का० सं० १६५०, ग्र० (१) वाणी (२) भक्त विरुदावली और (३) रामरक्षा आदि, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६४) दूजणदास, ईडवा । नि० का० सं० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६५) तेजानंद, जोधपुर । नि० का० सं० १६५०, ग्रं० वाणी और घटप्रमोद-ग्रंथावली । वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६६) लालदास, सिरोही । नि० का० स० १६५०, र० वाणी, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६७) मोहनदास, मेवाड । नि० का० स० १६५०, ग्र० आदिबोध और साधमहिमा नाममाला, वि० दादूजी के शिष्य ।

(२६८) चतरदास । नि० का० सं० १६९२, ग्र० भागवत एकादश स्कंध का पद्यानुवाद, वि० दादूपथी सतदास के शिष्य ।

(२६९) कल्याणदास । नि० का० सं० १६९३, ग्र० गोपीचद-वैराग, वि० दादूपंथी रज्जबजी के शिष्य ।

(२७०) चैनजी । नि० का० स० १७००, र० वाणी, वि० दादूपथी जनगोपाल के शिष्य ।

(२७१) जनगरीब । नि० का० स० १७००, र० वाणी, वि० दादूपंथी ।

(२७२) प्रहलाददास । नि० का० स० १७००, र० वाणी, वि० दादूपथी बड़े सुंदरदास के शिष्य ।

(२७३) माधौदास । नि० का० स० १७१०, ग्र० जनरायलीला, मदालसा आख्यान और कवित्त, वि० दादूपंथी जगजीवन के शिष्य ।

(२७४) दामोदरदास । नि० का० स० १७१०, ग्र० मार्कण्डेय पुराण भाषा, वि० दादूपथी ।

(२७५) बालकराम । नि० का० स० १७१०, र० कवित्त, वि० दादूपथी छोटे सुन्दरदास के शिष्य ।

(२७६) दासजी । नि० का० स० १७२०-३०, ग्रं० (१) गुणनाटक (२) पेथ-परीक्षा, (३) भक्त विरुदावली और (४) अजामेल चरित्र, वि० दादूपथी लालदास के शिष्य ।

(२७७) छीतरजी । नि० का० स० १७३०, र० कवित्त, वि० दादूपथी रज्जबजी के शिष्य ।

(२७८) दयालदास । नि० का० स० १७३४, ग्र० नासकेत आख्यान, वि० दादूपथी जगन्नाथ के शिष्य ।

(२७९) जैमलदास, बीकानेर । नि० का० स० १७६०, र० अनुभव वाणी, वि० रामानदी वैष्णव चरणदास के शिष्य ।

(२८०) नारायणदास । नि० का० स० १८०६-५३, ग्र० साखी, चेतावनी और प्राणपरचा, वि० रामसनेही ।

(२८१) परसराम । नि० का० सं० १८२४-९६, र० वाणी, वि० रामसनेही ।

(२८२) लालदास । नि० का०

सं० १८३५, ग्र० नाममाला और चितावनी, वि० दादूपथी ।

(२८३) हरदेवदास । नि० का० स० १८३५-६८, ग्र० करुणानिधान प्रश्नोत्तर और आत्मकृत, वि० रामसनेही ।

(२८४) जनगोपाल, शाहपुरा । नि० का० सं० १८५०, ग्रं० प्रहलाद चरित्र, वि० ये रामसनेही साधु रामचरण के शिष्य थे ।

(२८५) घाटमदास । नि० का० स० १८५० के लगभग, र० फुटकर पद, वि० ये कोई रमते--फिरते साधु थे ।

(२८६) चतरदास । नि० का० स० १८५७, ग्र० राघवदास कृत भक्तमाल पर टीका, वि० दादूपथी छोटे सुन्दरदास की शिष्य-परपरा मे थे ।

(२८७) हिरदेराम, सियाणा । नि० का० सं० १८६०, ग्रं० नाममाला, वि० दादूपथी ।

(२८८) सहजराम । नि० का० स० १८७५, ग्र० सुरतिविलास । वि० दादूपंथी ।

(२८९) दूल्हैराम, शाहपुरा । मृ० सं० १८८५, र० फुटकर वाणी, वि० ये रामसनेही साधु रामजन के शिष्य थे ।

(२९०) पूरणदास । नि० का० स० १८८५, ग्र० जन्मलीला और चित्तइलोल, वि० रामसनेही ।

(२९१) चतरदास, शाहपुरा । मृ० स० १८८८, र० फुटकर वाणी, वि० ये रामसनेही साधु दूल्हैराम के शिष्य थे ।

(२९२) आत्मबिहारी । नि० का० स० १८९०, ग्र० गूढार्थ अष्टपदी, वि० दादूपथी ।

(२९३) देवदास । नि० का० स० १८९०, ग्र० जम्बूसरप्रसगवर्णन, वि० दादूपंथी ।

(२९४) रतनभजन । नि० का० स० १८९०, ग्र० छदरत्नमाला, वि० दादूपथी ।

(२९५) ध्यानदास । नि० का० स० १८९०, ग्र० सत्य हरिश्चन्द्र की कथा, वि० दादूपथी ।

(२९६) चतरदास । नि० का० सं० १८९० के लगभग, र० फुटकर पद, वि० दादूपंथी ।

(२९७) चपाराम । नि० का० स० १८९६, ग्र० क्षीरार्णव; वि० दादूपंथी ।

(२९८) मधुपदास । नि० का० सं० १८९७, ग्र० नागरलता, वि० दादूपंथी ।

(२९९) निगमदास । नि० का० सं० १८९८, र० फुटकर पद, वि० दादूपंथी ।

(३००) हरिदास । नि० का० सं० १८९८, ग्रं० वाणी; वि० दादूपंथी ।

(३०१) लाल कवि, जयपुर । नि० का० स० १८९८, ग्रं० विवेकरस, वि० विशेष वृत्त ज्ञात नहीं ।

(३०२) सेवगराम । नि० का० सं० १९००; र० अनुभव वाणी, वि० रामसनेही ।

(३०३) चंदनदास । जयपुर, ज० सं० १९०१; ग्रं० छंदोविद्‌मडन, वि० दादूपंथी ।

(३०४) नारायणदास । नि० का० सं० १९३५, ग्रं० दादूचरित्र, वि० ये दादूपंथी जनगरीब की शिष्य-परपरा में थे ।

(३०५) अर्जुनदास । नि० का० स० १९४०, ग्र० पूर्वजन्म और परची-सार, वि० रामसनेही ।

(३०६) अमृतनाथ, बीकानेर, नि० का० सं० १९७०, र० फुटकर पद, वि० नाथपंथी ।

पाँचवाँ अध्याय

आधुनिक काल (सं० १९००-२००९)

पिंगल साहित्य का आधुनिक काल सं० १९०० से प्रारंभ होता है। विषय-वस्तु की दृष्टि से इस काल के कवियो ने कोई विशेष नवीनता प्रदर्शित नही की। अधिकाश कवि प्रेम, भक्ति, शृगार आदि मध्यकालीन विषयो पर ही लिखते रहे। कुछ सुधारवादी कवियो ने सामाजिक कुरीतियो तथा मदिरा, माँस, भंग, तमाखू, विदेशी वेशभूषा आदि की बुराइयो पर रचनाएँ की, पर वे स्थायित्व प्राप्त न कर सकी। एक बार सुन लेने के बाद उनको दूसरी बार सुनने का उत्साह लोगो ने नही दिखाया। इनमें से जो रचानाएँ प्रकाशित हुईं वे पोथियो ही में रह गईं, शिक्षित अथवा अशिक्षित वर्ग में से किसी को प्रभावित न कर सकी।

इस काल में सब से बड़े कवि बूदी के कविराजा सूरजमल मिश्रण हुए जिनको चारण लोग अपनी जाति का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। सूरजल एक प्रतिभासम्पन्न पुरुष थे। अपने समकालीन कवियो पर इनका उतना ही गहरा प्रभाव था जितना रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल में रवीन्द्रनाथ का बंगाली कवियो पर रहा। रवीन्द्रनाथ की तरह सूरजमल की प्रखर प्रतिभा ने भी राजस्थान के कवियों की मौलिकता कुंठित करदी और उन्हें स्वतत्र रूप से नही पनपने दिया। छोटे-मोटे सैकडो कवि सूरजमल की काव्य-धारा के प्रचड प्रवाह में बह गये। सूरजमल की कविता इतनी भावपूर्ण, इतनी सजीव और इतनी सुन्दर होती थी कि कुछ कवियो ने तो इन्ही के भावो को ला-लाकर अपनी रचनाओं में उतारना प्रारंभ किया और कुछ स्वतंत्र कविता करना छोड़ इनकी कविता को सुना-सुनाकर वाहवाही लूटने लगे। छोटे-छोटे कई सूरजमल उस समय पैदा हो गये थे। कवि-गोष्ठियो मे, राज-दरबारों में, साहित्य-सभाओ में जहाँ देखो वहाँ सूरजमल की कीर्ति सुनाई पड़ती थी।

सूरजमल के पश्चात् ब्रजभाषा-साहित्य-रचना की गति राजस्थान में मंद पड़ गई और उत्तरोत्तर मंद होती गई। इस गति-मंदता के दो मुख्य कारण थे—खडी बोली की उन्नति और राजस्थानी का पुनरुत्थान।

इस समय राजस्थान का कवि-समुदाय तीन भागों में बँटा हुआ है। पहला दल उन कवियों का है जिन्होंने स्कूल-कॉलेजो में शिक्षा प्राप्त की

है । ये अधिकतर खडी बोली में लिखते है । और नवीन विषयो पर एव नवीन छदो में काव्य-रचना करते है । दूसरे दल में राजस्थानी भाषा के कवि है । इनके मुख्य विषय है, राजस्थान का प्राचीन गौरव और राजस्थान की वर्तमान राजनीतिक दुर्दशा । तीसरा दल ब्रजभाषा के कवियो का है । ये कवि दोहा, कवित्त, सवैया आदि प्राचीन छदो का प्रयोग करते है और इनके विषय भी वही पुराने है । जैसे राम-कृष्ण की भक्ति, ऋतु-वर्णन, होरी, फाग आदि । ये कवि सख्या में कम है और इनके प्रशसक भी अब थोडे रह गये है । कवि-सम्मेलनो के रग-मच से तो प्राय इनका निष्कासन हो गया है । लेकिन जहाँ तक काव्य-कला का सबंध है ये कवि उक्त दोनो दलो के कवियो की तुलना में पिछडे हुए नही है, बल्कि उनसे बहुत आगे है । और इनका यही गुण ब्रजभाषा-काव्य को राजस्थान मे अभी तक जीवित रखे हुए है, यद्यपि समय उसके पक्ष में नही है ।

(३०७) **सूरजमल**—ये मिश्रण शाखा के चारण बूँदी के निवासी थे । इनका जन्म सं० १८७२ में हुआ था ।[1] इनके पिता का नाम बदनजी और दादा का चडीदान था ।[2] ये दोनो बूदी दरबार के बहुत प्रतिष्ठावान कवि थे । बदनजी को बूदी के महराव राजा विष्णुसिह ने रोसूदा गाँव, लाखपसाव और कविराजा की पदवी प्रदान की थी ।[3] सूरजमल के छ स्त्रियाँ थीं ।[4] परतु इनके कोई संतान नही हुई । इसलिये इन्होने मुरारिदान को गोद लिया था । इनका देहान्त सं० १९२५ में हुआ था ।[5]

सूरजमल षड्भाषा के पडित तथा न्याय, योगशास्त्र, शालिहोत्र आदि अनेक विषयो के तलस्पर्शी विद्वान थे ।[6] ये डिगल और पिंगल दोनो में रचना करते थे । इनके बनाये पिंगल भाषा के तीन ग्रंथ प्रसिद्ध है—वशभास्कर, बलवतविलास और छदोमयूख । कहा जाता है कि इन्होने सतीरासौ और धातुरूपावली नामक दो ग्रन्थ और भी रचे थे । परंतु ये ग्रन्थ देखने में नही आये ।

---

1. मिश्रबधु-विनोद, पृ० ९३४
2. मुरारिदान, डिंगल-कोश, पृ० १९
3. वशभास्कर, पृ० ३९
4. वही, पृ० ४०
5. मुंशी देवीप्रसाद, कविरत्नमाला, पृ० १११
6. मुरारिदान; डिंगल-कोश, पृ० १९

सूरजमल के उपरोक्त तीनो ग्रन्थ पिंगल अथवा ब्रजभाषा में हैं। परंतु इनकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है। उस पर राजस्थानी का भी कुछ प्रभाव पाया जाता है। इनकी भाषा कठिन बहुत है। सूरजमल ने कहीं-कहीं अपने निज के गढे हुए शब्द रख दिये हैं और कहीं-कहीं ऐसे क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दो का प्रयोग किया है कि एक साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति के लिये इनके ग्रन्थो को समझना तो दूर रहा उनको हाथ में लेने का साहस ही कम होता है। इनकी कठिन भाषा का नमूना देखिये:—

बितड बाटिकान दत हस्ति दत उप्परै।
किरै सुकुम्भ कोह लेप लाडु घट निक्करै॥
कटत सुडि कक्करी प्रबृत्ति पाथ पीन के
किलास नास ईषिकारु आलु अखि कीन के॥ २५॥
कटिल्ल कर्णिकावली भटा हृदावली भये।
अरिष्ठ के अपष्ठ बृन्द वलोम कद उन्नये॥
बनै अरी पलास कान अदु नाग बल्लरी।
कलेजु पीलु कर्णिका कसेरु तोरई करी[7]॥ २६॥

ये वीर रस की कविता लिखने में सिद्धहस्त थे। इनके जैसी वीर रस की सुन्दर कविता करनेवाला कवि हिंदी में कोई दूसरा नहीं हुआ। हिंदी में भूषण वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वास्तव में भूषण की कविता बहुत उत्तम कोटि की है और वह अपने युग की अनुभूति को प्रत्यक्ष करती है। परतु उसमें अधिकतर काव्य के कला-पक्ष का निर्वाह हुआ है। उसका भाव-पक्ष बहुत निर्बल है। लेकिन सूरजमल की कविता में इन दोनो की सुन्दर योजना हुई है। इन्होने वीर-वीरांगनाओ की मनोदशाओ का भाव-प्रधान वर्णन भी किया है और उनके युद्ध-पराक्रम आतंक आदि का कलात्मक वर्णन भी। विशेषकर रणभूमि की विकरालता, युद्ध की भयंकरता और सैन्य समूह की हाय-हत्या का वर्णन इनका ऐसा मार्मिक, सजीव और स्वाभाविक हुआ है कि पढ़कर दिल दहल जाता है।

(२०८) जीवनलाल—ये बूंदी-निवासी नागर ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८७० में हुआ था।[8] इनके पिता का नाम तुलाराम था। जीवनलाल बूंदी के महाराव राजा रामसिंह के प्रीतिपात्र थे। कई वर्षों तक बूंदी के प्रधान

7. उमेदसिह-चरित्र, पृ० ३१३
8. मिश्रबधु-विनोद, पृ० १०२४

मंत्री रहे और अपनी कार्य-कुशलता तथा ईमानदारी से राज्य को बहुत लाभ पहुँचाया। सं० १९१४ के गदर में इन्होने बूंदी राज्य का बहुत चंतुराई से प्रबंध किया जिससे प्रसन्न होकर उक्त महाराव राजा ने इन्हें ताजीम, कटार, हाथी आदि प्रदान कर गौरवान्वित किया।[9] इनका देहान्त स० १९२६ में हुआ।[10]

ये संस्कृत, हिंदी तथा फारसी के प्रौढ़ विद्वान थें। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होने बारह हजार श्लोको का 'कृष्णखंड' नामक एक ग्रंथ बनाया था। इसके बाद इन्होने संस्कृत-हिंदी के सात ग्रंथ और भी रचे थे। उषाहरण, दुर्गाचरित्र, भागवत भाषा, रामायण, गंगाशतक, अवतारमाला और संहिता-भाष्य।[11]

इनकी रचना में भक्ति तथा शृंगार की प्रधानता है। भाषा सरल एवं कविता रोचक और मधुर है।

(३०९) बख्तावरजी––ये जाति के राव थे। इनका जन्म मेवाड राज्य के बसी नामक गाँव में स० १८७० के लगभग हुआ था[12]। इनके पिता का नाम सुखराम था। ये जब बालक थे तब इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। इसलिए बसी के ठाकुर अर्जुनसिंह ने इनको पढ़ा-लिखाकर होशियार किया था। ये सं० १९०९ में पहली बार उदयपुर आये थे। उस समय यहाँ महाराणा स्वरूप सिंह राज्य करते थे। उन्होने इनको अपने पास रख लिया और मिहारी तथा डाँगरी नामक दो गाँव, पाँव में सोना, बैठक और रहने के लिये मकान देकर इनका मान बढाया।[13] महाराणा स्वरूपसिंह के बाद के तीन महाराणाओं के शासन समय में भी इनकी प्रतिष्ठा पूर्ववत् बनी रही। इनकी मृत्यु सं० १९५१ में हुई थी।[14] उदयपुर के राजकीय दग्ध-स्थान महासतियो में महाराणा अमरसिंह (प्रथम) की छतरी के सामने इनका भी स्मारक बना हुआ है।

ये ब्रजभाषा और राजस्थानी दोनो में कविता करते थे। इनके बनाये ब्रजभाषा के ग्रंथो के नाम ये है––

---

9. वही, पृ० १०२५
10. मुशी देवीप्रसाद, कविरत्नमाला पृ० ७२
11. मिश्रबधु-विनोद पृ० १०२४
12. केहरप्रकाश, पृ० १
13. वही, पृ० २
14 वही, पृ० ३

(१) रसोत्पत्ति (२) स्वरूप-यश-प्रकाश (३) शंभु-यश-प्रकाश (४) सज्जन-यश-प्रकाश (५) फतह-यश-प्रकाश (६) सज्जन-चित्र-चंद्रिका (७) सचार्णव (८) अन्योक्ति-प्रकाश (९) सामत-यश-प्रकाश और (१०) राग-रागिनियो की पुस्तक ।[15]

बख्तावरजी की कविता अत्यन्त मधुर, सानुप्रास तथा सरस है। वर्णन सौन्दर्य्य भी उसमें यथेष्ट है। इन्होने दीनदयाल गिरि की भाँति अन्योक्तियाँ भी कही है जिनमें बडी मार्मिकता और स्वाभाविकता पाई जाती है।

(३१०) गोपाल—ये जयपुर राज्य के उदयपुरा गाँव के निवासी कविया शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १८७२ के आसपास हुआ था।[16] इनके पिता का नाम खुमाण और दादा का नाम ज्ञानजी था।[17] ये सीकर के राव राजा माधौसिह के आश्रित थे।[18] इनकी मृत्यु सं० १९४२ में हुई थी।[19]

ये पिंगल भाषा के उत्कृष्ट कवि और इतिहास के प्रौढ विद्वान थे। विशेषकर जयपुर राज्य के इतिहास का इनको भारी ज्ञान था। इनके बनाये तीन ग्रथ मिलते है—कृष्णविलास, लावारासौ और शिखर-वंशोत्पत्ति। य तीनो इतिहास-विषयक पद्यात्मक रचनाएँ है। इनकी भाषा में ढूँढाडी बोली का मेल पाया जाता है जो स्वाभाविक है। पर इन तीनो की रचना-शैली समान रूप से सजीव और चमत्कारपूर्ण है। इनकी रचना का नमूना देखिये—

फैलि रह्यौ एक सो प्रकास भुवमडल मे
कज कविराजन कै आनद घनेरो है।
कहत गुपालदान वाकौ सठौर ताप
विप्रन के मदिर बचाय ताप तेरो है॥
केते जग मानत न मानत है वाहि केते
तेरो सब ही के सीस आतप घनेरो है।

15. वही; पृ० ४
16. पुरोहित हरिनारायण; शिखर-वशोत्पत्ति, पृ० ५।
17. वही; पृ० २।
18. वही; पृ० ७।
19. वही; पृ० ५।

भान को उजेरो दिन मान मे पिछान्यौ जात
माधौ भान तेरो निसि-बासर उजेरो है ॥[20]

(३११) प्रतापकुंवरि बाई—इनका जन्म सं० १८७३ के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण ग्राम के एक सुप्रसिद्ध भाटी परिवार में हुआ था ।[21] इनके पिता का नाम गोयददास था ।[22] सोलह वर्ष की उम्र में इनका विवाह जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ हुआ । वैसे ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यावस्था ही से था, पर पति की मृत्यु (स० १६००) के बाद से इनका मन सांसारिक कार्यों से बिलकुल उचट गया और अपना अधिक समय भगवद्-भजन और और पूजा-पाठ में व्यतीत करने लगीं । इनकी रहन-सहन सादी और प्रकृति सरल थी । राज्य की ओर से इन्हें कई गाव मिले हुए थे जिनकी आय का अधिकाश ये दान-नुण्य तथा साधु-सेवा में खर्च किया करती थी । कवियो, विद्वानो और चारण-भाटों को भी इन्होने प्रचुर धन-दान दिया । इनका देहन्त सं० १६४६ में हुआ था ।[23]

प्रतापकुँवरि बाई ने कुल मिलाकर १५ ग्रन्थो का निर्माण किया जिनके नाम ये है—

(१) ज्ञानसागर (२) ज्ञानप्रकाश (३) प्रतापपच्चीसी (४) प्रेमसागर (५) रामचंद्रनाममहिमा (६) रामगुणसागर (७) रघुवरस्नेहलीला (८) रामप्रेम सुखसागर (६) रामसुजस पच्चीसी (१०) रघुनाथजी के कवित्त (११) भजन पद हरिजस (१२) प्रतापविनय (१३) रामचंद्रविनय (१४) हरिजस-गायन और (१५) पत्रिका ।[24]

इनकी भाषा में मँजे हुए और प्रतिदिन उपयोग में आनेवाले उर्दू-फारसी के शब्द स्वतंत्रता के साथ प्रयुक्त हुए है । कविता इनकी राम-भक्ति-पूर्ण और प्रसाद गुण से ओतप्रोत है ।

(३१२) गणेशपुरी—ये पदमजी चारण के पुत्र थे और सं० १८८३ में जोधपुर राज्य के चारवास गॉव में पैदा हुए थे ।[25] इनका जन्म-नाम गुप्तजी

20, वही; पृ० ११६ ।
21. मुंशी देवीप्रसाद, महिलामृदुवाणी, पृ० ३७
22 वही, पृ० ३८
23. वही; पृ० २
24. वही, पृ० ४६
25 मिश्रबधु-विनोद, पृ० १११२

था । प्रसिद्धि है कि 'वंशभास्कर' के रचयिता कविराजा सूरजमल का नाम सुनकर ये उनसे मिलने के लिये एक बार बूँदी गये । जिस समय ये उनके घर पहुँचे उस समय उनका एक नौकर द्वार पर बैठा हुआ था । उसने जाकर सूरजमल को सूचना दी कि एक चारण दरवाजे पर खड़ा है और आपसे मिलना चाहता है । सूरजमल अपढ़ व्यक्तियो से प्रायः कम मिलते थे । उन्होंने नौकर से कहा-'जाकर पूछो कि वह पढा हुआ है या नहीं' । नौकर लपका हुआ बाहर आया और वही प्रश्न गुप्तजी से किया । सुनकर वे सुन्न रह गये । कुछ क्षण तक प्रस्तर-मूर्ति की तरह खडे रहे । फिर गर्दन हिलाकर बोले-'नही' । इस 'नहीं' की ध्वनि अंदर कविराजा के कानो में पडी । वही से चिल्लाकर उन्होने कहा--'सूरजमल अपढ़ चारण का मुह देखना नहीं चाहता । तुम यहाँ से चले जाओ' । ये शब्द गुप्तजी को घाव कर गये । उन्हें लज्जा भी आई । फौरन वहाँ से लौट पड़े । यह घटना उस समय की है जब इनकी उम्र २७ वर्ष की थी । यहीं से इनके जीवन का नया अध्याय शुरु हुआ । ये साधु हो गए और अपना नाम बदलकर गणेशपुरी रख लिया । फिर काशी पहुँचे और लगभग दस वर्ष तक वहाँ रह कर हिन्दी-संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया ।

काशी से लौटने के पश्चात् गणेशपुरी कुछ वर्षों तक राजस्थान में इधर-उधर घूमते रहे और अंत में मेवाड़ के गुणग्राही महाराणा सज्जनसिंह के आग्रह से मेवाड को स्थायी रूप से अपना निवास-स्थान बना लिया । गणेशपुरी एक सुयोग्य साहित्य-सेवी और काव्य-कुशल व्यक्ति थे । इनके संपर्क से महाराणा सज्जनसिह भी अच्छी कविता करने लग गए थे । सस्कृत, ब्रजभाषा एवं डिंगल का उच्चारण गणेशपुरी का बहुत शुद्ध तथा स्पष्ट होता था और कविता पढ़ने का ढंग ऐसा प्रभावशालो होता था कि सुननेवाले झूमने लग जाते थे । साधारण कोटि की कविता भी जब इनकी जबान से निकलती तब उच्च कोटि की प्रतीत होती थी ।

इनके रचे फुटकर कवित्त-सवैये और 'वीरविनोद' नामक एक ग्रंथ राजस्थान में बहुत प्रसिद्ध है । वीर-विनोद महाभारत के कर्ण-पर्व का पद्यानुवाद है । अनुवाद में मौलिकता, भावो की स्पष्टता और शब्द-योजना के सौष्ठव का अच्छा आनंद मिलता है पर क्लिष्ट शब्दों की बहुलता के कारण प्रसाद गुण को कहीं-कहीं बड़ा आघात पहुँचा है । इनकी फुटकर कविताएँ भी बड़ी जोरदार, चमत्कारपूर्ण एंव मार्मिक बन पड़ी है पर प्रसाद की कमी इनमें भी है और शायद यही कारण है कि काव्य-कला-कलित होते हुए

भी इनका इतना प्रचार नहीं है जितना होना चाहिए । वास्तविक बात यह है कि गणेशपुरी की कविता के पीछे चेष्टा है, वह उनके हृदय की अनुभूति नहीं, मस्तिष्क की उपज है । अतः उनके भाव तक पहुँचने के लिए पाठक को भी काफी मानसिक श्रम करना पडता है ।

(३१३) गुलाबजी——ये बूँदी के दरबारी कवि थे । इनका जन्म स० १८८७ में अलवर राज्यान्तर्गत राजगढ में हुआ था ।[26] जाति के राव थे । जब ये ४१ वर्ष के थे तब अलवर से बूँदी चले गये और आजीवन वहीं रहे । बूँदी के महाराव राजा रामसिंह ने इन्हें दो गाँव प्रदान किये थे और दुशाला, हाथी ताजीम इत्यादि देकर इनकी प्रतिष्ठा बनाई थी । ये बूँदी स्टेट कौंसिल तथा वॉल्टर कृत राजपूत-हितकारिणी सभा के सदस्य थे और महकमा रजिस्टरी के भी हाकिम थे । इनका देहान्त सं० १९५८ में हुआ था ।

गुलाबजी सिद्धहस्त कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे । इनके संसर्ग से कई लोग अच्छी कविता करना सीख गये थे, जिनमें बिडदसिंह और चन्द्रकला बाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इनकी कविताएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओ में छपा करती थीं जिससे राजस्थान के बाहर के लोग भी इन्हें जानते थे । कानपुर की 'रसिक-सभा' ने इन्हें 'साहित्य-भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था ।[27]

इनका ब्रजभाषा और डिंगल दोनो भाषाओं पर समतुल्य अधिकार था । परन्तु अधिकतर ये ब्रजभाषा में लिखा करते थे । इनके रचे ग्रंथो के के नाम ये हैं——

(१) रुद्राष्टक (२) रामाष्टक (३) गंगाष्टक (४) बालाष्टक (५) पावसपच्चीसी (६) प्रनपच्चीसी (७) रसपच्चीसी (८) समस्या पच्चीसी (९) गुलाबकोष (१०) नामचन्द्रिका (११) नामसिंधु कोष (१२) व्यंग्यार्थ चन्द्रिका (१३) वृहत् व्यग्यार्थ चन्द्रिका (१४) भूषण चंद्रिका (१५) ललित कौमुदी (१६) नीतिसिंधु (१७) नीति मजरी (१८) नीतिचन्द्र (१९) काव्य-नियम (२०) बनिता-भूषण (२१) वृहत् वनिताभूषण (२२) चिंता-तंत्र (२३) मूर्ख-शतक (२४) ध्यान रूप सवतिका बद्ध कृष्णचरित्र (२५) आदित्यहृदय (२६) कृष्णलीला (२७) रामलीला (२८) सुलोचना लीला (२९) विभीषण

---

26. राजस्थान के हिन्दी-साहित्यकार, पृ० २९ ।

27. मुशी देवीप्रसाद, कविरत्नमाला, पृ० ८७ ।

लीला (३०) दुर्गास्तुति (३१) लक्षण कौमुदी (३२) कृष्णचरित्र (३३) शारदाष्टक और (३४) कृष्णचरित्र सूची ।[28]

गुलाबजी की रचना भाषा और कविता दोनो ही दृष्टियो से प्रशंस-नीय है । इनकी भाषा बहुत सरल, कोमल और विशुद्ध ब्रजभाषा है । कविना कर्णप्रिय, सुरुचिपूर्ण और प्रभावोत्पादक है ।

(३१४) मुरारिदान—ये बूँदी के सुप्रसिद्ध कवि सूरजमल के दत्तक पुत्र थे ।[29] इनका जन्म स० १८६५ में और देहान्त स० १६६४ में हुआ था ।[30] अपने पिता सूरजमल की तरह ये भी षड्भाषा-प्रवीण और प्रतिभावान कवि थे । 'वशभास्कर' लिखते समय जब सूरजमल ने रावराजा रार्मासह के गुण-दोषो का विवेचन करना प्रारम्भ किया तब रावराजा उनसे सहमत न हुए और विवश होकर उन्हें अपना ग्रथ अधूरा छोडना पडा । इसे सूरजमल की मृत्यु के बाद मुरारिदान ने पूरा किया । इनके अतिरिक्त इन्होने दो ग्रथ और भी बनाए थे, डिंगल-कोष और वंशसमुच्चय । ये डिगल और पिंगल दोनों मे रचना करते थे । कविता इनकी गम्भीर और सानुप्रास होती थी ।

(३१५) बिड़दसिंह—ये चौहाण राजपूत अलवर राज्य के किशनपुर गाँव के जागीरदार थे । इनका जन्म स० १८६७ में हुआ था ।[31] कविता करना इन्होने बूँदी के राव गुलाबजी से सीखा था । ये बहुत अच्छे कवि एव गुणग्राही पुरुष थे । इनके यहाँ कवि-कोविदो का जमघट लगा रहता था । ग्रथ तो इन्होने कोई नहीं सिखा पर फुटकर कवित्त, सवैये सैकडो की संख्या में रचे है । कविता में ये अपना नाम 'माधव' लिखा करते थे । इनकी कविता श्रृगार रस प्रधान है और उसमें कला-पक्ष का निर्वाह खूब हुआ है ।

(३१६) ऊमरदान—ये जोधपुर राज्य के ढाढरवाड़ा ग्राम में स० १६०८ में पैदा हुए थे[32] और जाति के चारण थे । इनके पिता का नाम बख्शीराम और दादा का मेघराज था । ये तीन भाई थे ; नवलदान, ऊमरदान और शोभादान । बाल्यावस्था में माता-पिता का देहान्त हो जाने से घर पर इनकी ठीक तरह से देख-रेख करनेवाला कोई नही रह गया

28 वही, पृ० ८८ ।

29 मिश्रबन्धु-बिनोद, पृ० ११३० ।

30. मुशी देवीप्रसाद, कविरत्नमाला, पृ० ११६ ।

31. वही, पृ०८ ।

32. ऊमर-काव्य, पृ० २६ ।

था जिससे ये बहुत उद्दड हो गये और मौजीराम नामक एक रामसनेही साधु के बहकाने में आकर इन्होने रापसनेही पथ को अगीकार कर लिया। कोई १६ वर्ष की उम्र तक ये रामसनेहियो की मडली में रहे[33]। बाद में उनका साथ छोड़कर वापस गृहस्थ बन गये और रामसनेही पथ का छिद्रोद्घाटन करने लगे ।

ऊमरदान बहुत सरल प्रकृति के पुरुष थे और वेश-भूषा से पूरे किसान दिखाई पडते थे । ये खूब प्रसन्न रहते और सब से हँसकर मिलते-जुलते थे । यदि कोई इन्हें पूछता कि तुम्हारा मकान कहाँ है तो ये कहते—

दुकान है दुकान मा, मकान ना मकान मा।
उठाय लट्ठ अट्ठ जाम, मै फिरॉ घमा-घमा ।।

उमरदान अच्छे कवि थे । इसलिये जोधपुर, उदयपुर आदि राज्यो के राज-दरबारो में इनका अच्छा आदर होता था । इनका देहान्त स० १६६० में हुआ था[34]।

इनकी रचनाओ का सग्रह 'ऊमर-काव्य' के नाम से प्रकाशित हो चुका है । इसमें ४० से अधिक फुटकर प्रसग हैं । बाल्यावस्था में जब मनुष्य के संस्कार बनते और दृढ़ होते हैं तब ऊमरदान रामसनेहियो के साथ रहे । इसलिए इनकी भाषा, रचना-शैली और विषय-सामग्री सभी पर रामसनेही पंथ का रग है । रचना इनकी बुरी नही है, पर थोडी-सी फूहड़ता उसमें अवश्य है । और यही कारण है कि शिक्षित समुदाय की अपेक्षा निम्न वर्ग के लोगो में उसका प्रचार अधिक है ।

(३१७) फतहकरण—ये नाथूराम चारण के पुत्र सं० १६०६ में पैदा हुए थे।[35] इनका जन्म-स्थान जोधपुर राज्य का उजाला गाँव था जहाँ से मेवाड के महाराणा सज्जनसिंह (स० १६३१–४१) के समय में ये उदयपुर चले आये थे।[36] ये बड़े विद्या-व्यसनी, सभाचतुर और काव्य-कला में निपुण थे । इन गुणो के कारण ये महाराणा सज्जसिंह के बड़े कृपा-पात्र हो गये थे और उनके दाहिने हाथ समझे जाते थे । इनका देहान्त स० १६७८ में हुआ था।[37]

---

33. वही, पृ० २० ।
34. वही, पृ० २६ ।
35 पत्र प्रभाकर, पृ० २
36. वही, पृ० २
37. वही; पृ० २

इन्होने केवल एक ही ग्रन्थ लिखा जिसका नाम 'पत्रप्रभाकर' है। इसमें मेवाड के इतिहास और मेवाड की प्राकृतिक शोभा का वर्णन है। इसकी छद-सख्या ११०८ है। इसमें रस, अलकार आदि काव्योचित गुणो का अच्छा सन्निवेश हुआ है। फतहकरण ने कविराजा सूरजमल की क्लिष्ट भाषा-शैली का अनुकरण किया है। अतएव कविता इनकी भी कुछ कठिन है। यथा—

कहू ऋकचच्छद औ थल कज, कहू सुम जाति रु कुन्द करञ्ज।
मयूर सनृत्य रु कुक्कुट मत्त, तथा रुत कोकिल व्है अविरत्त ।।
सभृ ग पिकीरुत वाद्य सु गीति, नभस्वत वेगन मे बहु रीति।
मनो करतै करसाख मिलाय, रहे इत पादप नृत्य रचाय ।।
मनो घनस्याम मृगत्वच मान, सरित् उतरै उपवीत्त समान।
दरीमुख मारुत ध्वरुत दच्छ, पढे मनु पर्वत वेद प्रतच्छ ।।
द्विरेफन की मनु तत्रि विधाय, प्लवगम घु क्रुति ताल लगाय।
पिकीरुत सुस्वर राग प्रगीत सुनावत ज्यो गिरिशास्त्र सँगीत[38]।।

(३१८) बालाबख्श—ये पालावत शाखा के चारण[39] जयपुर राज्य के हणूतिया गाँव के निवासी थे। इनका जन्म स० १९१२ में हुआ था[40]। इनके पिता का नाम निरसघदास और पितामह का जसराज था। ये चार भाई थे—बालाबख्श, शिवबख्स, डालजी और सालजी। ये चारो कवि थे। बालाबख्श की प्रारभिक शिक्षा घर ही पर हुई। फिर दादूपंथी खेमदास से धर्म-ग्रथ एव रीति-ग्रथ पढ़े और छन्द अलंकार आदि काव्यांगो का ज्ञान प्राप्त किया।[41] ये बड़े मिलनसार एवं व्यवहार-कुशल चारण थे और राजपूत सरदारो को रिझाना जानते थे। इसलिए कई ठिकानो से इनको अच्छी भूसपत्ति प्राप्त हुई। इनका देहान्त स० १९८८ में अपने जन्म-स्थान हणूंतिया में हुआ था।[42]

---

38 वही, पृ० १३

39. पु० हरिनारायण; स्वर्गीय बारहठ बालाबख्श पालावत, पृ० ५

40. वही, पृ० ६

41. वही; पृ० ११

42. वही; पृ० १८

बारहठजी एक प्रतिष्ठावान साहित्यकार और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान थे। विशेषकर जयपुर राज्य के इतिहास का इनको अच्छा ज्ञान था। ये दानी भी थे। इन्होने नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, को सात हजार रुपयो का दान दिया था जिसके व्याज से 'बालाबख्श राजपूत-चारण पुस्तकमाला' में राजपूत-चारणो के रचे हुए इतिहास व कविता विषयक ग्रंथो का प्रकाशन होता है।[43]

ये डिंगल और पिंगल दोनो में कविता करते थे। इनके रचे ग्रथो के नाम नीचे दिये जाते है जिनमें दो-एक को छोडकर शेष सभी अप्रकाशित है :—

(१) अश्वविधान-सूचना, (२) भूपाल-सुजस-वर्णन (३) आसीस-विगतावली (४) आसीस-अष्टक (५) आसीस-पच्चीसी (६) षट्शास्त्र-साराश (७) खंडेला पाना खुर्द की वशावली (८) शस्त्रविधान-सूचना (९) शस्त्रप्रकाश (१०) शास्त्रसार (११) सध्योपासना-उत्थानिका (१२) क्षत्रिय-शिक्षा-पचाशिका (१३) छद देवियो के (१४) छद राजाओ के (१५) राव राजा माधवसिंहजी सीकरवालो का स्मारक काव्य (१६) मानमहोत्सवमहिमा (१७) मरसिया ठाकुर जोरावरसिंहजी का (१८) शोक-शतक और (१९) कछावो की खाँपें और ठिकाने[44]।

इनके अतिरिक्त फुटकर गीत, कवित्त आदि भी है।

इन्होने अपनी रचना में प्राचीन चारण काव्य-परिपाटी का अनुकरण किया है और प्रशसात्मक कविता अधिक लिखी है। इनकी कविता में उच्च कोटि के साहित्यिक गुण पाये जाते है। भाषा परिपक्व, परिमार्जित और भावपूर्ण है।

(३१९) ईश्वरीसिंह—ये कृपाराम के पुत्र और बिडदसिंह उपनाम माधव कवि के छोटे भाई थे। अलवर राज्य का किशनपुर गॉव इनकी जन्मभूमि थी।[45] इनका जन्म सं० १९१३ में[46] और देहान्त सं० १९७१ में हुआ

43. वही, पृ० २।

44. वही, पृ० १७

45. अलवर ते पश्चिम तरफ, पच कोस परमान।
ग्राम किसनपुर नाम मम, जन्म-भूमि को थान।।
तीन ग्राम जागीर के, तेरह हय के माहि।
अलवर पति की और ते, लिखित पटा बिच आहि।।
पुनि डेडरिया खॉप में, आल्हणोत चौहान।
नाम ईश्वरीसिंह नित, कविजन दास निदान।।

46. मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० १२४६

था ।[47] ये कट्टर आर्यसमाजी और ब्रजभाषा के मँजे हुए कवि थे । इनके रचे सात ग्रथों का पता है जो अभी तक अप्रकाशित है । उनके नाम ये है––

(१) अज्ञान-नाशक-स्वप्न (२) विनयाष्टक (३) ज्ञानमंगल (४) कलि युगाष्टक (५) अहिसापच्चीसी (६) प्रार्थनापच्चीसी और (७) बारहमासी ।

इन्होने शृंगार और शान्त रस की कविताएँ अधिक लिखी है । रचना मार्मिक है ।

(३२०) आम्बिकादत्त व्यास—ये गौड ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १६१५ में जयपुर में हुआ था ।[48] ये भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ मित्रो में से थे । इनके पिता का नाम दुर्गादत्त था जो दत्त कवि के नाम से कविता करते थे । व्यासजी सस्कृत के प्रतिभाशाली विद्वान और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। ये हिंदी गद्य और पद्य दोनो लिखते थे और समस्यापूर्ति में इतने अभ्यस्त थे कि देखते-देखते नया छंद बनाकर सामने रख देते थे । इनकी काव्य प्रतिभा से मुग्ध होकर कई प्रतिष्ठित व्यक्तियो और साहित्य-सभाओ ने इनको 'भारतभूषण', 'शतावधान' इत्यादि उपाधियो से विभूषित किया था । साहित्य के नाम पर इनको द्रव्य-लाभ भी यथेष्ट हुआ पर ये अन्त समय तक ऋणग्रस्त ही बने रहे ।[49] इनकी मृत्यु स० १९५७ में हुई थी ।[50]

व्यासजी हरिश्चन्द्र युग के उन इने-गिने साहित्य- सेवियो में से है जिनको हिंदी-क्षेत्र में भरपूर ख्याति मिली है । इन्होने संस्कृत और हिंदी में कुल ७८ पुस्तकें लिखी जिनमें से अधिकांश प्रकाशित हो चुकी है ।[51] इनकी प्रकाशित पुस्तको में 'बिहारी-बिहार' बहुत प्रसिद्ध है । इसमें इन्होने बिहारी के दोहो पर कुडलियाँ रची है और उनके भाव बड़ी मार्मिकता से पल्लवित किये गये है । उदाहरण–

सोहत ओढे पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात ।।
आतप पर्‌यौ प्रभात ताहि सो खिल्यो कमल-मुख ।
अलक भौर लहराय जूथ मिलि करत बिबिध सुख ।।

---

47. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार, पृ० २७

48 प० रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४

49. रामनरेश त्रिपाठी; कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७७

50. प०रामचन्द्र शुक्ल; हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४१४

51. रामनरेश त्रिपाठी, कविता-कौमुदी, भाग दूसरा, पृ० ७८

चकवा से दोउ नैन देखि इहि पुलकत मोहत ।
सुकवि बिलोकहु स्याम पीत पट ओढे सोहत ।।[52]

(३२१) **विष्णुप्रसाद कुंवरि**—यह रीवाँ के महाराजा रघुराजसिंह की पुत्री थी । इनका विवाह जोधपुर के महाराजा तखतसिंह के छोटे कुँवर किशोरसिंह के साथ स० १६२१ मे हुआ था ।[53] यह बडी भगवद्भक्त और धर्मपरायणा महिला थी । इनके रचे तीन ग्रन्थ मिलते है—अवधविलास, कृष्ण विलास और राधारासविलास ।[54] इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर कविताएँ भी बहुत है । इनकी रचना साहित्यिक-गुण-सपन्न और अच्छी श्रेणी की है । भक्ति भाव उसमें खूब भरा हुआ है ।

(३२२) **मदनेश**—ये मुगल सम्राट् अकबर के दरबारी कवि नरहरि भाट की वंश-परपरा में दौलतराम के पुत्र थे ।[55] ये मेवाड के महाराणा सज्जनसिंह के आश्रित थे। इनका लिखा 'सज्जनप्रकाश' ग्रन्थ प्राप्त है जो अभी मुद्रित नहीं हुआ है । यह काव्य-शास्त्र का एक बहुत बडा और उत्तम ग्रन्थ है । इसका रचना-काल सं० १६३४ है ।[56] इसमें नौ अध्याय है जिनमें काव्यागो का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है । इसमें लक्षण दोहो में और उदाहरण कवित्त-सवैया में दिये गये है और स्वरचित छन्दो के अतिरिक्त कवि ने बिहारी, मतिराम, देव आदि अन्य कवियो के छद भी उदाहरण में रखे है । यह बहुत श्लाध्य और पठनीय ग्रन्थ हैं । उदाहरण—

तीज गनगौरि के पिछौला के उछाह करि
आई जुरि अगना अनूप छबि भारी है ।
बनि बनि बानिक सो बिधि नै बनाउ दीन्हौ
लीन्ही छबि छीन छटा ससि की निनारी है ।।
बारि जात आनन अनोखी अबलोकि रही
बदन तिहारौ भूली सुधि बुधि सारी है

---

52. वही; पृ० ७६
53. मुशी देवीप्रसाद; महिलामृदुवाणी, पृ० ८४
54. ज्योतिप्रसाद; स्त्री-कवि-कौमुदी, पृ० १५७
55. स० भ० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र १६-१६
56. वही; पत्र २४२

ओछी कद ओछी बैस उदित उरोज उर
जाती आजु सजन सरूप पर बारी है ।।[57]

(३२३) वल्लभ—ये मालवा के रहनेवाले ओसवाल महाजन थे और मेवाड के महाराणा सज्जनसिंह की कीर्ति को सुनकर उनके आश्रय में उदयपुर चले आये थे ।[58] इनके पिता का नाम अनूपचन्द था । इनका वास्तविक नाम बालचद था ।[59] इन्होंने अपने आश्रयदाता महाराणा सज्जन सिंह को भेंट करने के लिये 'सज्जन-विलास' नाम का एक नीति विषयक ग्रथ बनाया जिसकी मूल प्रति उदयपुर के सरस्वती भडार में विद्यमान है । यह ग्रंथ महाभारत के आधार पर रचा गया है । इसका निर्माण-काल सं० १९३५ है ।[60] इसमें चालीस अध्याय हैं । इसमें साहित्यिक सौन्दर्य प्रायः नहीं के बराबर है, पर व्यावहारिक ज्ञान कूट-कूट कर भरा है और इस दृष्टि से यह ग्रथ मनन करने योग्य है । इसकी भाषा इस ढग की है—

नर केवल हू धन लोभ चहै तहँ धर्म की हानि निदान प्रमानी ।
पुनि केवल धर्म के लोभस ते वयरागिन को हुव अर्थ की हानी ।।
मदमत्त अनग के बीच सोऊ दोउ खोवत धर्म रु अर्थ अज्ञानी ।
निहि तै इन तीन हु बीच अभात्र चहौ तुम रोज प्रजा सुखदानी ।।[61]

(३२४) मारकंडेलाल—इनका विशेष वृत्त नही मिलता । ये गाजीपुर के रहनेवाले कोई अच्छे प्रतिभावान कवि थे जो मेवाड के महाराणा सज्जनसिंह के समय में उदयपुर में आ बसे थे[62] । यहाँ इन्होंने महाराणा सज्जनसिंह के लिए 'सज्जन-विनोद' नाम का एक ग्रथ सं० १९३९ में बनाया था । इन बातो का उल्लेख इन्होंने अपने इस ग्रंथ के प्रारंभ में किया है—

---

57. वही; पत्र ३१

58. महिमा सुनी महान, हिंद भान भुव रान की ।
वल्लभ चित उमँगान, आयो श्री उदयापुरी ।।

59. स० भ०उ० की हस्तलिखित प्रति, पृ० २८

60. वही; पृ० २०९

61. वही; पृ०३९

62. स० भ० उ० की हस्तलिखित प्रति, पत्र ३

सज्जनसिंह नरेन्द्र हित, ग्रथ सु सजन-विनोद।
धरचो नाम चिरजीव कवि, मानि महा मन मोद ॥

सवत ग्रह गुन अक ससि, आस्विन सुक्ल पवित्र।
विजया दशमी द्यौस रवि, पूज्यौ ग्रथ विचित्र ॥[63]

यह नायिका-भेद का ग्रंथ है। इसकी छंद-संख्या नौ सौ है। रचना काव्य-कलापूर्ण और मार्मिक है। इसमें से एक छद यहाँ दिया जाता है।

रूप प्रिया को बन्यौ नद नद प्रिया बनी स्याम को रूप अगाधा।
वै उनको हठि अक भरै अरु वै उनको मुख चूमति आधा ॥
त्यौ चिरजीव प्रिया रुठि जाति औ प्यारो मनाय पुजावत साधा।
कुँजन मै सुख लूटि रहे भले गोरे गुपाल औ साँवरी राधा ॥[64]

(३२५) जगदीशलाल—ये गोस्वामी कृष्णलाल के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १९२० में बूँदी में हुआ था।[65] इनके मृत्यु-काल का निश्चित पता नहीं है, पर कहा जाता है कि ये सं० १९७० में वर्तमान थे। ये ब्रजभाषा के अधिकारी विद्वान एव उत्कृष्ट कवि थे और नवो रसों में बहुत उत्तम कोटि की कविता करते थे। इन्होने कुल अठारह ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये है—

(१) ब्रजविनोद (२) साहित्यसार (३) प्रस्तारप्रकाश (४) बूदीन्द्र नृप रामपचीसी (५) लालबिहारी प्रागट्य पचीसी (६) लालबिहारी अष्टक (७) करुणाष्टक (८) महाबीर-अष्टक (९) षट्-उपदेश (१०) ध्यान-षट्पदी (११) कृष्णसत (१२) विनयसत (१३) नीति-अष्टक (१४) गुरु-महिमा (१५) अश्वचालीसा (१६) सप्रदायसार (१७) उत्सव-प्रकाश और (१८) पदपद्मावली[66]।

जगदीशलाल की भाषा साधारण बोलचाल को लिये हुए बड़ी जोरदार है। इन्होने विविध छंदो में कविता की है। इनकी कविता में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है।

---

63. वही; पत्र ३

64. वही, पत्र ११३

65. मिश्रबधु-विनोद, पृ० १२१४

66. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ६०–७०

(३२६) रामनाथ—ये बूंदी के राव गुलाबजी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १९२० में और देहान्त सं० १९८६ में हुआ था[67]। ये बहुपठित विद्वान और ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। इन्होने छोटे-छोटे ११ ग्रंथ बनाये जिनके नाम ये हैं—

(१) समस्यासार (२) सतीचरित्र (३) रामनीति (४) नीतिसार (५) शंभुशतक (६) परमेश्वराष्टक (७) गणेशाष्टक (८) सूर्य्याष्टक (९) दुर्गाष्टक (१०) शिवाष्टक और (११) नीति-शतक[68]।

रामनाथ ने भक्ति विषयक कविता अधिक लिखी है। इनकी कविता सरल और मनोहर है। उसमें अनूठापन और सूक्ति का प्राधान्य है।

(३२७) चन्द्रकला—चंद्रकलाबाई पूर्वोक्त राव गुलाबजी के घर की दासी थी।[69] इनका जन्म सं० १९२३ में और देहावसान सं० १९६५ के लगभग हुआ था[70]। यह विशेष पढ़ी लिखी नही थी, पर कविता के मर्म को खूब समझती थी। इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी जिससे इन्होंने सैकड़ों कवित्त-सवैये मुखाग्र कर लिए थे। राव गुलाबजी की तो प्रायः सभी अच्छी-अच्छी कविताएँ इन्हें कंठस्थ थीं। इन्होंने गुलाबजी से कविता करना भी सीख लिया था। समस्या-पूर्ति का इन्हें विशेष शौक था और इस कला में थी भी ये बहुत निपुण। एक समस्या की पूर्ति कई तरह से, कई रसो में, कर सकती थी और काव्य-चमत्कार सभी में एक-सा पाया जाता था। हिंदी के 'रसिक-मित्र' 'काव्य-सुधाकर' इत्यादि पत्रो में इनकी कविताएँ प्रायः छुपा करती थीं। इनकी रचनाओ से मुग्ध हो कर सीतापुर जिले के बिसवाँ गाम के कवि-मंडल ने इन्हें 'वसुन्धरा-रत्न' की उपाधि प्रदान की थी[71]।

इन्होने करुणा-शतक, पदवी-प्रकाश, रामचरित्र, महोत्सव-प्रकाश इत्यादि ग्रंथ बनाए थे[72]। परंतु इनकी कीर्ति श्रृंगार रसात्मक फुटकर कवित्त-सवैयों के कारण विशेष है। इनकी भाषा सालंकार, सरस तथा व्यवस्थित है। वस्तुतः हिंदी की कवियित्रियो में कला की दृष्टि से इतनी अधिक श्रेष्ठता

---

67. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० ५४३
68. मुंशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ९४
69. मुंशी देवीप्रसाद, महिलामृदुवाणी, पृ० ९
70 ज्योतिप्रसाद मिश्र; स्त्री-कवि-कौमुदी, पृ० १६७
71. वही; पृ० १६८
2. वही; पृ० १७०

किसी ने प्रदर्शित नहीं की जितनी इन्होंने की है । यह करुण रस के लिखने में भी सिद्धहस्त थी । विषाद की एक हृदय-वेधक रेखा इनके 'करुणा-शतक' में चित्रित देख पड़ती है ।

(३२८) मुरारिदान—ये आशिया शाखा के चारण जोधपुर-नरेश महाराजा जसवंतसिंह (द्वितीय) के आश्रित थे। इनका रचना-काल स० १६५० है[73] । इनके पिता का नाम भारतदान था[74] । डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बाँकीदास इनके पितामह थे । इन्होने 'जसवंत-जसो-भूषण' बनाया जो हिंदी के अलंकार-ग्रथो में सब से बडा है । इस पर इन्हें 'कविराजा' की पदवी के साथ लाखपसाव मिला था ।[75]

'जसवत–जसोभूषण' ८५२ पृष्ठो का एक भारी ग्रंथ है । इसका लघु रूप 'जसवंत-भूषण' है जो ३५१ पृष्ठो में समाप्त हुआ है । ये दोनो ग्रंथ मारवाड़ स्टेट प्रेस, जोधपुर की ओर से प्रकाशित हुए है । 'जसवंत-जसोभूषण' में मुरारिदान ने अलकारो के नामो को ही उनका लक्षण माना है और उदाहरण में अपने आश्रयदाता महाराजा जसवंतसिंह का यशोगान किया है। इसमें संदेह नहीं कि इसके लिखने में इन्होने हिंदी-संस्कृत के बहुत से प्रचीन ग्रथो से सहायता ली है । परतु नाम में ही लक्षण की कल्पना करने से अनेक स्थानो पर खींचातानी का आश्रय लेना पडा है और ऐसे उद्योग में सर्वत्र सफलता भी नहीं हुई है । इन्होने अतुल्ययोगिता, अनवसर तथा अपूर्वरूप ये तीन नये अलंकार बनाये है और प्रमाण को अलंकार ही नहीं माना है ।

ग्रंथ की रचना-शैली और विषय-विवेचना कलापूर्ण एवं हृदयग्राही है और इससे मुरारिदान के साहित्य विषयक ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है ।

---

73. मिश्रबधु-विनोद; पृ० २०४ (चतुर्थ भाग)
74. बॉकीदास-ग्रथावली; भाग पहला, पृ० ६ (भूमिका)
75. इक गज द्वै हयराज, कनक भूषन सौ भूषित ।
मुक्तमाल सिरपेच, रत्न-जटित जु कर अति हित ।।
कुडल ककन बसन, खडग जमदढ़ जुत भूषन ।
पच सहस्र मुद्रिका, अपर परिजन हित दिय गज ।।
प्रति वर्ष सहस्र षट्र उपज के, लक्षपूर्ति को ग्राम दिय ।
निज ग्रथ रीझ जसवत नृप, यह विध जग थिर नाम किय ।।

(३२९) ज्ञारसीराम—ये बूँदी-निवासी हीरालाल मिश्र क पुत्र थे। इनका रचना-काल सं० १९४६-७० है। ये बूँदी के महाराव राजा रघुबीर-सिंह के बड़े कृपापात्र थे और प्रायः उन्ही के पास रहा करते थे। ये आशुकवि थे। इनके रचे ग्रंथो के नाम ये हैं—

(१) वंशप्रदीप
(२) ललितलहरी
(३) सर्वसमुच्चय
(४) रघुबरसुयश-प्रकाश[76]

(३३०) किशनजी—ये सिंढायच कुलोत्पन्न जाति के चारण थे।[77] इनका रचना-काल सं० १९६५ है। ये डूँगरपुर के महारावल उदयसिंह के आश्रित थे। महारावल के आग्रह से इन्होने उदयप्रकाश नामक एक ग्रंथ बनाया जिसमें उनका जीवन-चरित्र वर्णित है।[78] यह ग्रंथ प्रकाशित भी चुका है। इसमे ४५५ छंद हैं। ग्रंथ इतिहास का है और इतिहास की दृष्टि से लिखा गया है पर इसमें स्थान-स्थान पर साहित्यिक छटा भी अच्छी दरसाई गई है।

(३३१) जगन्नाथ—ये सं० १९२८ में पैदा हुए थे।[79] बूँदी के प्रसिद्ध कवि ज्ञारसीराम इनके पिता थे। अपने पिता के समान ये भी ब्रजभाषा के मँजे हुए कवि और काव्य-मर्मज्ञ थे। इन्होने रामायण-सार, माथुर-कुल-कल्पद्रुम, शिक्षादर्पण, जमुना-पच्चीसी और अलकारमाला ये पाँच ग्रंथ लिखे थे। इनके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाएँ भी है। इनकी भाषा प्रवाह युक्त और कविता मधुर है।

(३३२) जयदेव—ये राव जाति के कवि इन्द्रमल के बेटे थे। इनका जन्म सं० १९२८ में हुआ था। ये अलवर के दरबारी कवि थे। ये ब्रजभाषा के बड़े पृष्ठपोषक और खड़ी बोली के विरोधी थे। कहा

---

76. मुशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५३–५४
77. उदय-प्रकास, पृ० १४२
78. कियो तीन वेरा हुकुम, उदयसिह नृप एह।
कविता छंद प्रबध क्रम, किसना ग्रथ करेह ॥
सुधा रूप यह बचन सुन, हित धरि हृदय हुलास।
करचो ग्रथ भाषा किसन, प्रगट सु उदय-प्रकास ॥
79. मुशी देवीप्रसाद; कविरत्नमाला, पृ० ५६



महाराज चतुरसिंहजी

करते थे कि खड़ी बोली के कवि ब्रजभाषा के याचक हैं। इनके बनाये अनेक फुटकर पद्य और छोटे-बड़े पाँच सात ग्रंथ मिलते हैं जिनमें 'राधाशतक' सब से अच्छा है।[81] इसमें १०० कवित्त हैं। श्रीराधिका के वर्णन में यह ग्रंथ अनूठा है। जयदेवजी का देहान्त कुछ ही वर्ष पूर्व हुआ है।

(३३३) चतुरसिंह—ये मेवाड़ के राजवंश से संबधित कवि सीसोदिया शाखा के क्षत्रिय थे और 'महाराज' कहलाते थे। इनका जन्म सं० १९३६ में हुआ था।[82] इनके पिता का नाम सूरतसिंह और दादा का अनूपसिंह था।[83] ये चार भाई थे–हिम्मतसिंह, लक्ष्मणसिंह तेजसिंह और चतुरसिंह[84] इनमें ये सब से छोटे थे।

महाराज चतुरसिंह के पिता बडे धर्मात्मा एवं ईश्वर-भक्त पुरुष थे और अहर्निश पूजा-पाठ तथा भजन-स्मरण में लगे रहते थे। इसलिए चतुरसिंह के हृदय में भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य के अंकुर जन्म ही से विद्यमान थे। अठारह वर्ष की आयु में इनका विवाह हुआ जिससे इनके दो कन्याएँ हुईं। परंतु दस वर्ष बाद इनकी धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। इससे साँसारिक विषय-वासनाओ से इनका मन उचट गया और दूसरा विवाह करने का विचार छोड ये अपना अधिक समय योगाभ्यास ईश-भजन, शास्त्राध्ययन आदि में व्यतीत करने लगे। घर में रहने से स्वाध्याय में बाधा पड़ती थी इसलिये इन्होंने घर को भी छोड़ दिया और उदयपुर शहर के बाहर सूकेर नामक गाँव के पास एक टेकरी पर झोंपड़ी बनाकर रहने लगे।

इस झोपड़ी में महाराज साहब कई वर्षों तक रहे। प्रकृति के दीर्घ कालीन मनन ने इनके व्यक्तित्व को भी प्रकृतिमय बना रखा था। ये बडे सरल-हृदय, साधु-प्रकृति और उदार थे। ऊँच-नीच का विचार छोड़ सभी श्रेणियो के लोगो से बड़ी विनम्रता और प्रेम-भाव से मिलते और संभाषण करते थे। सरलता तो इनके जीवन का मूल मंत्र था। इनके अंग-प्रत्यंग से, व्यवहार से, वार्तालाप से, जहाँ देखो वहाँ से सादगी प्रस्फुटित होती थी। वस्त्र इतने सादे पहिनते थे कि दूर से पूरे किसान

81. राजस्थान के हिंदी साहित्यकार, पृ० ३४
82 श्री गीताजी; पृ० १।
83. ओझा; उदयपुर राज्य का इतिहास; पृ० ६३१।
84 श्री गीताजी; पृ० ५।

मालूम पड़ते थे। बातचीत करते ससय ये इतनी सरल एवं स्निग्ध भाषा का प्रयोग करते थे कि देखते ही बनता था । कठिन से कठिन विषय को सरलता से समझा देना इनके बायें हाथ का खेल था । कैसा भी कठिन विषय क्यो न होता, महाराज साहब की प्रतिभा के खराद पर चढ़कर नवीन रूप धारण कर लेता था और उसकी दुरूहता हवा हो जाती थी ।

सं० १९८६ के जेठ महीने के कृष्ण पक्ष में इनको सोजिश की व्याधि हुई और कोई दस-बारह दिन की बीमारी के बाद आषाढ़ वँदि ९ को प्रातः नौ बजे इन्होने अपनी सांसारिक लीला संवरण करली[85] ।

चतुरसिंह संस्कृत, हिंदी, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओ के सुज्ञाता और मर्मज्ञ कवि थे । मीराँबाई के बाद मेवाड़ में यही एक ऐसे कवि हुए है जिनकी रचनाओ का घर-घर में प्रचार है । इन्होने मेवाड़ी भाषा में अधिक लिखा है । इसलिए कोई-कोई इनको मेवाड़ी का महाकवि मानते है ।

महाराज साहब ने ब्रजभाषा में ग्रंथ कोई नहीं लिखा, केवल फुटकर रचना की है जो प्रचुर मात्रा में है । इनकी भाषा बहुत सरल, मधुर और भावोपयोगी है । इन्होने जो कुछ लिखा है वह अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर लिखा है । इसलिए इनके काव्य में सचाई और और स्वाभाविकता है । एक बहुत बड़ी विशेषता जो इनकी कविता में दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि अत्यन्त भावमयी एवं मौलिकतापूर्ण होने के साथ-साथ वह सदुपदेशों से ओतप्रोत है और मनुष्य को उच्च आदर्शों की ओर ले जाती है । उदाहरण—

उन उरझीली अलक पै, जो मन उरझै नाँहि ।
तो उरझैगो ताहि की, माया ही के माँहि ।।

जो मानुस मोकौ बिरचि, बिमुख आप सौ कीन ।
तो मानुसता को कहो, कौन पदारथ दीन ।।

पसु ते यही विसेसता, नर मे मोहि लखाय ।
पसु अनजाने भ्रमत जग, नर जानत ही जाय ।।

---

85. वही; पृ० ५ ।

घरी घरी निरखै घरी, बढी काम की चाह ।
वहै घरी तो कौ खरी, सुधि आवै की नाह ।।

लै धरनी मे अलभ तनु, है हरिनी दृग-लीन ।
बैतरनी के तरन की, तैं करनी नहि कीन ।।

राम रावरे नाम मे, यहै अनोखी बात ।
दो सूधे आखर तऊ, आखर याद न आत ।।

(३३४) **राजेन्द्रसिंह**—ये झालावाड-नरेश भवानीसिंह के पुत्र थे । इनका जन्म सं० १६५७ में हुआ था ।[86] इनकी प्रारभिक शिक्षा राज-महलो में हुई । बाद में ये मेयो कॉलेज, अजमेर, में भरती हुए और कुछ वर्ष वहाँ रहकर फिर इंगलैंड चले गये । वहाँ इन्होने आक्सफार्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त की । अपने पिता की मृत्यु के बाद ये स० १६८६ में झालावाड़ की गद्दी पर बैठे और १४ वर्ष तक राज करने के पश्चात् सं० २००० में स्वर्गवासी हुए ।[87]

राजेन्द्रसिंह बड़े प्रजा-हितैषी, सुधारप्रिय और व्यवहार-कुशल राजा थे । ये साहित्य-सेवी भी पूरे थे। ये ब्रजभाषा और उर्दू दोनो में कविता करते थे। ये ब्रजभाषा की कविता में अपना उपनाम 'सुधाकर' और उर्दू कविता में 'मखमूर' रखते थे । ये कवित्त सवैया अधिक लिखते थे और समस्या-पूर्ति में प्रवीण थे । इनकी कविताओ का वृहत् संग्रह 'सुधाकर-काव्य-कला' के नाम से प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त इनकी लिखी हुई 'मधुशाला' और 'मधुबाला' नाम की दो रचनाएँ और भी हैं जो अभी अप्रकाशित हैं ।

ये सुधारवादी कवि थे । इनकी कविता मे देश-भक्ति और देश-कल्याण की गूँज है ।

(३३५) **केसरीसिंह**—ये सोदा बारहठ कुलोत्पन्न जाति के चारण हैं । इनका जन्म सं० १६२७ में मेवाड राज्य के सोन्याणा नामक गाँव में हुआ । इनके पिता का नाम खेमराज था । इनके पूर्वज गुजरात के रहनेवाले थे । कोई ६०० वर्ष हुए जब वे वहाँ से मेवाड़ में आकर बस गये थे ।

---

86 सुकवि, नवबर १६३४, पृ० १७ ।

87. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार; पृ० ५०८ ।

बारहठजी बहुश्रुत विद्वान, इतिहास-प्रेमी एवं आशुकवि है । वर्तमान चारण कवियो में ये सर्वश्रेष्ठ है । इन्होने प्रताप-चरित्र, राजसिंह-चरित्र, दुर्गादास-चरित्र, जसवंतसिंह-चरित्र और रूठी राणी नामक पॉच काव्य-ग्रंथो का प्रणयन किया है । इनमें प्रताप-चरित्र को छोड़कर शेष अभी तक अप्रकाशित है ।

केसरीसिंह प्राचीन चारण-काव्य-परंपरा के अनुवर्ती है । ये वीर रस की कविता अधिक लिखते है जिसमें ये निपुण है । छंदों में घनाक्षरी इनको बहुत प्रिय है । इनकी भाषा भावो के साथ चलती है और अभिव्यजना-शैली भी अनूठी होती है । भाव की सचाई, कल्पना की सुघडता और पुरुषोचित शक्ति इनकी कविता के प्रधान गुण है । इन गुणो के कारण इनको नागरी प्रचारिणी सभा काशी, की ओर से 'रत्नाकर-पुरस्कार' और 'बलदेवदास-पदक' भी मिले है । स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल इनको 'आधुनिक भूषण' कहा करते थे । पंडित रामचंद्र शुक्ल ने भी इनकी काव्योत्कृष्टता को स्वीकार किया है ।[88]

(३३६) सुजानसिंह—ये भगवानपुरा के स्वामी पृथ्वीसिंह के पुत्र है । इनका जन्म स० १९३५ में हुआ । ये बड़े मिलनसार, सहृदय एवं साहित्य-प्रेमी सरदार है और अपना अधिक समय विद्याध्ययन में व्यतीत करते है । ये काव्य-मर्मज्ञ और काव्य-रचना में प्रवीण है । इन्होने 'गजेन्द्रमोक्ष' नामक एक ग्रथ और अनेक फुटकर कविताएँ लिखी है । इनकी रचनाओ में वर्णन-चातुर्य्य के साथ-साथ भाव-गाभीर्य्य भी यथेष्ट पाया जाता है ।

(३३७) उमाशंकर—ये उदयपुर के रहनेवाले पालीवाल ब्राह्मण है । इनका जन्म सं० १९४९ में हुआ । इनके पिता का नाम नानजीराम था और वे ज्योतिष के अच्छे जानकार थे । ये हिंदी के बडे प्रेमी एवं साहित्य-रसिक सज्जन है और मेवाड़ में हिंदी का प्रचार करनेवालों में अग्रणी है । ये कवि भी है और अधिकतर ब्रजभाषा में रचना करते है । इन्होने ग्रंथ कोई नहीं लिखा पर फुटकर कवित्त, सवैया आदि प्रचुर मात्रा में रचे है जिनमें से कुछ प्रकाशित भी हुए है । इनकी कविता कलापूर्ण और वर्णन-शैली जोरदार होती है ।

---

88 हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० ५७५ ।

(३३८) अमृतलाल—इनका जन्म स० १९५५ में जोधपुर राज्य के कुचेरा गाँव में हुआ।[89] ये जाति के कायस्थ हैं। इनके पिता का नाम लाला गोपाललाल था। वे भी कविता से बडा प्रेम करते थे और स्वय भी कवि थे। राजस्थान के वर्तमान कवियो में अमृतलाल एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। इनकी टक्कर का ब्रजभाषा का कवि यहाँ दूसरा नहीं है। समूचे हिंदी-क्षेत्र में भी एक-दो ही हैं। इन्होने श्रीरामरसामृत (अमृत-सतसई), यमक रामायण और गगालहरी ये तीन ग्रथ रचे हैं। इनमें 'श्रीराम-रसामृत' बहुत प्रसिद्ध है। यह दो बार प्रकाशित भी हो चुका है। इसका दूसरा सस्करण बीस हजार प्रतियो का निकला था। इससे इस ग्रथ की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। स्वर्गीय पंडित किशोरीलाल, लाला भगवानदीन, पद्मसिह शर्म्मा आदि विद्वानो ने इस काव्य की बडी सराहना की है और हिंदी के कुछ पत्रकारो ने इसे हिन्दी-साहित्य की अमर कृति बतलाया हैं।

श्रीरामरसामृत में मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र का जीवन-चरित्र वर्णित हैं। इसमें ७६६ दोहे हैं। यह सात काडो में बँटा हुआ हैं। इसकी भाषा अलंकारमयी और विषय के अनुकूल सरल तथा श्रुतिमधुर हैं। कवि ने प्रत्येक कांड में अपने विषय का सफलता पूर्वक प्रतिपादन किया है। काव्य-चमत्कार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उसमें की वह अटल श्रद्धा है जिससे उसकी प्रत्येक पंक्ति ओतप्रोत है।

(३३९) मोहनसिंह—ये जाति के राव हैं। इनका जन्म मेवाड राज्य के बसी नामक गाँव में स० १९५६ में हुआ। ये बड़े अध्ययनशील व्यक्ति और हिंदी भाषा के मँजे हुए कवि हैं। ये डिंगल और पिंगल दोनो में चमत्कार पूर्ण कविता लिखते हैं। इनके रचे ग्रथो के नाम ये हैं—

(१) प्रतापयशचंद्रोदय (२) भूपालभूषण (३) कुभाकीर्तिप्रकाश (४) कूर्मयशकलानिधि (५) व्यग्यार्थ प्रकाश (६) कुडलिया-शतक (७) नीति-शतक (८) मोहन-सतसई (९) मृगया-बावनी (१०) महाराणा चरितामृत (११) रागबहार (१२) रघुवंशचरित्र (१३) मानपचीसी (१४) वणिक-बहत्तरी (१५) प्रपच-पचीसी (१६) जैसल-पचीसी और (१७) रामदास-पचीसी।

---

89. श्रीरामरसामृत, पृ० ११५।

सुकवि होने के साथ-साथ मोहनसिंह काव्यानुवाद करने में भी परम प्रवीण हैं। इन्होंने सूर, रसखान आदि ब्रजभाषा के कवियों की कुछ कविताओं का डिंगल भाषा में बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। बिहारी-सतसई के दो दोहों का अनुवाद देखिये—

पतड़ाँ मिळवे मत्तडी, उण झूपडले वाट।
पून्यूँ रातड-दीहडे, मुखडा रै भरळाट॥

सोका साज्या तीज नै, सकल साज सणगार।
सब रै मुख सळवट पडचा, धण सळवट पट धार॥[90]

(२४०) रैवतसिंह—ये भाटी राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९६२ में किशनगढ राज्यान्तर्गत नरवर नामक गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम जोरसिंह था। ये अच्छी कविता करते हैं। इन्होंने लक्ष्मणविलास, श्रीराम-रहस्य, श्रीगोहिल-गौरव-प्रकाश और श्रीछत्रशाल-शतक नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है। ये चारों ग्रंथ ब्रजभाषा में हैं। ये बहुत प्रौढ एवं परिमार्जित भाषा लिखते हैं जो विषय-वस्तु का एकान्त अनुसरण करती है।

(२४१) रणबीरसिंह—ये पिपलाज-निवासी सामंतसिंह के पुत्र हैं और जाति के शक्तावत राजपूत हैं। इनका जन्म सं० १९६७ में हुआ। ये ब्रजभाषा के अनन्य भक्त एवं सिद्धहस्त कवि हैं और लगभग तेरह वर्ष की आयु से कविता करते आ रहे हैं। इनका 'नरसी-चरित्र' नामक एक छोटा-सा काव्य-ग्रंथ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर रचनाएँ भी सैकडों की संख्या में उपलब्ध हैं। ये वीर, शृंगार आदि नवों रसों में बडी भावपूर्ण कविता लिखते हैं। विशेषकर इनकी भाषा देखने योग्य है। वह देव और पद्माकर का स्मरण दिलाती है।

---

90. पत्रा ही तिथि पाइयै, वा घर कैं चहुँ पास।
नितप्रति पून्यौई रहै, आनन-ओप-उजास॥
तीज-परब सौतिनु सजै, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजै-मुँह करी, इहीं मरगजै चीर॥

पचम अध्याय का परिशिष्ट

(३४२) कुजीलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९००, ग्र० भागवत दशम स्कंध भाषा। वि० ये चैनराम के पुत्र थे।

(३४३) शभुजी, जयपुर। नि० का० सं० १९००। ग्र० जयसाह-सुजस सरोवर और वाग्विलास, वि० ये भट्ट ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४४) गोविन्दलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९००; ग्रं० कलियुगरासौ, सांच-झूठ-वर्णन और माधव विनोद। वि० ये ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४५) सगम, जयपुर। नि० का० स० १९००; र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण चैनराम के पुत्र थे।

(३४६) सुन्दरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९००; ग्र० रामसुजस-सागर, और सत्यासत्य-निरूपण; वि० इनके फुटकर छद भी बहुत मिलते हैं।

(३४७) चंडीदान, कोटा। नि० का० स० १९००; र० फुटकर कवित्त; वि० ये मैह्यारिया गोत्र के चारण थे।

(३४८) वासुदेव, जयपुर। नि० का० सं० १९००; ग्रं० राधारूप-चरित्र-चद्रिका, दादूदयाल-चरित्र चद्रिका और नखशिख, वि० ये भट्ट ब्रजपाल के पुत्र थे।

(३४९) जीवनलाल, जयपुर। नि० का० स० १९००; ग्र० मथुरा-वर्णन; वि० ये गोपाल के पुत्र थे।

(३५०) सांवलदास, उदयपुर। नि० का० स० १९०१, र० फुटकर भजन। वि० ये कोई साधु थे।

(३५१) चद कवि, जयपुर। नि० का० सं० १९०४। ग्रं० महाभारत भाषा और भेदप्रकाश, वि० महाराजा रामसिह (द्वितीय) के आश्रित।

(३५२) पुरुषोत्तम, मेवाड़। नि० का० स० १९०५, र० स्फुट; वि० ये शृगार रस के उत्कृष्ट कवि थे।

(३५३) सुन्दरलाल, जयपुर। नि० का० सं० १९०६, ग्रं० सुन्दर चद्रिकारसिक, कुजकौतुक और पूजा विभास, वि० इनका उपनाम रसिक था।

(३५४) श्रीधर भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १९०९; ग्रं० भारत सार और राजेन्द्र-चिंतामणि; वि० ये पद्माकर के वंशज थे।

(३५५) लक्ष्मीधर भट्ट, जयपुर। नि० का० स० १९१०; ग्रं० गजसालोत्र और हयसालोत्र। वि० पद्माकर के पौत्र थे।

(३५६) वंशीधर, जयपुर। नि० का० सं० १६१०; र० स्फुट; वि० ये पद्माकर के पौत्र थे।

(३५७) विजयचद्र, जयपुर, नि० का० स० १६१०; ग्रं० मान-महोदधि।

(३५८) शालिग्राम चौबे, बूंदी। नि० का० स० १६१४; र० स्फुट।

(३५६) हीरालाल चौबे, बूंदी। नि० का० स० १६१४, र० स्फुट।

(३६०) थिरपाल, जोधपुर। नि० का० स० १६१४; ग्र० गुलाब चम्पा।

(३६१) रामनाथ, अलवर। नि० का० स० १६१६; र० स्फुट; वि० ये बारहठ ज्ञानजी के पुत्र थे।

(३६२) पारसदास, जयपुर। नि० का० सं० १६२०; ग्रं० ज्ञान सूर्योदय, पारसविलास और सार चतुर्विशतिका की वचनिका।

(३६३) पुरंदरजी, जयपुर। नि० का० सं० १६२०; ग्र० रघुराज-विनोद वि० ये रीवाँ से जयपुर में आये थे।

(३६४) फतहलाल, जयपुर। नि० का० सं० १६२०, ग्रं० विवाह-पद्धति, दशावतार नाटक, राजवार्तिकालंकार रत्नकुरंडन्यायदीपिका और तत्त्वार्थ सूत्र की वचनिका' वि० ये जैन थे।

(३६५) गोविंदराम, जयपुर। नि० का० सं० १६२०, ग्रं० गूजर-गीत-मंगल, वि० ये जाति के गूजर थे।

(३६६) बंसीधर, जयपुर। नि० का० सं० १६२०, र० फुटकर पद, वि० ये तैलग ब्राह्मण थे।

(३६७) शिवलाल, जयपुर। नि० का० स० १६२०, ग्र० चर्चा-सग्रह बोधसार, दर्शनसार और अध्यात्म तरगिनी आदि।

(३६८) रामगोपाल, अलवर। नि० का० स० १६२१, स्फुट, ये सनाढय ब्राह्मण थे।

(३६६) बालकृष्ण चौबे, बूंदी। नि० का० सं० १६२५, र० स्फुट। वि० ये सतसईकार बिहारी के वंशज थे।

(३७०) चन्द्रधर, जयपुर। नि० का० सं० १६२५; र० स्फुट; वि० पद्माकर के पौत्र।

(३७१) जमनालाल, जयपुर। नि० का० सं० १६२८-६०, र० जमन-विलास, वि० ये सेठ विमल लाल के पुत्र थे।

(३७२) चतुर्भुज मिश्र, जयपुर। नि० का० सं० १६२६; ग्रं० ब्रज-परिक्रमा सतसई और वंश-विनोद; वि० ये कुलपति मिश्र के वंशज थे।

(३७३) मुकुंदलाल, भरतपुर। नि० का० सं० १६३०; ग्रं० मुकुंद-विनोद।

(३७४) मोड़जी, मेवाड़। नि० का० सं० १९३०, र० स्फुट, वि० ये म्हैयारिया गौत्र के चारण थे।

(३७५) इन्द्रमल, अलवर। नि० का० स० १९३०, र० स्फुट, वि० ये जाति के राव थे।

(३७६) गौर गुसाँई, जयपुर। नि० का० सं०१९३०, र० फुटकर, वि० ये महाकवि भूषण के वंशज थे।

(३७७) गुलाबसिंह, भरतपुर। नि० का० सं० १९३०, ग्र० प्रेम-सतसई और कार्तिक माहात्म्य। वि० ये जाति के गूजर थे।

(३७८) रामचंद्र, जयपुर। नि० का० सं० १९३०, र० स्फुट, वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(३७९) श्रीकृष्ण भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १९३०, ग्र० जयपुर-विनोद, सारशतक आदि, वि० ये संस्कृत और पिंगल दोनों में रचना करते थे।

(३८०) श्यामलदास, उदयपुर। नि० का० सं० १९३५; ग्र० सज्जन यश-वर्णन। वि० ये दधवाड़िया गोत्र के चारण थे।

(३८१) सज्जनसिंह, उदयपुर। नि० का० सं० १९३५, ग्र० रसिक-विनोद; वि० ये मेवाड के महाराणा थे।

(३८२) जोधसिंह महता उदयपुर। नि० का० सं० १९३५; र० स्फुट; वि० ये इतिहास के भी मर्मज्ञ थे।

(३८३) रामप्रसाद गौड, अलवर। नि० का० सं० १९३५, वि० ये ब्रजभाषा के उत्तम कवि थे। इनके बनाये ग्रथो की संख्या ५० के लगभग है। इनका उप नाम परसाद था।

(३८४) रसिकलाल, अलवर। नि० का० सं० १९३७, ग्र० श्रीमद्भ-गवद्गीता का पद्यानुवाद, वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(३८५) हरिबख्श, खेतडी। नि० का० स० १९४०, र० हरिभक्त-प्रकाश वि० ये खेतडी के मंत्री-पद पर थे।

(३८६) दामोदर, अलवर। नि० का० सं० १९४०, ग्रं० कृष्णकेलि, वि० ये तैलग भट्ट अलवर दरबार के आश्रित थे।

(३८७) अमरकृष्ण चौबे, बूँदी। नि० का० सं० १९४०, र० स्फुट वि० ये बालकृष्ण चौबे के पुत्र थे।

(३८८) खुमाणसिंह, करौली। नि० का० स० १९४०, र० स्फुट, ये करौली-नरेश मदनपाल के आश्रित थे।

(३८९) साधुजी, जयपुर। नि० का० स० १९४०, ग्रं० कृष्णचंद्र-भक्तिविलास।

(३९०) गगादीन, अलवर। नि० का० सं० १९४०, र० स्फुट; वि० ये कविया शाखा के चारण रामनाथ के पुत्र थे।

(३९१) गगजी, खेतडी । नि० का० सं० १९४०, र० फुटकर, वि० ये गौड ब्राह्मण साधुराम के पुत्र थे।

(३९२) हरिनारायण, जयपुर । नि० का० स० १९४४, र० फुटकर, वि० ये गगजी के वशज थे ।

(३९३) कृष्णराम, जयपुर । नि० का० स१९४४, र० स्फुट, वि० गौतम गोत्रीय ब्राह्मण कुन्दनराम के बेटे थे ।

(३९४) हनुमतसिह, अलवर । नि० का० स० १९४५, ग्र० (१) हिंडोलाष्टक और (२) पावसाष्टक, वि० ये नरूका क्षत्रिय थे ।

(३९५) रामनाथ, जयपुर । नि० का० सं० १९४७, ग्रं० आर्य-विनोद।

(३९६) भैरवदान, बीकानेर। नि० का० स० १९४९, ग्र० अलकार-कला-निधि ।

(३९७) बालकृष्ण, काकरौली। नि० का० स० १९५०, र० स्फुट, वि० ये काकरौली के गोस्वामी थे।

(३९८) रामकुमार, अलवर । नि० का० स० १९५०, र० स्फुट, वि० ये खडेलवाल महाजन थे।

(३९९) रामलाल, गोलावास। नि० का० सं० १९५०, र० स्फुट, वि० ये चारण थे ।

(४००) मन्नालाल, जयपुर, नि० काल सं० १९५०, ग्र० मधुमास-वर्णन; वि० ये कुंजीलालजी के पुत्र थे ।

(४०१) प्रभुदान, दौलतगढ़ । नि० का० स० १९५० र० स्फुट, वि० ये देथा गोत्र के चारण थे ।

(४०२) गगाप्रसाद, जयपुर। नि० का० स० १९५२, ग्र० भक्ति-विलास, वि० ये नंदलाल के पुत्र थे।

(४०३) गगाधर, जयपुर । नि० का० स० १९५०, र० स्फुट, वि० ये गुर्जरगौड ब्राह्मण बलदेव के पुत्र थे ।

(४०४) छोगालाल, मारवाड । नि० का० स० १९५०, र० स्फुट, वि० ये बडलू गाँव-निवासी जाति के सेवग थे।

(४०५) अजीतसिह, खेतडी । नि० का० स० १९५०, वि० ये खेतडी के राजा थे।

(४०६) जगन्नाथ चौबे, बूँदी । नि० का० स० १९५०, ग्रं० अलंकार माला, रामायण-सार, माथुर-कुल-कल्पद्रुम, शिक्षा-दर्पण और जमुना-पचीसी ।

(४०७) रामसिंह, उदयपुर, नि० का० स० १९५१, र० स्फुट, वि० ये चारण जाति के कवि उदयपुर दरबार के पोलपात थे ।

(४०८) रामद्विज, अलवर। नि० का० स० १९५२, र० स्फुट; वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका पूरा नाम रामचन्द्र था ।

(४०९) बजरंग, कोटा । नि० का० सं० १९५२, र० स्फुट; वि० ये जाति के राव थे ।

(४१०) बिहारीदान, जोधपुर। नि० का० सं० १६५२,, र० स्फुट, वि० ये देथा गौत्र के चारण थे।

(४११) शभुदान, नागौर। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये जाति के चारण थे।

(४१२) शिवप्रताप, अजमेर। नि० का० स० १६५२, र० वि० ये कोटा-नरेश के अध्यापक थे।

(४१३) शिवबख्श, अलवर। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये पालावत शाखा के चारण थे।

(४१४) राघोदान, सिरोही। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये आढ़ा गोत्र के चारण थे।

(४१५) जयलाल, किशनगढ। नि० का० सं० १६५२, ग्र० छप्पन भोग-चद्रिका, प्रतिष्ठा-प्रकाश और कवि-सार-समुच्चय, वि० ये वृन्द कवि की वश-परपरा मे थे।

(४१६) भैरोदान, घाणेराव। नि० का० स० १६५२, स्फुट, वि० ये चारण थे।

(४१७) भोपालदान, धानणी। नि० का० सं० १६५२, र० स्फुट, वि० ये चारण थे।

(४१८) कृष्णचन्द्र, किशनगढ़। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये जाति के कायस्थ थे।

(४१९) किशोरदान, शाहपुरा। नि० का० स० १६५२, स्फुट, वि० ये दधवाड़िया गोत्र के चारण थे।

(४२०) चालकदान, उदयपुर। नि० का० स० १६५२, स्फुट, वि० ये आशिया शाखा के चारण थे।

(४२१) चतरसिंह, कर्णवास। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये चारण थे।

(४२२) विद्यारसिक, आबू। नि० क० स० १६५२, र० स्फुट, वि० विशेष वृत्त ज्ञात नही।

(४२३) हरदेव, करौली। नि० का० स० १६५२, ग्र० शृगार शतक, ये चन्द्रलाल के पुत्र थे।

(४२४) हमीरदान, मारवाड़। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट, वि० ये लालस शाखा के चारण थे।

(४२५) सूरतदान, जोधपुर। नि० का० स० १६५२, र० स्फुट; वि० ये दधवाड़िया गोत्र चारण थे।

(४२६) गोपालजी, मारवाड। नि० का० स० १६५२; वि० ये जाति के सेवग थे।

(४२७) बलभद्रसिह, जोधपुर (?)। नि० का० स० १६५३, र० स्फुट, वि० विशेष वृत्त ज्ञात नही।

(४२८) गिरवरसिह, केलवा। नि० का० स० १६५३; र० स्फुट, वि० ये जाति के राव थे।

(४२९) बालचद, सीकर। नि० का० स० १६५६, र० फुटकर पद, वि० ये गौड़ ब्राह्मण थे।

(४३०) हरदान, मोगड़ा। नि० का० सं० १६५६; र० स्फुट, वि० ये सिंढायच शाखा के चारण थे।

(४३१) बिजयनाथ, जयपुर । नि० का० स० १९५७, र० स्फुट, वि० ये जाति के चारण थे ।

(४३२) पीताम्बर, किशनगढ़ । नि० का० स० १९५७, र० स्फुट, वि० ये देवीदास के पुत्र थे ।

(४३३) गगादान, बदनोर । नि० का० सं० १९५७; र० स्फुट, वि० ये चारण थे ।

(४३४) रघुनाथसिंह, किशनगढ । नि० का० स० १९५७, र० स्फुट, वि० महाराजा शार्दूलसिंह के आश्रित ।

(४३५) शुकदेव, खरवा । नि० का० सं० १९५७, र० स्फुट' वि० ये कोई ब्राह्मण थे ।

(४३६) चडीदान, किशनगढ । नि० का० स० १९५७, र० स्फुट; वि० ये चारण थे ।

(४३७) लक्ष्मीनारायण, जयपुर । नि० का० स० १९६०, र० स्फुट, वि० गगजी के वशज थे ।

(४३८) सामर्तसिह पिपलाज । नि० का० स० १९६०, र० स्फुट, वि० ये शक्तावत राजपूत थे ।

(४३९) घनश्याम, नाथद्वारा । नि० का० स० १९६०, र० फुटकर कवित्त, वि० ये ब्राह्मण थे ।

(४४०) संपतराम, अलवर । नि० का० सं० १९६२, र० स्फुट ।

(४४१) नाथूराम, जयपुर । नि० का० सं० १९६२; ग्र० भैरव-विलास ।

(४४२) श्यामलाल मिश्र, जयपुर । नि० का० स० १९६०, र० स्फुट, वि० ये कुलपति मिश्र की वंश-परपरा में रघुनाथ जी के बेटे थे ।

(४४३) हनुमतसिह, बूँदी । नि० का० स० १९६८, र० स्फुट, वि० ये हाड़ा राजपूत बलवतसिंह के बेटे थे ।

(४४४) कन्हैयालाल, बूँदी । नि० का० स० १९६८, र० फुटकर, वि० ये गोस्वामी जगदीशलाल के पुत्र थे ।

(४४५) जीवनसिंह, करौली । नि० का० सं० १९६८; र० स्फुट; वि० ये राव खुमाणसिंह के बेटे थे ।

(४४६) उमादत्त, अलवर । नि० का० स० १९६८, र० स्फुट, वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलवर के दरबारी कवि थे ।

(४४७) विष्णुसिंह, करौली । नि० का० स० १९७०, र० स्फुट, वि० ये राव जीवनसिंह के पुत्र थे ।

(४४८) कृष्णकर, करौली । नि० का० सं० १९७०, र० स्फुट; वि० ये राव जीवनसिंह के पुत्र थे ।

(४४९) कदंबलाल, बूँदी । नि० का० सं० १९७०, र० स्फुट, वि० ये गोस्वामी कन्हैयालाल के पुत्र थे ।

(४५०) लक्ष्मीनारायण, जयपुर । नि० का० सं० १९७०, र० फुटकर, वि० ये रामप्रताप सिंहानिया के पुत्र थे ।

(४५१) गदाधरप्रसाद, जयपुर। नि० का० सं० १९७०, ग्र० शुक्ल-सतसई, वि० ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

(४५२) फूलचद भट्ट, जयपुर। नि० का० सं० १९७०, र० फुटकर, वि० ये वशीधर भट्ट के पौत्र थे।

(४५३) मोहनलाल, अलवर। नि० का० स० १९७०, ग्र० माधवेन्दुप्रकाश और मानमहोत्सव,

(४५४) माधौसिह, बूंदी। नि० का० स० १९७०, र० स्फुट, वि० ये राव रामनाथ के पुत्र थे।

(४५५) शिवदयाल, जयपुर। नि० का स० १९७०, ग्रं० सरस-सागर, वि० ये घासीराम के पुत्र थे।

(४५६) घायल कवि. राजनगर। नि० का० सं० १९७८, र० फुटकर पद; वि० ये मुसलमान थे। इनका असली नाम कमालशाह था।

(४५७) रामदयाल नेवटिया, फतहपुर। मृ० स० १९७५, ग्र० (१) प्रेमाकुर (२) बलभद्र-विजय (३) लक्ष्मण-मंगल, और पदावली।

(४५८) घनश्यामजी, किशन-गढ। नि० का० स० १९८७, र०, फुटकर, वि० ये वृन्द कवि के वशज थे।

(४५९) कृष्णदत्त, अलवर। नि० का० सं० १९८०, र० कीचक-बध, पद्य-पंचाशिका और दोहावली।

(४६०) प्यारेलाल मिश्र, जय-पुर। नि० का० सं० १९८०, र० स्फुट, वि० ये कुलपति के वशज थे।

(४६१) श्रीमन्नारायण, अलवर। नि० का० स० १९८०, र० प्रेमोल्लास और विनय-विनोद।

(४६२) शोभालाल, उदयपुर। नि० का० स० १९८५, र० फुटकर पद, वि० ये दशोरा ब्राह्मण थे।

(४६३) शभुदयाल तिवारी, उदयपुर। नि० का० सं० १९९०, र० फुटकर, वि० ये बडे प्रतिभावान कवि थे।

(४६४) श्रीनारायण, जवास -। नि० का० सं० १९९०, ग्र० प्रताप-पचासा; वि० ये वीर रस के कवि थे।

ऊपर वर्तमान काल के कुछ बहुत प्रसिद्ध कवियो का विवरण दिया गया है। लेकिन इनके अतिरिक्त ब्रजभाषा के कई कवि इस काल में हो गये है, और इस समय भी विद्यमान है, जिनकी कृतियो का काव्य-प्रेमियो में आदर है। परंतु उनकी संख्या इतनी अधिक है कि इस छोटे से ग्रंथ में उन सब का परिचय आदि देना तो दूर रहा उन की नामावली प्रस्तुत करना भी कठिन है। अतएव उनको जान-बूझकर छोड़ दिया गया है जिसके लिए लेखक क्षमा-प्रार्थी है।

छठा अध्याय

उपसंहार

आज से कोई साढे तीन सौ वर्ष पूर्व ब्रजभाषा साहित्यिक भाषा के रूप में प्रकट हुई थी और राजस्थान के कवियो में सर्वप्रथम भक्त मीरॉबाई ने इसमें पद-रचना की थी। तब से लेकर आज तक इस को जो गौरव प्राप्त हुआ और इसमें जो साहित्य लिखा गया उसकी रूप-रेखा दे देने के बाद अब हम उस इतिहास के अन्तिम पृष्ठ पर आ गये है ।

एक समय था जब ब्रजभाषा समस्त राजस्थान की साहित्यिक भाषा के पद पर आरूढ थी। यहाँ के छोटे-बडे सभी राज्यो के कविगण इसमें कविता लिखते थे। परतु अब समय बहुत बदल गया है। लोगो के मन में अब ब्रजभाषा के प्रति उतना अनुराग नहीं रहा जितना पहले था। ब्रजभाषा को पद-च्युत कर खडी बोली ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। राजस्थानी भी उस की प्रतिद्वंदिता के लिये उठ खडी हुई है। अब केवल कुछ नगण्य से स्थान यहाँ ऐसे रह गये है जहाँ ब्रजभाषा की चर्चा और उसमें काव्य-रचना होती है और वह भी सिर्फ शौक पूरा करने के लिए। ब्रजभाषा की यह स्थिति केवल राजस्थान में ही नही, उसकी जन्मभूमि ब्रजप्रदेश में भी है। ऐसा लगता है कि ब्रजभाषा का थोडा-बहुत प्रभाव जो राजस्थान तथा राजस्थान के बाहर अन्य स्थानो में रह गया है वह भी आगामी दस-बीस वर्षो में लुप्त हो जायगा और सस्कृत भाषा की तरह यह भी स्कूल-कॉलेजो में अध्ययन मात्र की वस्तु रह जायगी।

ब्रजभाषा अपने आप में एक पूर्ण भाषा है। इसका विशाल शब्द-समूह है। इसमें दूसरी भाषाओ के शब्दो को पचाने की अद्भुत शक्ति है। इसकी अभिव्यंजना-शक्ति अनुपम है। विशेषकर शृंगार रस के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को व्यक्त करने की जो विलक्षण क्षमता इसमें पाई जाती है वह अन्य भारतीय भाषाओ में कम देखने में आती है। और इसका-सा माधुर्य्य तो इसी में है। किंतु इन सब गुणो के होते हुए भी ब्रजभाषा आज अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रही है। इसका दायित्व किस पर है ? इसके कवियों पर। उन्होने बिना समय की गति को जाने-पहचाने इसका अंधाधुंध दुरुपयोग किया है और इसे जनसाधारण

से दूर ला पटका है। सन् १८५७ में भारतवर्ष में विद्रोह हुआ तदंतर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हमारी आज़ादी की लंबी लड़ाई हुई। जलियानवाला बाग में निर्दोष नर-नारियों पर गोलियाँ चली। किंतु ऐसी रोमाचकारी घटनाओ से भी ब्रजभाषा के कवियो के मन में कोई क्षोभ उत्पन्न न हुआ। वे श्रीकृष्ण-सुदामा, नरसी महता, होरी, बसंत और राजा-महाराजाओ आदि के गीत गाते रहे। अभी-अभी जब बंगाल में अकाल-पीडित लाखो मनुष्य हाय-हाय कर रहे थे और भूख से छटपटा कर प्राण दे रहे थे तब ब्रजभाषा के कवि इस प्रकार की समस्याएँ लिखँ रहे थे—

"लाज की आँख जहाज ते भारी"

"राधा देत माधव को सादर बधाई है"

"कब धौ मिटेगी हाय रात यह जाडे की"

"कृष्ण-मन बीध्यौ वीर त्रिबली-तरग मे"

"सादे ही नैन कटारी से लागै"

अतएव जो कवि अपने युग-धर्म को नहीं समझ सकते, जिनकी रचना में लोक-जीवन की झाँकी नहीं मिलती और जो अपने देश-वासियो के दुख-दर्द में भागीदार नहीं बन सकते वे अपनी भाषा को रसातल में पहुँचा दें तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। वस्तुतः आश्चर्य्य की बात तो यह है कि लगभग सौ वर्षों से ऐसी चोटें खाकर भी ब्रजभाषा अभी निष्प्राण नहीं हुई है।

परंतु ये सब अतीत की बातें है। इनकी पुनरावृत्ति से विशेष लाभ होने की संभावना नही। इस समय हमारे सोचने की बात यह है कि वर्तमान स्थिति में ब्रजभाषा को बचाया जा सकता है अथवा नहीं और यदि बचाया जा सकता है तो किस प्रकार। हमारा अपना ख़याल यह है कि ब्रजभाषा को जीवित रखने का समय अब हाथ से निकल गया। यह पुन उठकर खडी बोली के सामने टिक नही सकती। यदि भरपूर प्रयत्न किया जाय, जैसा कि मथुरा आदि स्थानो में किया जा रहा है, तो यह अधिक से अधिक ब्रजप्रदेश की साहित्यिक भाषा बनी रह सकती है जहाँ कि यह बोली भी जाती है। समस्त हिंदी-क्षेत्र की साहित्यिक भाषा बना रहना तो कठिन है। और राजस्थान में तो अब इसका काव्य-

भाषा के रूप में टिका रहना असभव ही है । अतः इस दिशा में प्रयत्न करना निरर्थक है ।

लेकिन एक काम राजस्थान-वासी भी कर सकते हैं । वह यह कि ब्रजभाषा के सैकडों-हजारों ग्रंथ जो यहाँ के विभिन्न राजभांडारो, रामद्वारो, चारण-भाटो के घरों आदि मे अस्तव्यस्त और उपेक्षित दशा में पड़े हुए है उन सब को एकत्र करें, उनके प्रामाणिक संस्करण निकाले और स्कूल-कॉलेजो में उनके पठन-पाठन की व्यवस्था करें । इससे ब्रजभाषा के साथ जो उनका प्राचीन सबध है वह बराबर बना रहेगा और हिंदी की बल-वृद्धि होगी । यदि उन्होने यह नही किया तो ब्रजभाषा की वह अतुल सामग्री जो उनके पास धरोहर के रूप में रखी हुई है धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी और आगे आनेवाली पीढ़ियो के सामने वे अपराधी सिद्ध होगे ।



संदभ-सूची

प्रकाशित ग्रन्थ

हिंदी

१ अणभैवाणी (रामचरण)
२. अलकार-रत्नाकर (दलपतिराय-बंसीधर)
३. अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय (दीनदयाल गुप्त)
४ उत्तरी भारत की सत-परपरा (परशुराम चतुर्वेदी)
५. उदय-प्रकाश (किशनजी)
६. ऊमर-काव्य (ऊमरदान)
७. कविता-कौमुदी (रामनरेश त्रिपाठी), भाग १-२
८ कविरत्नमाला (मुशी देवीप्रसाद)
९. केसरीसिह-समर (हरिनाभ)
१०. कोशोत्सव स्मारक संग्रह (ना० प्र० स०)
११. गरीबदासजी की वाणी (स्वामी मंगलदास)
१२ चतुर-चिंतामणि (चतुरसिंह)
१३. चौरासी वैष्णवन की वार्ता (वें० प्रे०)
१४ छत्रप्रकाश (लाल)
१५ छत्रशाल-दशक (भूषण)
१६. जयपुर का इतिहास (हनूमान शर्म्मा)
१७. जसवंत-उद्योत (दलपत मिश्र)
१८. जसवतजसोभूषण (मुरारिदान)
१९. तुलसीदास (डा० माताप्रसाद गुप्त)
२० दशमग्रंथ (श्रीगुरुमत प्रेस, अमृतसर)
२१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (वें० प्रे०)
२२. नागरसमुच्चय (नागरीदास)
२३. पंचामृत (स्वामी मगलदास)
२४. पत्रप्रभाकर (फतहकरण)
२५ पद्माकर की काव्य-साधना (अखौरी गंगाप्रसाद)
२६. पाडवयशेन्दुचद्रिका (स्वरूपदास)
२७. पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता (श्यामलदास)

२८. पृथ्वीराज रासौ की प्रथम संरक्षा (मोहनलाल-विष्णुलाल पड्या)
२९. पृथ्वीराज रासौ (ना० प्र० स०)
३०. पृथ्वीराज रासौ (ए० सो० बं०)
३१. प्रतापचरित्र (केसरीसिह)
३२. बषनाजी की वाणी (स्वामी मगलदास)
३३. बिहारी की वाग्विभूति (विश्वनाथप्रसाद)
३४ बिहारी-रत्नाकर (जगन्नाथदास)
३५. ब्रजनिधि-ग्रथावली (पु० हरिनारायण)
३६. ब्रजभाषा व्याकरण (धीरेन्द्र वर्मा)
३७. ब्रजभाषा साहित्य का नायिका- वर्णन (प्रभुदयाल मीतल)
३८ ब्रजमाधुरी-सार (वियोगी हरि)
३९. भक्तनामावली (ध्रुवदास)
४०. भक्तमाल (नाभादास)
४१. महिला-मृदुवाणी (मुशी देवीप्रसाद)
४२ मारवाड का इतिहास (विश्वेश्वरनाथ रेउ)
४३ मिश्रबधु-विनोद, भाग १–४
४४. मीराँबाई का जीवनचरित्र (मुशी देवीप्रसाद)
४५. मीराँबाई की शब्दावली (बे० प्रे०)
४६. मीराँ-माधुरी (ब्रजरत्नदास)
४७. मीराँ-स्मृति-ग्रंथ (हिंदी बंगीय परिषद, कलकत्ता)
४८. मुहणोत नैणसी की ख्यात (ना० प्र० स०)
४९. राजपूताने का इतिहास (ओझा)
५०. राजरसनामृत (मुंशी देवीप्रसाद)
५१. राजस्थान के हिंदी-साहित्यकार (हिंदी-साहित्य-परिषद, जयपुर)
५२. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, भाग १ (मोतीलाल मेनारिया)
५३. राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज, भाग २ (अगरचंद नाहटा)
५४. राजस्थानी भाषा (सुनीतिकुमार चटर्जी)
५५ राजस्थानी भाषा और साहित्य (मोतीलाल मेनारिया)
५६. रामचंद्रिका (केशवदास)
५७. रामचरितमानस (तुलसीदास)
५८ रिपोर्ट मर्दुमशुमारी राज्य मारवाड़, सन् १८९१

५९. ललित ललाम (मतिराम)
६०. वंशभास्कर (सूरजमल)
६१. वीरविनोद (श्यामलदास)
६२. वीरविनोद (गणेशपुरी)
६३. शिखर-वंशोत्पत्ति (गोपाल)
६४. शिवसिंह-सरोज (ठा० शिवसिंह)
६५. श्रीदादूजन्मलीलापरची (सुखदयाल दादू)
६६. श्रीरामस्नेहधर्मप्रकाश (चौकसराम)
६७. श्रीनागरीदास का जीवनचरित्र (राधाकृष्णदास)
६८. श्रीरामरसामृत (अमृतलाल)
६९. श्रीवल्लभ वंश-वृक्ष (विद्याविभाग, कांकरौली)
७०. सतमाल (शिवव्रतलाल)
७१. सतवाणी-संग्रह (वें० प्रे०)
७२. सहज प्रकाश (सहजोबाई)
७३. सुन्दर-ग्रंथावली (पु० हरिनारायण)
७४. सुजानचरित्र (सूदन)
७५. स्त्री-कवि-कौमुदी (ज्योतिप्रसाद)
७६. स्वर्गीय बारहठ बालाबख्श (पु० हरिनारायण)
७७. हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (श्यामसुन्दरदास)
७८ हिंदी काव्य-धारा (राहुल सांकृत्यायन)
७९ हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय (बडथ्वाल)
८०. हिंदी काव्य-शास्त्र का इतिहास (डा० भगीरथ मिश्र)
८१ हिंदी-नवरत्न (मिश्रबंधु)
८२. हिंदी भाषा का इतिहास (धीरेन्द्र वर्मा)
८३ हिंदी साहित्य (श्यामसुन्दरदास)
८४. हिंदी साहित्य का इतिहास (रामचंद्र शुक्ल)
८५. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा)
८६. हिंदी साहित्य की भूमिका (डा० हजारीप्रसाद)

अंगरेजी

१ आक्सफार्ड हिस्ट्री ऑव इंडिया (वी० ए० स्मिथ)
२. इंडो आर्य ऐंड हिंदी (सुनीतिकुमार चटर्जी)
३. इंपीरियल गजैटियर, वोल्यूम २३ वाँ

४. ए डिस्क्रिप्टि केटेलॉग ऑव बार्डिक ऐंड हिस्टोरिकल मैनुस्क्रिप्ट्स् (तैस्सितोरी)

५. एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड इथिक्स (टी० क्लार्क)

६. एज़ यू लाइक इट (शेक्सपियर)

७. गुजरात ऐंड इट्स लिटरेचर (के० एम० मुशी)

८ दि इडियन लिटरेचर्स ऑव टुडे (बी० कुमारप्पा)

९. दि एनल्स ऐंड ऐंटिक्विटीज़ ऑव राजस्थान (कर्नल टॉड)

१०. दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान (ग्रियर्सन)

११ दि रूलिंग प्रिसेज़, चीफ्स ऐंड लीडिंग पर्सनेजेज़ इन राजपूताना ऐंड अजमेर

१२ दि हिस्ट्री ऑव इडियन ऐंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर (फर्ग्यूसन)

१३. प्रलिमिनेरी रिपोर्ट ऑन दि आपरेशन इन सर्च आव मैनुस्क्रिप्ट्स् ऑव बार्डिक क्रोनिकल्स (हरप्रसाद)

१४. प्रोसीडिंग्ज़ ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल

१५. फॉल ऑव दि मुगल एम्पायर (जदुनाथ सरकार)

१६. महाराणा कुभा (हरबिलास सारडा)

१७ महाराणा सॉगा (हरबिलास सारड़ा)

१८ मैमोरियल्स ऑव दि जयपुर एग्ज़िबिशन (टी० एच० हैंडले)

१९ लिग्विस्टिक सर्वे ऑव इडिया (ग्रियर्सन), वोल्यूम ९, भाग १–२

२० सेंटेनरी रिव्यू ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बगाल

२१ हिस्ट्री ऑव क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर (एम० कृष्णमाचार्य)

२२. हिस्ट्री ऑव हिंदी लिटरेचर (की)

२३ हिंदी सर्च रिपोर्ट्स (ना० प्र० स०)

संस्कृत और अपभ्रंश

१ अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गायकवाड़ ओरियटल सीरीज़)

२. गीतगोविंद की टीका (महाराणा कुंभा)

३. चद्रालोक (जयदेव)

४ पुरातन प्रबंध-संग्रह (मुनि जिन विजय)

५ पृथ्वीराज विजय महाकाव्य (जयानक)

६ राजप्रशस्ति महाकाव्य (झोटिंग भट्ट)

७ सदेशरासक (अब्दुल रहमान)

———

राजस्थानी

१ केहरप्रकाश (बख्तावरजी)
२ डिंगल-कोश (मुरारिदान)
३ बाँकीदास-ग्रंथावली (ना० प्र० स०)
४ रतनरासौ (जग्गाजी)
५ राजरूपक (ना० प्र० स०)
६ वीर-सतसई (सूरजमल)
७ वेलि क्रिसन रुकमणी री (पृथ्वीराज)
८ श्रीगीताजी (चतुरसिंह)
९ हालाँ झालाँ रा कुंडलिया (ईसरदास)

गुजराती

१ कविचरित (केशवराय-काशीराम)
२ गुजराती भाषा नी उत्क्रान्ति (बेचरदास)
३ जैन गूर्जर कविओ (मोहनलाल-दलीचंद देसाई), भाग १–४
४ वृहत् काव्य दोहन (इच्छाराम-सूर्य्यराम), भाग ७ वाँ

उर्दू और फारसी

१ आइने अकबरी (अबुलफजल)
२ पृथ्वीराज रासौ (राजपूत प्रिंटिंग वर्क्स लाहौर)

बंगला

१ दादू (क्षितिमोहन सेन)

हस्तलिखित ग्रंथ

नाम	लिपिकाल
१ अनुभवप्रकाश (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
२ अनूप–रसाल (उदयचंद)	१८ वीं शताब्दी
३ अनूप–शृंगार (अभयराम)	१८ वीं शताब्दी
४ अपरोक्षसिद्धान्त (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
५ अमरचंद्रिका (सूरति मिश्र)	सं० १८११

६	अलसमेदिनी (नंदराम)	१८ वी शताब्दी
७	अवतारचरित्र (नरहरिदास)	स० १८८२
८	अश्वमेध-कथा (मुरली)	स० १८४८
९	आनंदविलास (जसवंतसिंह)	सं० १७३३
१०	इच्छाविवेक (जसवतसिंह)	१८ वी शताब्दी
११	इश्कचमन (नागरीदास)	स० १८५७
१२	कवित्त (तत्त्ववेत्ता)	१८ वीं शताब्दी
१३	कविवल्लभ (जान)	१८ वीं शताब्दी
१४	कविवल्लभ (हरिचरणदास)	स० १८६६
१५	काव्यसिद्धान्त (सूरत मिश्र)	१९ वी शताब्दी
१६	खेमदास-ग्रथावली	स० १७५७
१७	खुँमाणरासौ (दलपति विजय)	१८ वी शताब्दी
१८	ख्यात (मुहणोत नैणसी)	सं० १८९९
१९	ज्ञानसमुद्र (सुन्दरदास)	सं० १७८२
२०	चमत्कारचद्रोदय (रसपुंज)	स० १८६६
२१	चरणदास–ग्रथावली	स० १८७९
२२	छदसार (सूरति मिश्र)	१८ वीं शताब्दी
२३	जगतविनोद (पद्माकर)	स० १८७५
२४	जगविलास (नदराम)	स० १८७८
२५	जसवत–उद्योत (दलपत मिश्र)	स० १७४१
२६	जहाँगीरचद्रिका (केशवदास)	स० १७६६
२७	त्रियाविनोद (मुरली)	स० १८००
२८	दादूजी की वाणी	स० १८८८
२९	दीन-काव्य-संग्रह (दीनजी)	स० १८५९
३०	ध्यान–मजरी (अग्रदास)	स० १८७०
३१	नरसीजी रो माहेरो	स० १९९८
३२	नेहतरग (बुधसिंह)	स० १७९७
३३	परशुराम–सागर	स० १८३६
३४	पिंगल–शिरोमणि (कुशललाभ)	सं० १८००
३५	पृथ्वीराजरासौ (चद)	स० १७६०
३६	बिहारी–सतसई (चित्रित)	१८ वीं शताब्दी
३७	बिहारी–सतसई	स० १७२४
३८	बिहारी–सतसई	सं० १७४३

३९	बिहारी–सतसई की टीका (मानसिंह)	सं०	१७७३
४०	बुद्धिरासौ (जल्ह)	सं०	१७०४
४१	ब्रजराज-पद्यावली (जवानसिंह)	सं०	१८८३
४२	भक्तमाल (नाभादास)	सं०	१७२४
४३	भक्तमाल की टीका (प्रियादास)	सं०	१८५९
४४	भक्तमाल की टीका (बालकराम)	सं०	१९३२
४५	• भक्तिविनोद (सूरति मिश्र)	सं०	१८७८
४६	भर्तृहरि–शतक भाषा (प्रतापसिंह)	सं०	१८८५
४७	भाषाभूषण (जसवंतसिंह)	सं०	१७७३
४८	मदनविनोद (जान)		१८ वीं शताब्दी
४९	रसकोष (जान)	सं०	१६८२
५०	रसपीयूषनिधि (सोमनाथ)	सं०	१८७६
५१	रसमंजरी (जान)	सं०	१७११
५२	रसरत्न (सूरति मिश्र)		१८ वीं शताब्दी
५३	रससरस (शिवदास)	सं०	१७९४
५४	रसिकप्रिया की टीका (सूरति मिश्र)	सं०	१९२६
५५	रसिकविलास (केहरी)		१८ वीं शताब्दी
५६	रसिकहुलास (सूरदत्त)	सं०	१७४९
५७	रागमाला (चित्रित)		१८ वीं शताब्दी
५८	राजविलास (मानजी)	सं०	१७४६
५९	राजस्थानी वार्ताँ (बाँकीदास)		२० वीं शताब्दी
६०	राणा रासौ (दयालदास)	सं०	१९४४
६१	राधाजी नुं रूसणुं (वल्लभ)	सं०	१८३३
६२	रैण रूपारस (नागरीदास)	सं०	१८५७
६३	वाराणसी-विलास (देवकरण)	सं०	१८०३
६४	विज्ञानगीता (केशवदास)	सं०	१७९९
६५	वृंद–रत्नावली (घनश्यामजी)	सं०	१९९५
६६	संग्रामसार (कुलपति मिश्र)		१८ वीं शताब्दी
६७	संतगुणसागर (माधौदास)	सं०	१८१७
६८	सज्जनप्रकाश (मदनेश)	सं०	१९३४
६९	सज्जनविनोद (मार्कंडेलाल)	सं०	१९३७
७०	सज्जनविलास (वल्लभ)	सं०	१९३५
७१	सत्यभामाजी नुं रूसणुं (वल्लभ)	सं०	१८३३

७२ सिद्धान्तसार (जसवंतसिंह) सं० १७३३

७३ हरिव्यास छब्बीसी १६ वीं शताब्दी

पत्र–पत्रिकाएँ

१ चाँद

२ जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल (कलकत्ता)

३ जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (लंदन)

४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका

५ भारतीय विद्या

६ माडर्न रिव्यू

७ माधुरी

८ राजस्थान–भारती

९ राजस्थानी

१० विशाल भारत

११ सुकवि

१२ हिंदुस्तानी

१३ हितैषी

कवि-नामानुक्रमणिका
